साहित्य अमृत

मासिक

कार्तिक-मार्गशीर्ष, संवत्-२०७८ ❖ नवंबर २०२१

वर्ष-२७ ❖ अंक-४ ❖ पृष्ठ ८८ | यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित | ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक

पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)

श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक

पीयूष कुमार

संपादक

लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक

उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२

फोन : ०११-२३२८९७७७

०८४४८६१२२६९

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क

एक अंक—₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

साहित्य अमृत के बैंक खाते का विवरण

बैंक ऑफ इंडिया

खाता सं. : **600120110001052**

IFSC : **BKID0006001**

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

✍ **संपादकीय**

उजालों को पुकारें ४

✍ **प्रतिस्मृति**

एक दीये की दीवाली/ *मृदुला सिन्हा* ६

✍ **कहानी**

भुल्लन चाचा ने यों मनाई दीवाली/ *प्रकाश मनु* १०

अपराधी/ रश्मि गौड़ १६

खुशियों की दीवाली/ *मंजरी शुक्ला* ३०

आंता/ *विभा नायक* ४८

✍ **आलेख**

साहित्य में विविध रूपा लक्ष्मी/ *तरुण कुमार दाधीच* १५

भारत का स्वतंत्रता आंदोलन"/ *सिंधु कपूर* १८

रामानुजन के जीवन से क्या प्रेरणा ले युवा पीढ़ी/ *राजेश कुमार ठाकुर* २६

गिजुभाई बधेका/ *सुनीता* ३२

हिंदी बालसाहित्य : चुनौतियाँ, संभावनाएँ और भविष्य/ *सुरेंद्र विक्रम* ५०

हिंदी प्रदेश की भाषिक चिंतन-परंपरा/ *खेमसिंह डहेरिया* ५६

अमृतलाल नागर का बाल-साहित्यिक अवदान/ *जी. नीलावती* ६२

हिंदी साहित्य : आशय एवं स्वरूप/ *अरविंद कुमार कबीरपंथी* ७२

समकालीन आधुनिक"/ *जया आनंद* ६६

✍ **लघुकथा**

दीये का दीया/ *हेमंत उपाध्याय* २८

मान/ *अशोक गुजराती* ३८

चर्चा का विषय/ *बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु'* ५५

घर की ऊर्जा/ *समीर उपाध्याय* ६३

उसूल/ *बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु'* ६९

कुएँ में डाल/ *अशोक गुजराती* ७६

✍ **कविता**

बन तारक, गीत गाते/ *वीरेंद्र प्रसाद* ८

अपना घर ही अपना मंदिर/ *पुष्पा राही* ९

गजलें/ *नरेश शांडिल्य* २३

स्नेह भरा हो दीपक में/ *आशा शर्मा* २९

दीपावली/ *आर.सी. शुक्ल* ३५

तांका कविताएँ/ *रामनिवास मानव* ४७

पीड़ा की आयु/ *रेणु राजवंशी गुप्ता* ५३

मेरी माँ/ *सविता चावला* ६०

बचपन पुष्प समान/ *शारदा मित्तल* ६१

ज्यादा कुछ भी नहीं/ *नवनीत गांधी* ८१

✍ **जिन्होंने जलाई स्वाधीनता की अलख**

तात्या टोपे, क्रांतिवीर मंगल पांडेय २०

✍ **स्मरण**

कला-संस्कृति के संरक्षण"/ स्वर्ण अनिल २४

✍ **रेखाचित्र**

बशीरा/ अंजीव अंजुम ३६

✍ **राम झरोखे बैठ के**

महामारी में चुनाव/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४०

✍ **साहित्य का भारतीय परिपार्श्व**

रूपांतर/ *भरत सोलंकी* ५८

✍ **साहित्य का विश्व परिपार्श्व**

दिन भर का इंतजार/ *अर्नेस्ट हेमिंग्वे* ६४

✍ **लोक-साहित्य**

मिथिला का लोकपर्व 'सामा-चकेवा'/ *ध्रुव कुमार* ७०

✍ **यात्रा-वृत्तांत**

हूरों के देश का सफर/ *अंजु रंजन* ७७

✍ **बाल-संसार**

दो बालकथाएँ/ *कोमल वाधवानी 'प्रेरणा'* ५४

कबीर, नविका और सेब/ *मधु काँकरिया* ६८

✍ **वर्ग-पहेली** ८२

✍ **पाठकों की प्रतिक्रियाएँ** ८३

✍ **साहित्यिक गतिविधियाँ** ८४

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

उजालों को पुकारें

दृश्य एक : यह एक प्रतिष्ठित सरकारी विद्यालय है। वरिष्ठ अधिकारी उपस्थित हैं। अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में हिंदी पखवाड़े का समापन समारोह भव्य रूप में आयोजित किया गया है। एक कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया है। उद्घोषणा में बताया जा रहा है कि कई हजार छात्र एवं उनके माता-पिता इस कवि-सम्मेलन को 'ऑनलाइन' सुन रहे हैं। सभागार में विभिन्न विद्यालयों से आए शिक्षक उपस्थित हैं। वरिष्ठ अधिकारियों तथा प्रधानाचार्य द्वारा भाषणों में समारोह की प्रशंसा के साथ-साथ विद्यार्थियों को बहुत अच्छी प्रेरक बातें बताई जा रही हैं। कवि-सम्मेलन में एक तथाकथित हास्यकवि माइक पर आए हैं। वे कविता सुनाने से पहले तरह-तरह के चुटकुलों तथा द्विअर्थी जुमलों से, नेताओं के विकृत उपहास से मनोरंजन कर रहे हैं। शिक्षक भरपूर आनंद में मगन हैं और जोरदार तालियों से सभागार गुँजा रहे हैं। फिर कविजी कविता के नाम पर कुछ तुकबंदियाँ सुनाते हैं, जिनमें भरी हुई फूहड़ता एवं अश्लीलता स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आ रही है। सभागार में बैठे शिक्षकों के आनंद में कोई कमी नहीं आई है। कविजी को इस बात का जरा भी ध्यान नहीं है कि उन्हें छात्र-छात्राएँ सुन रहे हैं। उन्हें तो तालियों की गूँज से मतलब है और अपने 'लिफाफे' से।

किशोरवय के छात्र-छात्राओं में वे भी होंगे, जिनका एक विषय हिंदी है तथा उनके मन-मस्तिष्क पर कविता की कैसी एक दूसरी छवि गढ़ी जा रही है। कविजी का कारोबार खूब चमक रहा है तथा वही उनके आमंत्रित किए जाने का आधार बना है। अब यह प्रश्न अलग है कि जिन शिक्षकों ने ऐसे कवि को आमंत्रित किया है, उनका 'हिंदी' अथवा 'कविता' अथवा छात्र-छात्राओं की सुरुचि एवं संस्कार-निर्माण के प्रति कोई दायित्व है अथवा नहीं। यदि एक प्रतिष्ठित सरकारी विद्यालय में वरिष्ठ अधिकारियों तथा शिक्षकों से भरे सभागार में इतनी फूहड़ता, अश्लीलता तथा विकृति परोसी जा सकती है तो फिर इस देश का सांस्कृतिक परिदृश्य कैसा होगा, सांस्कृतिक संपन्नता का स्तर क्या होगा? जब विद्यालयों में ऐसा होगा तो व्यावसायिक आयोजनों में तथाकथित 'कविता' का स्वरूप क्या होगा, यह अनुमान लगाना सहज है। ऐसे आयोजन हमारी युवा पीढ़ी को क्या दे रहे हैं, यह भी विचारणीय है।

दृश्य दो : यह एक प्रतिष्ठित महाविद्यालय है। आयोजन 'हिंदी विभाग' का है और यह अपने आप में ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यहाँ यह उल्लेख भी आवश्यक है कि किसी समय महाविद्यालयों के हिंदी विभाग के आयोजनों में जैनेंद्र कुमार, दिनकर, अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर जैसी विभूतियाँ आमंत्रित की जाती थीं। इस महाविद्यालय में भी एक अवसर विशेष पर 'कवि-सम्मेलन' का आयोजन है। सभागार में शिक्षक, शोधछात्र तथा एम.ए., बी.ए. के छात्र-छात्राएँ हैं। यहाँ भी आमंत्रित कवियों की स्थिति दृश्य-एक जैसी ही है।

वीर रस के तथाकथित कवि महात्मा गांधी के प्रति अपमानजनक टिप्पणियों से तालियाँ लूटने के प्रयास में हैं। वे स्वयं को टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, सुब्रह्मण्य भारती, दिनकर, भवानीप्रसाद मिश्र जैसे कवियों से (जिन्होंने गांधीजी की महानता पर दर्जनों कविताएँ रची हैं) बड़ा मान रहे हैं। हास्य कविता के नाम पर वही चुटकुलेबाजी, जुमलेबाजी, फूहड़ता, अश्लीलता, विकृति परोसी जा रही है। इससे क्या अंतर पड़ता है कि आयोजन महाविद्यालय में है। आयोजन में कवियों को आमंत्रित करने वाले महाविद्यालय के हिंदी विभाग के विद्वान् हैं, वे भी अच्छी स्तरीय कविता तथा कविता का कारोबार कर रहे कवियों की बाजारू कविता में अंतर नहीं कर पाए। फिर वही प्रश्न व्याकुल करता है कि आखिर हमारी सांस्कृतिक चेतना को क्या हो गया है! चिंता की बात यह भी है कि ऐसी संस्थाएँ, जिनका दायित्व साहित्य का संरक्षण-संवर्धन है, सुकवि निर्माण है, उनके कर्ता-धर्ता भी इसी भेड़चाल के शिकार हैं। राजनीतिक हस्तक्षेप, विधायकों, सांसदों या मंत्रियों की सिफारिशें स्थिति को और जटिल बना देती हैं।

दृश्य तीन : यह एक प्रतिष्ठित बाल विद्यालय का वार्षिकोत्सव है। यहाँ सबकुछ अंग्रेजीमय है, वह एक अलग ही विचारणीय विषय है, किंतु उससे भी अधिक इस आयोजन की प्रस्तुतियाँ विचारणीय हैं। भारत के 'हिंदी भाषी प्रांत' के इस विद्यालय के आयोजन में उस 'भारत' के दर्शन दुर्लभ हैं, जिसके सांस्कृतिक वैभव की तुलना पूरे विश्व में किसी देश से कर पाना कठिन होगा। इस विराट् देश के तीन दर्जन से अधिक राज्यों में कैसे-कैसे अद्भुत लोकनृत्य हैं, जिनकी छवियों की अनुगूँजें एक स्थायी प्रभाव छोड़ती हैं। स्वाभाविक है कि ऐसी छवियाँ बालमन में भी गहरा प्रभाव छोड़ेंगी तथा उन्हें भारत के सांस्कृतिक वैभव से परिचित कराएँगी। किंतु इस आयोजन के सूत्रधार भारत की गौरवशाली धरोहर से शायद स्वयं अपरिचित हैं। इस वार्षिकोत्सव में कुछ नितांत फूहड़ फिल्मी गानों पर बच्चे-बच्चियाँ नृत्य कर रहे हैं, जिनके शब्द उद्धृत करने में मुझे संकोच हो रहा है, किंतु सभागार में उपस्थित बच्चों के माता-पिता, विद्यालय प्रबंधन के वरिष्ठ पदाधिकारी गद्गद होकर तालियाँ बजा रहे हैं। ऐसे कितने ही दृश्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं। आयोजक बदल जाएँगे, सभागार में बैठे दर्शक बदल जाएँगे, किंतु विकृति, अपसंस्कृति के अँधेरे का स्वरूप उतना ही कालिमायुक्त रहेगा। चाहे प्राचार्यों का सम्मेलन हो, अवकाशप्राप्त आई.ए.एस. अधिकारियों का सम्मेलन हो, किसी मंत्रालय

का आयोजन हो, प्रस्तुतियों के स्तर पर कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। देश की एक प्रख्यात शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत साधिका को पद्मश्री से सम्मानित किया गया तो उन्होंने एक साक्षात्कार में अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए कहा था कि पद्मश्री का सम्मान तो हर्ष की बात है, किंतु पहले जो लोग छोटे-मोटे आयोजनों में बुला लेते थे, अब पद्मश्री के बाद बुलाने से हिचकते हैं और यह आजीविका के लिए एक संकट सा खड़ा हो गया है। उनकी पीड़ा हमारे सांस्कृतिक परिदृश्य पर एक गंभीर टिप्पणी प्रस्तुत करती है। तथाकथित पॉप संगीत के नाम पर फूहड़ गाने गाने वाले एक शाम के कई-कई लाख वसूलते हैं और शास्त्रीय संगीत के महान् साधकों को आजीविका के संकट का सामना करना पड़ता है। जिन दृश्यों में हमने विकृत प्रस्तुतियों के अँधेरों की झलक देखी, वे तो शायद कुछ हजार तक सीमित रही हो, किंतु जो चैनल लाखों घरों तक पहुँचते हैं, उन्होंने तो फूहड़ता और विकृति की सारी सीमाएँ तोड़ दी हैं। द्विअर्थी संवादों वाले कुछ कार्यक्रम तो अच्छी-खासी टी.आर.पी. भी बटोर रहे हैं। चर्चाओं में भी अधिकांश चैनलों पर कितनी कड़वी, अभद्र भाषा का प्रयोग किया जाता है और कुछ चर्चाओं में यह सिलसिला भद्दी गालियों तक भी जा पहुँचा है।

वर्तमान समय में 'सोशल मीडिया' सर्वाधिक प्रभावी है। लोग हर समय मोबाइल फोन से जुड़े रहते हैं। हर दिन कितने ही फर्जी संदेश, फर्जी वीडियो पोस्ट किए जाते हैं और फिर अच्छे-खासे पढ़े-लिखे लोग, तथाकथित बुद्धिजीवी इन सनसनीखेज संदेशों को बिना सोचे-समझे आगे बढ़ा देते हैं। लगभग हर चैनल पर ऐसे फर्जी वीडियो या संदेशों की जाँच-पड़ताल होती है तथा लाखों-करोड़ों लोगों तक पहुँचे इन संदेशों को फर्जी घोषित किया जाता है, किंतु क्या आवश्यक है कि हर व्यक्ति इस खंडन वाले कार्यक्रम को देख पाए। परिणामस्वरूप एक झूठा संदेश या घृणा फैलानेवाला या चरित्रहनन करनेवाला संदेश लाखों लोगों में स्थायी दुष्प्रभाव छोड़ता है। सोशल मीडिया पर जितनी फूहड़ता और अश्लीलता फैली हुई है, वह भी गंभीर चिंता का विषय है तथा उसके दुष्परिणाम भी ऐसे भयानक अवराधों के रूप में सामने आते हैं, जिनमें मासूम बच्चियाँ तक क्रूरता तथा अमानवीयता का शिकार बन जाती हैं। पूरे विश्व में महिला असुरक्षा में हम शर्मनाक स्थिति में हैं।

हम सब को पूरी गंभीरता से विचार करना चाहिए कि हमारे देश में इतनी सांस्कृतिक विपन्नता का अँधियारा कैसे छा गया है। अध्यात्म जैसे पवित्र क्षेत्र में भी तथाकथित संतों ने क्या-क्या किया है और लाखों लोगों के विश्वास की हत्या करनेवाले ये लोग सलाखों में क्यों बंद हैं। जब हम ज्योतिपर्व मना रहे हैं तो अमावस के अँधियारे को दीयों के प्रकाश से पराजित करने के महापर्व पर मन के अँधेरों को उजालों से भरने का प्रयास करें। हर क्षेत्र को फूहड़ता अश्लीलता, अपसंस्कृति, विकृति के अँधेरों से मुक्त करें तभी तो विश्वगुरु बनने का स्वप्न पाल सकेंगे।

□

वर्तमान परिदृश्य में किसी भी भाषा में बाल साहित्य का कितना महत्त्व है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। कितनी ही भाषाओं में तो बाल साहित्य रचे बिना साहित्यकार को पूर्ण साहित्यकार नहीं माना जाता। बाल साहित्य की महत्ता के भी दो पहलू हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण तो यही है कि एक बच्चा बड़ा होकर अच्छा मनुष्य बने, अच्छा नागरिक बने, देश और समाज के प्रति जागरूक हो, देश की संस्कृति, जीवन-मूल्यों, आदर्शों, सरोकारों से संपन्न बने और इस प्रयास में बाल साहित्य उसका सबसे बड़ा संवाहक बने। दूसरा पहलू यह है कि यदि एक बच्चे में साहित्य के प्रति रुचि जाग्रत् होगी तो वह बड़ा होकर साहित्य प्रेमी बनेगा, अच्छा पाठक बनेगा, जिससे लेखक ही लाभान्वित होंगे। किसी बच्चे को जिस लेखक की रचनाएँ प्रभावित करती हैं, उनके प्रति उसके मन में प्रेम एवं सम्मान की स्थायी छाप पड़ जाती है। हिंदी में बाल साहित्य के प्रति साहित्यिक संस्थाओं की जागरूकता तो बढ़ी है, जिसकी झलक हमें विभिन्न प्रांतों की साहित्यिक संस्थाओं द्वारा प्रदत्त सम्मानों तथा सम्मान राशि में वृद्धि द्वारा मिल जाती है। साहित्य अकादेमी द्वारा बाल साहित्यकार सम्मान का शुभारंभ भी सुखद है। अब बच्चों का संसार आमूलचूल बदल गया है। उनके हाथ में मोबाइल आ गया है, जिसे चलाने में वे बड़ों से अधिक पारंगत हैं। इसके भी सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही पहलू सामने आए हैं। परिवारों के टूटने से एकल परिवार ही नहीं वरन् सिर्फ माँ या सिर्फ पिता द्वारा परवरिश पानेवाले बच्चे भी एक सच्चाई हैं।

दादी-नानी के किस्से विलुप्त हो गए हैं। महानगरों तथा नगरों में माता-पिता अतिव्यस्तता के कारण बच्चों को समुचित समय नहीं दे पाते। बच्चे जिस प्रकार की भयानक खबरों से साक्षात्कार कर रहे हैं, वह भी उनके बालमन पर गंभीर दुष्प्रभाव डाल रहा है। ऐसे परिदृश्य में बाल साहित्यकारों की भूमिका बेहद चुनौतीपूर्ण हो जाती है। एक तरफ बच्चों की विराट् जिज्ञासा भरी दुनिया से तालमेल बैठाना, दूसरी तरफ उनके आहत मनों पर मलहम लगाने वाले, संवेदना जगाने वाले साहित्य की रचना करना।

बच्चों तक अच्छे बाल साहित्य को पहुँचाने की समस्या भी गंभीर है। हिंदी में व्यापक रूप से पूरे देश में पहुँचने वाली एक भी पत्रिका नहीं है। सीमित साधनों से सीमित वर्ग तक पहुँचनेवाली कुछ पत्रिकाएँ अवश्य इस कठिन कार्य में संलग्न हैं, किंतु इस विशाल देश में उनकी संख्या 'ऊँट के मुँह में जीरा' जितनी है। काश! समर्थ संस्थाएँ अथवा प्रकाशक आगे आएँ तथा बाल साहित्य को करोड़ों घरों तक पहुँचानेवाली पत्रिकाओं के प्रकाशन का चुनौती भरा दायित्व सँभालें। यही हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार तथा उसे सक्षम एवं समर्थ 'राष्ट्रभाषा' बनाने की दिशा में भी एक सार्थक पहल होगी। यह भी बहुत आवश्यक है कि हिंदी के समर्थ एवं प्रतिष्ठित रचनाकार बाल साहित्य लेखन को दोयम दर्जे का कार्य न मानकर उत्कृष्ट बाल साहित्य की रचना करें। हिंदी में ज्ञानपीठ अथवा साहित्य अकादेमी सम्मान पानेवाले लेखकों-कवियों की सूची को देखेंगे तो बाल साहित्य में उनके योगदान के संदर्भ में निराशा ही हाथ लगेगी। इस स्थिति को बदलने की आवश्यकता है।

'साहित्य अमृत' परिवार की आरे से सभी लेखकों व पाठकों को दीपपर्व की हार्दिक शुभकामनाएँ।

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

एक दीये की दीवाली

• मृदुला सिन्हा

गणेश किसी से हार मानने वाला नहीं था। मधुवनी के छोटे से गाँव के कोने में बसी दस झोंपड़ियों में से एक झोंपड़ी उसकी थी। उसका जीजा उसे शहर उठा लाया था। उमर होगी पंद्रह-सोलह की। यह तो हमारा अनुमान था। जब उसकी माँ को ही बेटा के जन्म की न तिथि, न महीना, न साल याद थे तो बेटा को क्या पड़ी थी अपना जन्मदिन याद रखने की! उसे कौन सा अपना जन्मदिन मनाना था और हर जन्मदिन पर मोमबत्ती की एक संख्या बढ़ानी थी!

'गणेश, तुम कितने साल के हो?' मेरे बेटे ने पूछा था।

'हम···अ···अ···हम दस साल के हैं।'

'चल हट! मूँछ निकलने को आईं और दस साल का है! झूठा कहीं का!'

वह रोनी सूरत बनाकर मेरे पास आ गया—'मम्मी, मैं दस साल···'

'हाँ-हाँ, तुम नौ साल के ही हो। जाओ, काम करो—डस्टिंग कर लो। गमलों में पानी डालो।'

वह बिहँसता हुआ अपने काम में जुट जाता। उसकी हाँ-में-हाँ मिलाने के लिए मैं ही तो अकेली थी उस घर में। दिल्ली आए उसे छह महीने हो गए। जिस दिन उसका जीजा उसे मेरे पास लेकर आया था, उसे उठने-बैठने का भी सऊर नहीं था। अकसर बाहर बालकॉनी में जाकर खड़ा हो जाता। आसमान या सामने पार्क की हरी-भरी धरती पर निगाहें टिकाए पता नहीं क्या सोचता रहता।

'गणेश, क्या कर रहे हो?' चौंक उठता गणेश। उसके हाथ में घर की सफाई करने का जो भी हथियार उस वक्त रहा हो, उसे चलाने लगता। कभी पोंछा लगाते-लगाते बीच कमरे में ही खो जाता, पोंछा पकड़े अन्यमनस्क बैठे गणेश को मेरे घर का कोई सदस्य टोक दे—'गणेश, सो गए क्या?' तो उसका हाथ चलने लगता। काम के बीच में स्वेच्छा से मारे मध्यांतर के समय की क्षतिपूर्ति में हाथ की रफ्तार तेज हो जाती।

एक माह तक तो हम घरवाले अकसर आपस में चिंता व्यक्त करते—'गणेश कुछ बोलता क्यों नहीं?'

स्वाति नक्षत्र की बूँद धरती पर पड़ते ही गणेश कंठफोड़ हो गया। और प्रतिदिन दो-चार-पाँच शब्दों से बढ़ाकर शहर में अपनी आयु के दूसरे महीने में प्रवेश करते ही जिस दिन पाँच सौ शब्द बोल गया, मेरे बेटे ने डाँटा—'क्या बात है, हर समय बक-बक करते रहते हो?'

वह हाथ मटकाकर, सिर हिलाकर कहता, 'हम कहाँ बक-बक करते हैं? हम कह रहे थे···।' और उसका कहना कोई दूरदर्शन पर दिखाए गए सार्थक दृश्यों की तरह अल्पायु का नहीं होता था। गणेश का हर कथन कई-कई दिन चलनेवाली लोक-कथाओं की तरह जारी रहता।

हमें इतना अवश्य मालूम पड़ गया था कि छह महीने में छह क्षण के लिए भी गाँव, खेत-खलिहान-झोंपड़ी और माँ से उसका बिछोह नहीं हुआ था। अपने पीछे छोड़ आए गाँव और परिवेश के प्रति कोई हीन भाव भी नहीं था उसके मन में।

उस दिन बड़े मनोयोग से खीर बनाई थी मैंने। पूछा, 'गणेश, खीर खाई? कैसी लगी?' इस विश्वास के साथ कि गणेश की जिह्वा पर चार लीटर दूध में सौ ग्राम चावल और मेवेवाली खीर शायद पहली बार पड़ी होगी।

मेरी खीर की प्रशंसा कहाँ करता वह। वह तो अपनी माँ द्वारा बनाई एक पाव दूध, आधा किलो चावल, दो लीटर पानी और आधा किलो गुड़ में बनी खीर के स्वाद में डूब गया।

'हे···अ···अ! मम्मी···अ···अ! हमरो माय खीर बन बइत रहे। बड़ा मीठ। मुँह से न छूटे। हे हमर बाबू···अ···अ खूब खाइत रहे खीर। पूरा थाली भर के। हे···अ···अ फगुआ (होली) के दिन भर थाली खीर देलक हमर माय हे···अ···अ···अ···अ।'

उसकी माँ ने भी होली के दिन अवश्य खीर बनाई होगी। पर मेरी खीर और उसकी माँ की खीर के रूप, रंग, स्वाद में अंतर का अनुमान तो मुझे था। गणेश ने हलके से भी मेरी खीर की प्रशंसा नहीं की। लगता है, मेरे द्वारा दी गई एक छोटी सी कटोरी में चार चम्मच खीर थामे वह अपने अतीत में पहुँच माँ द्वारा पूरी थाली भरकर परोसी गई खीर के स्वाद में डूब गया। मेरी खीर का स्वाद उसकी जिह्वा पर उतरा ही कहाँ!

उसके द्वारा यही गति मेरे घर में बने अन्य व्यंजनों की भी होती। किचेन में बेसन की सब्जी, मक्की की रोटी, सूजी का हलवा बनाना

प्रारंभ हो, गणेश शुरू हो जाता—'हे···अ···अ हमरो माय बनवइत रहे अ···अ···अऽ' और फिर अपनी माँ द्वारा उस व्यंजन के बनाने की कथा का श्रीगणेश कर वह इतिश्री भागवत कथा प्रथमोऽध्याय के लिए कहाँ थमता था।

निश्चय ही उसकी झोंपड़ी और दिल्ली में मेरे तीन कमरे के फ्लैट की तुलना में 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली' कहावत का कद भी ओछा पड़ जाता। पर गणेश तो गणेश था। मेरे मार्बल पत्थर लगे फर्श पर पोंछा फेरता, अपनी माँ के गोबर-सने हाथों को समेट हृदय से लगा सराबोर हो जाता।

'हे हमरो माय घर लिपता है। रोज-रोज। गोबर से···अ···अ।'

'चुप कर। शुरू हो जाता है।' अपने को कम आँकने की उसकी औकात नहीं थी। मेरे लिए कोई फर्क नहीं पड़ता था। गणेश की उम्र के बच्चों द्वारा अपनी माँ को सर्वोच्च साबित करना मुझे सुखकर लगता। पर मेरे बारह वर्षीय बेटे से उसकी अकड़ बरदाश्त नहीं होती। दोनों में अकसर ठन जाती। मुझे बीच-बचाव करना पड़ता। उसकी मैथिली में हिंदी घुलती जा रही थी। मेरे बेटे ने उसे पराजित करने के लिए अंग्रेजी बोलना प्रारंभ कर दिया। गणेश मुँह बिचकाता बोला, 'हूँह! हमरो माय···अ···अ···अ।'

हम सब ठहाका मारकर हँस पड़े। वह चुप हो गया। पर चेहरे पर शर्मिंदगी नहीं थी। हम जैसे नासमझों को अपनी न समझा पाने की बेबसी अवश्य थी। जबरन हँसी रोकती मैं बोली, 'क्या तुम्हारी 'माय' भी अंग्रेजी बोलती है?'

हम सबके बीच हँसी का एक और ज्वार उठा। पर गणेश हँसा नहीं। पहली बार गंभीर हो गया। दिन भर गंभीर ही रहा। शाम को उसे सहज बनाने के लिए मैंने पूछा, 'गणेश, क्या बात है?' 'कुछ नहीं।' मुँह फेरकर वह बालकनी में चला गया। मैं उसके सामने जाकर खड़ी हो गई। वह निर्निमेष आकाश निहार रहा था। आकाश ने भी निराश नहीं किया उसे। जल की दो बूँदें तैर उठीं उसकी गर्वीली आँखों में। नयन नम हुए थोड़ी देर के लिए ही सही।

'गणेश! माँ की याद आई क्या?' मेरे स्नेह के दो बोल उसे आश्वस्त कर गए। सदा की तरह अपनी बत्तीसी चमकाते हुए बोला, 'हे···अ···अ! हमर माय अँगरेजी नई बोलती। हम जब दिल्ली आ रहे थे, हमर माय बोली—अँगरेजी पढ़ लेना। तभी दिल्ली में टिक पाओगे। वही हम कह रहे थे कि भैया से हम भी अँगरेजी सीखेंगे।'

'ठीक है, ठीक है। अभी हिंदी पढ़ना शुरू किया है। हिंदी पढ़ लो, फिर अंग्रेजी भी सिखा दूँगी। अब झटपट दूध ले आओ और कपड़े सब उठाओ।'

मेरे स्नेहिल दो बोल से अधिक उसके मन की बात निकल जाने से उसके मन का मलिन धुल गया था। और मेरा मन निश्चिंत हुआ था कि वह हर्षित होता दूध का डिब्बा उठाने किचेन में चला गया था।

नवरात्रि के दिनों में भी दिल्ली का दशहरा, देवी-पूजन तथा रामलीला के विधि-विधानों के ऊपर चढ़कर बोलता रहा उसके गाँव का देवी-पूजन मेला। लाल चमकौआ साड़ी पहनकर उसकी माय का मेला देखने जाना, मेले में पच्चास पैसे का गुब्बारा और एक रुपए का बतासा खरीदना। माँ के ललाट पर बड़ी सी टिकुली का चमकना। उसके पाँवों में पहली बार हवाई चप्पल का पड़ना। और न जाने क्या-क्या!

अब दीपावली की बारी थी। इधर मेरे घर की रँगाई-पुताई, साफ-सफाई प्रारंभ हुई, उधर गणेश की माँ की झोंपड़ी के झाड़-पोंछ, लिपाई-पुताई का आँखों देखा हाल मेरे घर रूपी आकाशवाणी के स्पेशल गणेश कथा चैनल पर प्रसारित होता रहा। मुझे यह तो अँदेशा था ही कि दिल्ली की दीपावली को भी उस चैनल का उद्घोषक फीका ही करार कर देगा। समय का इंतजार था।

दीपावली के दो-तीन दिन पूर्व से ही प्रारंभ हुए बम-पटाखे की आवाज उसके कानों में पड़ते ही पूछ बैठा—'ई क्या हुआ, मम्मी? ई कैसी आवाज है?'

'दीवाली आ रही है न! बच्चे पटाखे और बम फोड़ रहे हैं।'

'अभी क्यों? आज तो दीया-बत्ती नहीं है न!'

अब मैं कहाँ उसके साथ झक-झक करती। 'यहाँ सब दिन दीवाली होती है। जा, अपना काम कर। अभी कितना काम बाकी है।'

'हे मम्मी! हमरो माय अपन टीनवाला पेटी धोयले होतई। है···अ···अ वही पेटारी में माय के चमकौआ साड़ी और एक दो···।'

'चुप कर न। समझ गई, तुम्हारी माँ के पास पेटारी भी है, अच्छी साड़ी भी। तुम्हारे घर में सब चीजें हैं। अब इन चारों गोदरेज की अलमारियों को तो साफ कर। सारी दीवार अलमारियों, किचेन के ऊपर खाने में पड़े पचासों पीतल, काँसे और स्टील के बरतन बाकी हैं।'

मैं स्वयं उसके साथ साफ-सफाई में हाथ बँटाती, काम के बोझ से दबी जा रही थी। पर गणेश था कि न मेरी भरी अलमारियों, न ढेर बरतनों के बोझ तले दबने को तैयार। मुझे भी कहाँ पड़ी थी उसकी स्मृतियों को काटने-छाँटने की!

'हे मम्मी! हमर माय···अ···अ दीया-बत्ती के रात···।'

'चुप कर न! अभी दीवाली बीत जाने दे। फिर सुनाना अपनी माय द्वारा मनाई गई दीवाली-वृत्तांत। आराम से बैठकर सुनूँगी।'

वह चुप कहाँ हुआ। किचेन में मिठाइयाँ बनाती, अल्पना करती, दीया जलाती मैं उसे चुप कराती रही। वह कहाँ मानने वाला था। रात्रि के दस बजे के बाद वह अचानक चुप हो गया। पटाखे छोड़ने, बम फोड़ने मेरे बेटे के साथ नहीं गया। मेरे बेटे के अनुग्रह पर भी नहीं।

मेरे बेटे ने कहा, 'चल न, गणेश! छत पर चल। बम फोड़ेंगे। मैं तुम्हारे 'माय' की दीया-बत्तीवाली कहानी सुन लूँगा। चल न!'

उस मनुहार का कोई असर न हुआ उसपर। छत के कोने में जाकर खड़ा हो गया। पटाखों की आवाज सुनता रहा। शायद रात भर। सुबह हमारी आँखें भी देर से खुलीं। मैंने आवाज लगाई—'गणेश! गणेश!' वह नहीं आया। मैं छत पर गई। वह एक कोने में दुबका बैठा नींद खींच रहा था।

मैंने डाँटकर कहा, 'क्या जागता रहा रात भर?' उसका मुँह लटका हुआ था। निस्तेज, हारा-थका। रात भर जलकर बुझे मेरे पूजाघर के दीये जैसा। सड़कों पर ठंडे पड़कर ढेर हुए बम-पटाखों और फुलझड़ियों के अवशेष जैसा। मैंने उसका वह रूप नहीं देखा था। चिंतित होती उसे नीचे उतार लाई। चाय पीते हुए मैंने पूछा, 'क्यों गणेश, अब सुनाओ। तुम्हारी माय की दीया-बत्ती कैसी होती है?'

वह चुप था। सिर नीचा किए हुए। माय का नाम सुनकर भी गणेश का नि:शब्द रहना मुझे अचंभित कर गया। मेरे बेटे के झकझोरने पर टंकी में पानी खत्म हो जाने पर टैप खोलने की भाँति उसके कंठ से कथ्य रिसने लगा—'हमर···माय···रात भर···एगो···दीया···जलते···छोड़ देइत रहे।'

करोड़ों रुपए फूँककर मनाई दिल्लीवालों की दीपावली के नीचे उसकी माय की दीया-बत्ती कितनी छोटी पड़ी थी, इसका न आश्चर्य, न गम था मुझे। उसकी स्थिति देखकर गम था तो उसकी 'माय' का मम्मी के आगे छोटी पड़ने का। मैं कभी नहीं चाहती थी, उसकी माय मम्मी से पराजित हो जाए। गणेश की माय तो माय थी। उसके लिए अपराजिता। उसने एक ही दीये की दीपावली मनाई तो क्या!

साअ

कविता

बन तारक, गीत गाते

● वीरेंद्र प्रसाद

मुझे बाँधने

मुझे बाँधने आते हो
अनंत सीमा में चुपचाप
क्या भिन्न कर पाओगे
चाहे जिस विधि लो नाप।
तुषार घुले पथ पर आते
पुलकित होते, रोओं से पात
भूल अधूरा खेल यहीं
मुझे सुलाते सारी रात
मिल तुमसे उड़ जाता
रह जाता तन काँप-काँप;
मुझे बाँधने आते हो
अनंत सीमा में चुपचाप।

स्वप्न सेली में सप्तरंग
इंद्रधनु के चित्र अपार
चिर रहस्यमय बनकर
देते उन भावों को आकार
बिखराते अँजुरी से मोती
गढ़ते मरकत, तम से नाप।
मुझे बाँधने आते हो
अनंत सीमा में चुपचाप।

विधु का शृंगार समेटे
अधखुले दृगों का कोर
छलकाते आसव का कोष
तकते किस अतीत की ओर
छू अरुण आरक्त कपोल
संजीवन बनता, विष आप;
मुझे बाँधने आते हो
अनंत सीमा में चुपचाप।
लोक तुम्हारे, नहीं वेदना
नहीं जिसमें कोई अवसाद
मधुमय चिर यौवन सा है
तुझपे मिट जाने का स्वाद
मैं तुमसे ही एक बना
शून्य बना, चाहे दो शाप;
मुझे बाँधने आते हो
अनंत सीमा में चुपचाप।

तुमको भुला न पाऊँ

तुमको भुला न पाऊँ
सूर्य किरण की उलझन में
बन आभा, मिट क्षण में
आतप ढूँढूँ कण-कण में
नयनों को दिखा न पाऊँ
तुमको भुला न पाऊँ।

मेघों में बिजली सी छवि
बनती मिटती जैसे अवि
पुतली में ढूँढूँ प्रतिच्छवि
जिसको समा न पाऊँ
तुमको भुला न पाऊँ।
बन तारक, गीत गाते
निक्षेप चितवन बन जाते
शीतलता भी नहीं सुहाते
मन को पहचान न पाऊँ
तुमको भुला न पाऊँ।

चुपके-चुपके वह आते
बन उच्छ्वास, उर में समाते
देखूँ बस आते जाते
उसको रोक न पाऊँ
तुमको भुला न पाऊँ।

नींद कहाँ आए अज्ञानी
सागर लहरों सी रूहानी
कह दे सब करुण कहानी
खुद को सुला न पाऊँ
तुमको भुला न पाऊँ।

चपल पारद से मोती
दृगों से अनवरत खोती
फिर भी सपने उनके बोती
अगम आँक न पाऊँ
तुमको भुला न पाऊँ।

साअ
पटना

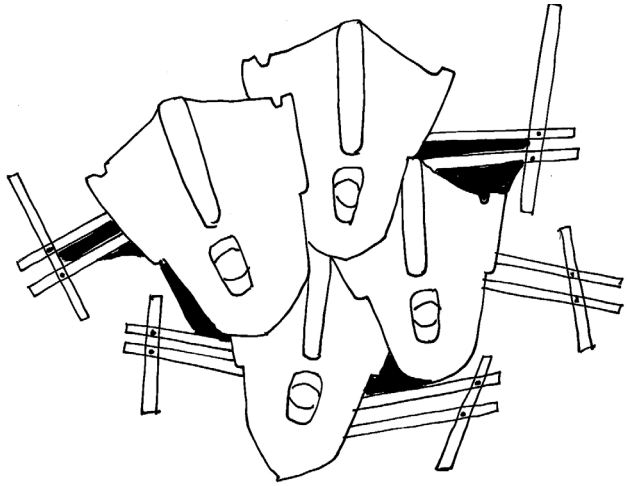

अपना घर ही अपना मंदिर

• पुष्पा राही

जानी-मानी कवयित्री। चर्चित कृतियाँ हैं–'कुछ अलग', 'स्वतः', 'शब्द की लहरें', 'स्वयं' तथा 'एक युग के बाद' (काव्य)। हिंदी अकादेमी के 'साहित्यिक कृति पुरस्कार' समेत अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

बड़ी कमाई

आशीर्वाद किसी के भी हों अपनी तो बन आई है
पता नहीं किन पुण्यों ने की इतनी बड़ी कमाई है,
कुछ बुजुर्ग जो बिछड़े हमसे उनकी भी है कृपा रही
आसमान से उन्होंने भी दया-दृष्टि बरसाई है।

हमने ज्यादा नहीं किया कुछ बचे रहे हाँ द्वेषों से
इसीलिए दिन-रात बचे हम बेसिर-पैर क्लेशों से,
रोने की नौबत ही आने दी न कभी हँस लिये सदा
चाही नहीं किसी की, दी अपने को आप बधाई है।

मन रक्खा यों साफ-साफ रक्खे जैसे कोई दर्पण
अपने को ही अपना देते रहते हैं हिसाब क्षण-क्षण,
चित्रगुप्त भी माँगेगा तो क्या हिसाब माँगेगा वह
हम तो ऐसे हैं ज्यों जल में किरणों की परछाईं है।

अपने पर विश्वास बहुत है औरों पर भी करते हैं
इसीलिए तो फूँक-फूँक हर समय कदम हम धरते हैं,
चलते-चलते छोटे बच्चों से जा हाथ मिलाते हैं
हमसे कोसों मील हमेशा से ही रही लड़ाई है।

आत्मप्रशंसा नहीं गीत यह आत्मकथा जैसा समझो
या यह समझो जैसे हैं हम बस बिल्कुल वैसा समझो,
ज्यादा कुछ कहना भी नहीं न कहना अधिक जरूरी है
और न इसमें हमने अपनी की कुछ अधिक बड़ाई है।

नाम राम का

इतना सब आराम साथ में नामराम का
लगता है कर रहे काम हम बड़े काम का,
लेन-देन कुछ नहीं किसी से किसी तरह का
मतलब क्या इसलिए किसी भी तामझाम का।
फुरसत ही फुरसत है फुरसत से भी ज्यादा
किया कभी भी नहीं किसी से कोई वादा,
अपने में हैं मग्न दिवाने हैं अपने ही
हमें पता दिन में है क्या-क्या काम शाम का।
अपनी ही है रात नींद भी है अपनी ही
अपना ही है राग और ढफली भी अपनी,
सोकर उठते तो उठते हैं इत्मिनान से
दिल से करते धन्यवाद सूरज ललाम का।
हमने कोसा नहीं किसी को और न खुद को
और न जाकर पूजा कहीं किसी बुत-वुत को,
अपना घर ही अपना मंदिर वही शिवालय
क्यों देखें फिर बैठ स्वप्न हम चारधाम का।
ईश्वर करे कटे जीवन बस इसी तरह से
इससे भी बेहतर हो जाए किसी तरह से,
उम्र बची जो वह भी गुजरे ठाठ बाट से
लेंगे तब हम और जोर से नाम राम का।

नाटकबाजी

ताम-झाम के बड़े तमाशे समझ नहीं आए
कहाँ गए वे सादे दिन जो हमें कभी भाए,
अब तो देखो जिधर-उधर ही नाटकबाजी है
है कोई जो खुले कंठ से सच्चाई गाए।
सबसे बड़ा तमाशा तो शादी का मंडप है
क्या मजाल जो बित्ता भर भी दुलहन शरमाए,
डूबे हैं आकंठ शान-शौकत में सब-के-सब
किसके घर सादगी बिचारी रहने अब जाए।
चकाचौंध ज्यादा है पर आँखें तो दो ही हैं
उन दोनों को आखिर कोई कब तक चुँधियाए,
होड़ लगी है आपस में आडंबर जीत रहा
असमंजस में दुनिया सारी किसको अपनाए।
हुआ समझ से परे सभी कुछ अपनी तो भैया
बदले युग को देख-देख हम बेहद घबराए,
अगर ईश्वर है तू तो बस रहम जरा करना
जैसा चाहें हम कम-से-कम वैसा जी पाएँ।

साअ
डी-१३ ए/१८ द्वितीय तल, मॉडल टाउन,
दिल्ली-११०००९
दूरभाष : ०११-२७२१३७१६

भुल्लन चाचा ने यों मनाई दीवाली

● प्रकाश मनु

दीवाली नजदीक आ रही थी, मगर भुल्लन चाचा की परेशानी बढ़ती जा रही थी। इसलिए कि कुछ रोज पहले ही निक्का ने उन्हें शहर की दीवाली की जो हकीकत बताई थी, वह उन्हें बिल्कुल अच्छी नहीं लगी थी। भला यह दीवाली मनाने का कौन सा ढंग हुआ कि अजीब-अजीब पटाखों की ऐसी जोर की धूँ-धाँ हो कि घर के बड़े-बुजुर्ग लोगों की हालत खराब हो जाए। और फिर ऊपर से गंधक का धुआँ और प्रदूषण ऐसा कि राम बचाए! न-न, वे तो ऐसी दीवाली नहीं मनाएँगे। बिल्कुल नहीं।

कोई चार महीने पहले ही निक्का और गौरी के भुल्लन अपने गाँव हुल्लारीपुर से यहाँ आए थे। दिल्ली की सरोजिनीबाई कॉलोनी में। और यहाँ की दीवाली के बारे में सुन-सुनकर वे परेशान थे। मगर उनके गाँव में तो दीवाली की क्या बात थी। लोग महीनों पहले से इंतजार करते थे कि दीवाली आएगी तो क्या-क्या पकवान बनेंगे। देसी किस्म की मिठाइयों की बहार थी। इनमें बहुत सारी मिठाइयाँ ऐसी थीं, जिनका पूरे साल इंतजार करना पड़ता था, क्योंकि दीवाली के अवसर पर ही वे कड़ाही से छुन-छुन करती प्रकट होती थीं। और सजावट की चीजें भी घर की बनी हुई। लोग तरह-तरह के रंग-बिरंगे कंदील बनाते थे। उन्हें खूब ऊँचा टाँगने की प्रतियोगिता होती थी। जिसका कंदील बढ़िया बना होता और ऊँचा टँगा हुआ दूर से तारे की तरह झलमल-झलमल करता, उसे गाँव के सरपंच हरिहर काका अपने हाथ से पुरस्कार देते।

फिर दीवाली से पहले रामलीला भी तो क्या कमाल की होती थी। थी तो गाँव की रामलीला, मगर ओह, क्या धूम थी! गाँव में बिजली का तो ठिकाना नहीं था, पर गैस के हंडे जलाकर खूब रोशनी का इंतजाम हो जाता। ऐसी भावपूर्ण रामलीला होती थी कि कोई ढाई-तीन घंटे तक चलती, मगर देखनेवाले थकते ही नहीं थे। बीच-बीच में स्त्रियों और बच्चों की प्रेमपूर्ण जय-जयकार सुनाई देती, 'सियावर रामचंद्र जी की जै···!' इससे रामलीला करनेवालों का जोश और बढ़ जाता था। कभी-कभी ऐसे करुण दृश्य भी आ जाते कि बहुत सी स्त्रियाँ तो रोने लग जातीं। मगर रामजी की लीला का आनंद तो ऐसा था कि कोई छोड़ना ही नहीं चाहता था।

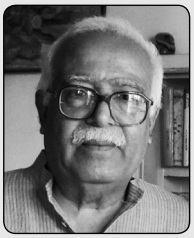

वरिष्ठ कवि-कथाकार। 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद' उपन्यास चर्चित हुए। 'एक और प्रार्थना', 'छूटता हुआ घर' कविता-संग्रह तथा 'अंकल को विश नहीं करोगे', 'अरुंधती उदास है' समेत ग्यारह कहानी-संग्रह। शिखर साहित्यकारों से मुलाकात, संस्मरणों और आलोचना की कई पुस्तकें। साहित्य अकादमी के पहले बाल-साहित्य पुरस्कार, उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'बाल-साहित्य भारती' पुरस्कार तथा हिंदी अकादमी के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित।

अब गाँव में भी थोड़ा-बहुत तो बदला है, मगर दीवाली तो दीवाली है। त्योहारों की रानी। दीवाली पर वहाँ अब भी बहुत कुछ ऐसा है कि सच्ची-मुच्ची दिल को मोह ले। उनके हुल्लारीपुर गाँव में भी अब कुछ लोग बाजार से ला-लाकर बल्बों की लड़ियाँ लगाने लगे हैं, पर दीयों की तो बात ही कुछ और है। गाँव में दीये भला कौन नहीं जलाता और दीये न जलाओ तो भाई, काहे की दीवाली! फिर हर आदमी अपने घर को साफ करता है तो आसपास की सफाई का भी खयाल रखा जाता है। पूरा गाँव एकदम नया-नया और चमकीला सा लगता है।

और फिर बच्चों की तो वहाँ क्या ही मौज थी। इसलिए कि कुछ समय से बच्चा पार्टी को ही तो हुल्लारीपुर गाँव की रामलीला का जिम्मा मिल गया था। बच्चे इस मौके पर जो कमाल दिखाते, उसे देखने के लिए तो आपको गाँव हुल्लारीपुर ही चलना पड़ेगा। गाँव के भदरी काका बच्चों के दोस्त ठहरे। उन्हें पूरी रामायण ऐसे याद थी कि उठते-बैठते हमेशा उनके मुँह से चौपाइयाँ झरतीं। बच्चों पर जब रामलीला का जिम्मा आया, तो सारे बच्चे मिलकर भदरी काका के पास गए। बोले, "भदरी काका, अब आप ही बेड़ा पार लगाएँगे!"

भदरी काका झट तैयार हो गए। बोले, "ठीक है, अपन करेंगे, करके दिखा देंगे। अरे, बच्चों ने तो बड़े-बड़े काम कर डाले इस देश में। रामलीला की तो बात ही क्या है!" फिर सुनाने लगे कि वे बचपन में

लक्ष्मण बने थे तो कैसे सारी धनुहीं तोड़-तोड़ के उन्होंने फेंक डालीं और फिर अपने तेज-तर्रार संवादों से परशुरामजी को ऐसा छकाया कि देखकर सारी सभा हक्की-बक्की···!

भुल्लन चाचा को याद आया, पिछले बरस गाँव में बच्चों की रामलीला में वे रावण बने थे और उन्होंने क्या कमाल का रोल किया था। रावण जैसी बड़ी-बड़ी मूँछें और रोबदार आवाज क्या ऐसे ही आ जाती? पर भदरी काका ने मदद की। कपड़े की मूँछें बनाकर बड़ी सफाई से चिपकाई गईं और आवाज के उतार-चढ़ाव का नाटकीय तरीका भी भदरी काका ने ही सिखाया। बस, फिर तो रावण के ऐसे गजब के संवाद बोले उन्होंने कि लोगों को लगा, सच्ची-मुच्ची का रावण सामने मौजूद है। रामलीला देखनेवाले अपनी जगह से तिल भर हिलने को तैयार नहीं थे।

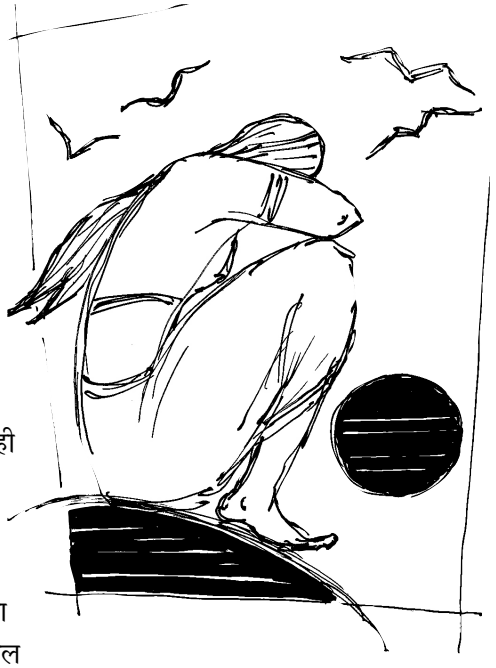

फिर जब उन्होंने मंच पर आते ही उद्घोष किया, "मैं लंकपति···! तीनों लोकों में सबसे वीर, महा पराक्रमी···महा बलशाली···!" तो भदरी काका कितने खुश हुए थे। आसपास के गाँवों से भी उस दिन मार तमाम लोग रामलीला देखने आए थे।

वाह, कैसी अजब धूम थी। कैसा आनंद ही आनंद···!

□

भुल्लन चाचा अपने गाँव हुल्लारीपुर की यादों में खोए थे कि फिर अचानक उन्हें निक्का और गौरी की बात याद आ गई, "अरे, आजकल शहरों में तो बुरा हाल है चाचा! दीवाली के दिन तो घरों से निकलना ही मुश्किल हो जाता है। एक तो पटाखों की धाँय-धुम्म का कनफोड़ू शोर। ऊपर से ऐसा प्रदूषण कि सच्ची-मुच्ची कमजोर दिल के लोग तो कलेजा ही थाम लें!" सुनकर वे उदास हो गए थे।

भुल्लन चाचा सोच रहे थे, अरे भई, दीवाली तो प्यार का त्योहार है। खुशी से मिलकर बैठने का त्योहार है। ये थोड़ी कि ठाँ-ठूँ करके अड़ोसी-पड़ोसी क्या, पूरे मोहल्ले वालों को बहरा कर दो। जो बेचारे बीमार हैं, उनके तो दिल दहल उठें। यह तो ठीक नहीं।

उन्होंने निक्का और उसके पक्के दोस्तों से बात करने की सोची। सत्ते, देबू, गोविंदा, तन्ना और परमिंदर। सब आए भी, पर सोच रहे थे, ये भुल्लन चाचा तो बिल्कुल बुद्धू हैं। अरे, भई, दीवाली पर बच्चे-कच्चे पटाखे न छुड़ाएँ, ऐसा हो सकता है क्या? कौन बच्चा मान जाएगा इसके लिए?

हालाँकि परेशानी तो सबको थी। भुल्लन चाचा के पूछने पर निक्का के दोस्त गोविंदा ने शुरुआत की। बोला, "चाचा, सच्ची बताऊँ, मेरे मम्मी-पापा तो उस दिन घर से ही नहीं निकलते। शाम को ही दरवाजे, खिड़कियाँ बंद कर लेते हैं और फिर रात को बाहर झाँकते तक नहीं! कहते हैं, अब तो उत्पात का समय हो गया।···"

सत्ते बोला, "गुस्सा तो बहुत आता है। मन होता है कि जो इतने शोरवाले पटाखे छुड़ाए, उससे जाकर कहें कि पटाखे तुम छुड़ा रहे हो, तो इसका शोर भी अपने पास ही रखो। हमारे कान क्यों बहरे कर दे रहे हो?"

देबू ने बताया, "मेरी दादीजी को बड़ी तकलीफ होती है। वे बेचारी बीमार जो हैं। आप यकीन नहीं करोगे भुल्लन चाचा, दीवाली वाले दिन सच्ची-मुच्ची कानों में रुई ठूँसकर सोती हैं। कहती हैं, इससे कुछ तो चैन पड़ेगा।"

गौरी बोली, "पापा कहते हैं, पहले दीवाली की सजावट देखने जाते थे। पर अब तो लगता है, बाहर निकले तो जाने क्या आफत आ जाएगी!"

सुनकर भुल्लन चाचा का चेहरा कुछ लटक गया। बोले, "यह तो अच्छी बात नहीं है। बिल्कुल, अच्छी बात नहीं···!" फिर हमारी तरफ देखकर कहा, "तुम लोग कुछ नहीं करते? चाहो तो कुछ तो कर ही सकते हो।"

"नहीं, कुछ बच्चों से हमारी बात हुई। वे ऊपर-ऊपर से तो मान जाते हैं, पर ज्यादातर बच्चों को इसमें मजा आता है। ऐसे लोग इतने ज्यादा हैं कि कुछ भी कर लो, फर्क नहीं पड़ता।" निक्का और गौरी ने बताया।

भुल्लन चाचा कुछ सोचते हुए बोले, "अच्छा, आज जरा अपने मोहल्ले के बच्चों को बुलाओ तो। हम उनसे बात करेंगे।"

"अरे, वे तो अभी से ढेर सारे पटाखों के लिए जुगाड़ बैठा रहे होंगे। किसी को हजार रुपए के पटाखे चाहिए, किसी को दो हजार के। सब मम्मी-पापा के आगे ठुनठुना रहे होंगे!" सत्ते ने बुरा सा मुँह बनाकर कहा।

"पटाखे···! हजार, दो हजार के···!" भुल्लन चाचा को जैसे करंट लगा हो। बोले, "इनसे अगर किस्से-कहानियों की बढ़िया किताबें खरीदो, उन्हें मिल-बाँटकर पढ़ो तो कितना मजा आएगा। बहुत कुछ सीखने को भी मिलेगा आप लोगों को। बोलो, इस बार यही करें न। दीवाली पर कैसी रहेगी यह मिठाई?"

"बहुत अच्छी···पर चाचा, हम उन्हें समझा नहीं सकते।" तन्ना ने दो टूक शब्दों में कहा।

"अरे, तुम कहना तो कि भुल्लन चाचा बुला रहे हैं।" भुल्लन चाचा ने जोर देकर कहा।

"कह तो देंगे।" देबू ने सपाट लहजे में कहा, "पर चाचा, कह नहीं सकते कि वे लोग आएँगे कि नहीं!"

"अच्छा, तो फिर बोलना कि आज भुल्लन चाचा बड़ी मजेदार कहानी सुनाएँगे।"

सुनते ही सब बच्चों के चेहरे पर बड़ी चौड़ी मुसकान खिल गई। हँसकर बोले, "हाँ चाचा, फिर तो सब जरूर आ जाएँगे।"

□

और वाकई शाम को निक्का की छत पर पच्चीस-तीस बच्चों का हुजूम मौजूद था। सबके होंठों पर एक ही सवाल, "अरे निक्का, कहाँ हैं तुम्हारे भुल्लन चाचा? और भई, कहानी··· ? तुम्हारे भुल्लन चाचा जरा ठीक से सुनाते हैं।"

"अरे, ऐसी कहानी सुनाएँगे कि तुम बरसों तक याद ही करते रहोगे।" निक्का बोला, "बस, आते ही होंगे। कहकर गए हैं कि तुम लोग जरा देर बैठो, मैं अभी आया!"

"कहीं कहानी की तलाश में तो नहीं चले गए?" छुटकी ने तीर मारा तो सारे बच्चे हो-हो, हो-हो करके हँसे।

फिर वे जरा गपशप में लगे ही थे कि अचानक लगा, हवा में कुछ हलचल है। कुछ विचित्र फर-फर, फर-फर सी हो रही है। जैसे कोई चुपके से कानों में कह रहा हो कि होशियार, अभी कुछ होनेवाला है! और तभी अचानक भुल्लन चाचा नमूदार हुए। मगर कुछ ऐसे अंदाज में कि जितने भी बच्चे-कच्चे वहाँ थे, सबके मुँह खुले के खुले रह गए, "अरे, बाप रे···बाप! यह क्या··· ?"

सामने भुल्लन चाचा नहीं, रावण खड़ा था। वाकई रावण। काले चोगे और बड़ी-बड़ी मूँछों वाला। चेहरे पर वही घमंड और भारी ठसक, जो बस रावण के चेहरे पर ही नजर आती है। साथ ही हवा में फड़कती भुजाएँ, जैसे अभी पूरी धरती को उठाकर आसमान में फेंक देंगी। अरे भई, यह तो सच्ची-मुच्ची का रावण है!

बच्चे हैरान। पर वे आगे कुछ सोचें, इससे पहले ही रावण के गरजदार, लरजदार संवाद शुरू हो गए। उसने आते ही दोनों भुजाएँ तानकर बड़े अभिमान के साथ कहा, "इस पृथ्वीतल पर सब लोग अच्छी तरह सुन लें! मैं वही लंकपति हूँ, काल जिसके घर पानी भरता है। और देवता जिसके आगे थर-थर काँपते हैं। मैं वही रावण हूँ, वही···सबको रुलाने वाला रावण! हा-हा-हा-हा-हा··· !"

और फिर उसने एक के बाद एक ऐसे कमाल के डायलॉग सुना दिए कि सारे बच्चे 'रावणजी, रावणजी!' कहकर लट्टू हो गए।

अब तक राज खुल चुका था कि ये रावणजी कोई और नहीं, निक्का के प्यारे भुल्लन चाचा ही हैं। पर 'रावणजी' बोलने का कुछ अलग ही मजा था। एक छोटे बच्चे परमिंदर ने तो कह ही दिया, "रावणजी, हुण तुस्सी मैंन्नू जल्दी कोई कहाणी सुणाओ। छेती करो, छेती··· !"

इस पर आवाजें लगनी शुरू हो गईं, "हाँ-हाँ, कहानी, कहानी, कहानी··· ! रावणजी कोई नई कहानी।···बढ़िया सी!"

इस पर रावणजी ने सच्ची-मुच्ची कहानी सुनाई, पर भुल्लन चाचा बनकर। बोले, "अच्छा सुनो, सचमुच की कहानी। और वह यह कि हमारे गाँव हुल्लारीपुर में कैसे शुरू हुई रामलीला··· ?" फिर थोड़ा गला खँखारकर बोले—

बड़े दिन पहले की बात है, हमारे गाँव में ऐसी रामलीला होती थी कि दूर-दूर तक उसका नाम था। यहाँ तक कि शहर से भी लोग उसे देखने आया करते थे। और गाँव में रामलीला के कर्ता-धर्ता थे जमींदार राघवेंद्रबहादुर सिंह। राघवेंद्रबहादुर सिंह को खुद भी अभिनय में रुचि थी। कभी-कभी खुद भी दशरथ का पार्ट करते थे। रामलीला में कितना भी खर्च हो, उन्होंने कभी परवाह नहीं की। उनके बाद उनके बेटे गजेंद्रबहादुर सिंह ने यह परंपरा जारी रखी। पर जमींदार साहब की तीसरी पीढ़ी के लोग गाँव से शहर गए, और फिर पोते-पोतियाँ विदेश गए तो वहीं के हो गए। गाँव में बरसों से चला आ रहा रामलीला का सिलसिला भी खत्म हो गया। लोग रामलीला देखने के लिए तरस गए।

बच्चे हैरान। पर वे आगे कुछ सोचें, इससे पहले ही रावण के गरजदार, लरजदार संवाद शुरू हो गए। उसने आते ही दोनों भुजाएँ तानकर बड़े अभिमान के साथ कहा, "इस पृथ्वीतल पर सब लोग अच्छी तरह सुन लें! मैं वही लंकपति हूँ, काल जिसके घर पानी भरता है। और देवता जिसके आगे थर-थर काँपते हैं। मैं वही रावण हूँ, वही···सबको रुलाने वाला रावण! हा-हा-हा-हा-हा···!"

अब तो गाँव के लोग परेशान। कुछ लोग पड़ोस के कुबेरपुर गाँव में रामलीला देखने जाते, पर उसमें वैसा आनंद कहाँ। फिर एक परेशानी यह भी थी कि वहाँ से रात में घर आओ। स्त्रियाँ, बच्चे सब परेशान। इस पर बच्चों ने शोर मचाया, "रामलीला होनी चाहिए, अपने गाँव में रामलीला!" बुजुर्गों ने कहा, "ठीक है, तो मना कौन करता है? करो तुम लोग।"

सब एक ही बात कह रहे थे, "बाहर से रामलीला मंडली बुलाने पर तो बड़ा खर्च आता है। जमींदार राघवेंद्रबहादुर सिंह के परिवार वाले तो अब रहे नहीं। तो फिर कौन करेगा इतना खर्च?"

इस पर बच्चे मिलकर अपने प्यारे भदरी काका के पास गए, जो बच्चों को बहुत प्यार करते थे। भदरी काका सबको ले गए जमींदार रहमत साहब के पास। गाँव के जमींदार थे रहमत साहब। बोले, "राम-सीता क्या हमारे नहीं हैं भदरी काका? वे तो सबके हैं।···तुम अच्छी से अच्छी रामलीला मंडली बुला लो काशी से। जो भी खर्च आएगा, मैं दूँगा।"

पर तब तक हम बच्चों का रामलीला खेलने का मन बन चुका था। सो बाहर से मंडली बुलाने के बजाय खुद बच्चों ने रामलीला खेलने का निर्णय किया। शुरू में तो किसी को भरोसा ही नहीं था कि बच्चे भी कुछ कर सकते हैं। पर सारे बच्चे डट गए। खूब रिहर्सल पर रिहर्सल। भदरी काका ने खूब तैयारी करा दी।

बस, फिर तो ऐसी रामलीला हुई हुल्लारीपुर गाँव में कि हर कोई

हैरान। तब से अब तो हर साल बच्चा पार्टी ही हमारे गाँव में रामलीला करती है।···और गाँव के बड़े-बुजुर्ग लोग देख-देखकर ऐसे मुग्ध होते हैं कि बीच-बीच में जब सब मिलकर बोलते हैं, 'सियावर रामचंद्र की जय···!' तो बस समझो कि आसमान तक गूँज उठता है।···

"तो भई, ये थी कहानी हमारे गाँव में रामलीला शुरू होने की, जिसमें सारा कमाल दिखाया बच्चों ने! और गाँव के सारे लोगों ने पीठ थपथपाई हमारी।···कहो बच्चो, कैसी रही?" अपनी दिलचस्प कहानी खत्म करके, रावण की फुल ड्रेस रिहर्सल वाले पोज में भुल्लन चाचा मुसकराए।

"अरे, वाह, यह तो बढ़िया आइडिया है। फिर तो हम भी कुछ कर सकते हैं।" सत्ते बोला। इस पर सारे बच्चों ने समर्थन किया, "हाँ-हाँ-हाँ, जरूर। हम लोग करेंगे मुहल्ले में बढ़िया सी रामलीला! क्यों भुल्लन चाचा, आप हमारी मदद करेंगे न?"

"मगर अब समय ही कितना है! दीवाली को सिर्फ तीन रोज बचे हैं। आज से चौथे दिन दीवाली। तो अब करें तो क्या करें? इतनी जल्दी में क्या हो सकता है?" भुल्लन चाचा असमंजस में।

"अरे भुल्लन चाचा, आप करोगे तो हो सकता है। जरूर हो सकता है।" सारे बच्चे मिलकर चिल्लाए।

"तो ठीक है, हम लोग मिलकर कल और परसों तैयारी करेंगे। दीवाली से एक दिन पहले शाम के समय होगी हमारी रामलीला। उसमें राम के वन से लौटने के बाद का दृश्य हम लोग दिखाएँगे। और उसके बाद भरत मिलाप होगा। एक ओर से राम आएँगे, दूसरी ओर से भरत। फिर दोनों भाई जब गले मिलेंगे तो कैसा सुंदर, भावनापूर्ण दृश्य होगा। देखकर सब मुग्ध हो जाएँगे।···क्यों बच्चो, क्या कहते हो?"

"वाह···वाह, सुंदर! बड़ा सुंदर···! बस भुल्लन चाचा, आप तैयारी शुरू कर दो अभी से।" सत्ते, मीतू, निक्का, तन्ना, गोविंदा सब मिलकर बोले।

"तो ठीक है। बताओ फिर, तुममें से कौन राम बनेगा, कौन सीता? लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान भी बढ़िया होने चाहिए। फिर राज परिवार के और लोग भी होंगे। जल्दी से लिखा दो अपने नाम।···पर याद रखना, सबको रिहर्सल में आना होगा और डायलॉग याद करने होंगे।" कहकर भुल्लन चाचा ने वाकई डायरी खोल ली।

इस पर रामलीला के लिए नाम लिखवाने वाले बच्चों की होड़ लग गई। भुल्लन चाचा ने सबके नाम लिखे। फिर कहा, "ठीक है, कल सब लोग तैयारी करके आना। कल ही सबकुछ तय कर लेंगे। तुम्हारी आवाज का टैस्ट होगा और रिहर्सल भी शुरू हो जाएगी। दीवाली से एक रोज पहले होगी हमारी रामलीला। उसी दिन सारे बच्चे मिलकर लोगों से अपील करेंगे कि कोई पटाखे न जलाए। वे पैसे अगर लोग बच्चों को दें तो हम उससे अच्छी-अच्छी कहानियों और कविताओं की सुंदर किताबें खरीदकर लाएँगे। फिर कभी-कभी कॉलोनी के बच्चों की कहानीवाली क्लास होगी। उसमें सारे बच्चे कुछ न कुछ सुनाएँगे।"

भुल्लन चाचा की बातों का बच्चों पर जादू सा हो गया था। बच्चे उसी समय से तैयारियों में लग गए। अलग-अलग कामों के लिए अलग-अलग टीमें बन गईं।

□

अगले दिन पूरे शहर में परचे बाँटे गए। उनमें रामलीला के विवरण के साथ ही बड़े मजेदार ढंग से आमंत्रण था, "सब लोग सुनो, सुनो, सुनो···! आपकी इस सरोजिनीबाई कॉलोनी में बच्चों की बड़ी अनोखी रामलीला होने जा रही है, जिसका निर्देशन भुल्लन चाचा करनेवाले हैं। यह ऐसी रामलीला होगी कि एक बार देखकर आप कभी भूल नहीं पाएँगे।···और हाँ, रामलीला का आनंद लेना है तो समय से आकर स्थान ग्रहण करना न भूलें। इसलिए कि बड़ी दूर-दूर से इसे लोग देखने आएँगे। फिर न कहिएगा कि हमें बताया नहीं!"

इधर भुल्लन चाचा जुटे थे। एक ओर मेकअप की तैयारी, दूसरी ओर डायलॉग बोलने की। बच्चे भी कम नहीं थे। बढ़िया तैयारी और रिहर्सल ने बच्चों का जोश और बढ़ा दिया था। उधर घर-घर परचे बाँटकर प्रचार भी चल रहा था। एक रिक्शे पर भी बच्चे पूरे शहर में घूमकर सबको इस अनोखी रामलीला के बारे में बता रहे थे।

और सचमुच कमाल ही हो गया। रामलीला देखने इतने लोग आ गए कि मैदान में तिल धरने की जगह न थी। रामलीला की शुरुआत अयोध्या में पुष्पक विमान के उतरने से हुई। आसपास विशाल जनसमूह राम और सीताजी की जय-जयकार कर रहा था। इसके बाद राम-भरत मिलाप की बड़ी अद्‌भुत झाँकी थी। फिर सब लोग आपस में मिले। अयोध्या के लोग कितने खुश थे, पर फिर भी आँखों से आँसू छलक पड़ते थे। हनुमानजी अयोध्या के वैभव को बड़े चकित भाव से देख रहे थे। उनकी यह अदा निराली थी। गोविंदा ने हनुमान का अभिनय करते हुए जान डाल दी थी।

सत्ते और निक्का ने भी कोई कम कमाल नहीं किया। उनके राम-भरत मिलाप के संवाद तो ऐसे भावपूर्ण थे कि वह दृश्य देखकर लोग गद्‌गद हो उठे। सब ओर राम और भरतजी का जय-जयकार हो रहा था।

रामलीला के बाद एक साथ पच्चीस-तीस बच्चे मंच पर आ गए। सब हुनमानजी की सेना वाला लाल वस्त्र धारण किए हुए। भुल्लन चाचा ने, जो मंच पर सबसे आगे खड़े थे, सब लोगों से विनती की कि वे प्रदूषण मुक्त दीवाली मनाएँ। उन्होंने कहा, "सरोजिनीबाई कॉलोनी के बच्चों ने

निर्णय किया है कि उनमें से कोई पटाखे नहीं जलाएगा!···लीजिए, अब आप बच्चों से ही सुनिए, वे क्या कहते हैं।" और उसी समय सारे बच्चों ने मिलकर यह गीत सुनाना शुरू कर दिया—

हम बच्चों की यह सरकार
करती है बस यही पुकार—
दीये जलाओ डगर-डगर
दीवाली हो जगर-मगर।
नहीं पटाखे मगर जलाना,
नहीं प्रदूषण और बढ़ाना।
विनती करती बारंबार,
हम बच्चों की यह सरकार,
नन्हे बच्चों की सरकार·· !

फिर भुल्लन चाचा ने कहा, "आप लोगों से अनुरोध है कि जो पैसे पटाखों पर बरबाद करते हैं, वे हमें दीजिए। हम उन पैसों से बच्चों के लिए कहानी और कविताओं की सुंदर-सुंदर किताबें खरीदेंगे, जिन्हें पढ़कर बच्चों का स्वस्थ मनोरंजन होगा और वे नई-नई बातें सीखेंगे भी। बच्चे अच्छी बातें सीखेंगे, तभी अच्छे बनेंगे। इसके लिए हम लोगों ने एक साप्ताहिक क्लास शुरू करने का भी निश्चय किया है, जिससे कि बच्चों की हर तरह की प्रतिभा का विकास हो।"

लोगों ने खुशी-खुशी भुल्लन चाचा का यह अनुरोध मान लिया। देखते-ही-देखते बहुत रुपए इकट्ठे हो गए। भुल्लन चाचा ही तो खजांची थे। एक-एक पाई वे अपनी डायरी में दर्ज करते जा रहे थे। पूरे बारह सौ साठ रुपए का चंदा मिला।

इसके बाद बच्चों का जलूस निकालने की तैयारी शुरू हो गई। भुल्लन चाचा ने बच्चों से कहा, "आप लोग जल्दी से रामलीला वाली ड्रेस उतारकर, अपने घरवाले कपड़े पहन लो। जुलूस में शामिल होना है।"

पर बच्चे तो कुछ और ही सोचे बैठे थे। निक्का बोला, "भुल्लन चाचा, बच्चे चाहते हैं कि सब रामलीला वाली ड्रेस में ही रहें। बाकी सारे बच्चों को हनुमानजी की सेना वाला लाल वस्त्र दे दिया है। सब ऐसे ही चलें तो लोगों पर और ज्यादा असर पड़ेगा।"

भुल्लन चाचा हँसे। बोले, "ठीक है। तुम खुश तो भुल्लन चाचा खुश।" सुनकर सब बच्चे खुशी के मारे नाचने लगे।

सचमुच बड़ा अद्‌भुत जलूस निकला बच्चों का। जो भी देखता, थोड़ी देर के लिए ठिठक जाता। जुलूस में आगे-आगे दो बच्चे थे, जिनके हाथों में एक बड़ा सा पोस्टर था। उस पर वही छोटी सी कविता लिखी हुई थी, जिसे अभी-अभी बच्चों ने मंच पर गाया था—

हम बच्चों की यह सरकार
करती है बस, यही पुकार—
दीये जलाओ डगर-डगर
दीवाली हो जगर-मगर।
नहीं पटाखे मगर जलाना,
नहीं प्रदूषण और बढ़ाना··· !

बच्चों का जलूस बड़े जोश के साथ आगे बढ़ता जा रहा था। रास्ते में जो बच्चे मिलते, वे भी उसमें खुशी-खुशी शामिल होते जाते। सरोजिनीबाई कॉलोनी के लोग जगह-जगह इकट्ठे होकर इस अद्‌भुत जुलूस को देख रहे थे। उन्होंने जीवन में पहली बार ऐसा अनोखा जुलूस देखा था। कई बुजुर्ग लोग तो जुलूस रोककर बच्चों को आशीर्वाद भी देते, "बिल्कुल ठीक कर रहे हो बेटा, तुम। बिल्कुल ठीक!"

कोई डेढ़-दो घंटे में पूरी कॉलोनी की परिक्रमा हो गई। रास्ते में जो लोग मिलते, वे उत्साहपूर्वक कहते, "हमने भी निश्चय कर लिया है, अब पटाखे नहीं, बिल्कुल नहीं! हम भी प्रदूषण मुक्त दीवाली मनाएँगे।"

अगले दिन दीवाली थी, पर बच्चे व्यस्त थे। इसलिए कि भुल्लन चाचा ने उन्हें नया आइडिया दे दिया था। सुबह से ही सारे बच्चे कंदील बनाने में जुट गए। भुल्लन चाचा ने कहा था, "इस बार सब लोग अपने हाथों से कंदील बनाकर घर में टाँगो। जिसका कंदील सबसे सुंदर होगा, उसे बढ़िया टॉफी का पैकेट इनाम में मिलेगा।"

सब बच्चे जुट गए। एक से एक सुंदर डिजाइन वाले कंदील बनाए बच्चों ने। रात में दीवाली की पूजा और दीए जलाने के बाद कॉलोनी के सारे बच्चे निक्का के घर इकट्ठे हुए। भुल्लन चाचा के साथ-साथ सब घूमने निकले। सबके कंदील देखे गए। आखिर में सारे बच्चों ने वोट देकर चुना, सत्ते का जहाज की शक्ल में बना कंदील प्रथम आया। तालियों की गड़गड़ाहट के बीच सत्ते को टॉफी का पैकेट मिला।

पूरी कॉलोनी का चक्कर लगाने के बाद भुल्लन चाचा लौट रहे थे, तो उनके साथ-साथ हँसती-किलकती पूरी बच्चा पार्टी थी। सब खुश थे। न कहीं पटाखों का शोर, न प्रदूषण। रास्ते में जो लोग देखते, वे भुल्लन चाचा की पीठ पर प्यार से धौल जमाकर कहते, "अरे भुल्लन, तुमने तो बड़ा कमाल किया। कितने बरसों बाद चैन से दीवाली मनाई सबने!"

जब भुल्लन चाचा निक्का और गौरी के साथ लौटकर आए, तो घर पर भी उनका जोरदार स्वागत हुआ। निक्का के पापा भी बड़े प्रभावित थे। बोले, "सच्ची भुल्लन, तू तो बड़े कमाल का निकला!"

निक्का की मम्मी जोर से हँसते हुए बोलीं, "लगता तो जरा बुद्धू सा है मेरा देवर, पर होशियार इतना कि बड़े-बड़ों के कान काट ले! क्यों, मैंने ठीक कहा न, भुल्लन?"

सुनकर भुल्लन चाचा कुछ ऐसे शरमाए कि बस कुछ न पूछो। इस पर निक्का पापा, मम्मी, समेत सबकी ऐसी हँसी फूट निकली कि बस रुकने का नाम ही नहीं। यहाँ तक कि भुल्लन चाचा भी शरमाना छोड़कर उस हँसी में शामिल हुए तो उनकी जोर की हो-हो, हो-हो सबसे अलग सुनाई दे रही थी।

५४५, सेक्टर-२९, फरीदाबाद-१२१००८ (हरियाणा)
दूरभाष : ०९८१०६०२३२७

साहित्य में विविध रूपा लक्ष्मी

● तरुण कुमार दाधीच

सुपरिचित लेखक। अब तक एक खंडकाव्य, सात बालकथा-संग्रह, दो निबंध, एक आलोचना, दो नाटक-संग्रह, एक कविता-संग्रह तथा आकाशवाणी उदयपुर से विविध वार्त्ताएँ प्रसारित। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ प्रकाशित।

प्राचीन साहित्य में लक्ष्मी के संबंध में जो सामग्री प्राप्त होती है, उनमें उस काल की लक्ष्मी के स्वरूप का परिचय मिलता है, परंतु विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं होती। हमारे महाकाव्यों—रामायण और महाभारत में जो देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं, उनमें लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन मिलता है। विभिन्न साहित्य में लक्ष्मी के विविध स्वरूप हमारे समक्ष आते हैं।

महाभारत में कुबेर की स्त्री भद्रा तथा ऋद्धि मिलती है और लक्ष्मी से भी इनका संबंध मिलता है। बौद्ध ग्रंथों में लक्ष्मी मणिभद्र की पुत्री कही गई है और 'सिरिका लक्ष्मी जातक' में लक्ष्मी को धतरथ की पुत्री कहा गया है, जो हमें यक्ष के रूप में भारहुत में प्राप्त होते हैं। मणिभद्र भी एक यक्षराज है, जो कुबेर के पार्षद हैं। महाभारत में यक्षिणी के एक मंदिर का राजगृह में वर्णन प्राप्त होता है और माना जाता है कि यह मंदिर लक्ष्मी का रहा है।

श्रीसूक्त को छोड़कर वैदिक काल में 'श्री' शब्द प्राय: शोभा, कांति, ऐश्वर्य, संपदा आदि के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सर्वप्रथम 'शतपथ ब्राह्मण' में श्री के स्वरूप का वर्णन मिलता है। 'तैत्तिरीय उपनिषद्' में भी श्री वस्त्र, भोजन एवं धन प्रदाता देवी के रूप में वर्णित है।

पौराणिक साहित्य में लक्ष्मी का विष्णु से अथवा नारायण से संबंध मिलता है। वैदिक लक्ष्मी अदिति का संबंध विष्णु से वेदों में मिलता है। यही सर्व प्रदाता सबकी माता कही गई है। पौराणिक साहित्य में रामायण तथा महाभारत में भी उनका स्वरूप स्पष्ट होता है। रामायण में ये कुबेर के पुष्पक विमान पर गजलक्ष्मी के रूप में हाथ में पद्म लिये हुए वर्णित है। महाभारत में लक्ष्मी को 'श्रीपद्मा' कहा गया है और यहाँ ये क्षीर सागर के मंथन से उत्पन्न हुई बताई गई हैं। साथ ही यहाँ लक्ष्मी को वैष्णवी भी कहा गया है।

बौद्ध ग्रंथों में लक्ष्मी पूजा का निषेध है, लेकिन इनके पंथ का वर्णन और पंथों के साथ 'मिलिंद पन्ह' में मिलता है। अन्य ग्रंथों में यह उल्लेख मिलता है कि लक्ष्मी की पूजा विशेष रूप से गृहस्थों के घरों में होती थी और आज भी यह परंपरा अनवरत रूप से चल रही है। साहित्य में गजलक्ष्मी का स्वरूप भी विविध प्रकार से वर्णित हुआ है। खड़ी लक्ष्मी का स्वरूप, बैठी लक्ष्मी का स्वरूप, कमल का पुष्प हाथ में लिये चार भुजाओं वाली लक्ष्मी का उल्लेख मिलता है। बैठी तथा खड़ी द्विभुज लक्ष्मी तथा गजलक्ष्मी का स्वरूप भारहुत, साँची, बोधगया आदि स्थानों पर मूर्तियों में मिलता है। हाथ में कमल लिये गजलक्ष्मी अत्यंत शुभ मानी जाने के कारण पद्महस्ता, पद्मस्थिता स्वरूपों में सिक्कों तथा मोहरों पर भी मिलती है।

लक्ष्मी का एक और स्वरूप, जो हमें मिलता है, वह दीप लक्ष्मी का है। यह स्वरूप आज भी बहुत प्रचलित है तथा दक्षिण भारत के प्रत्येक मंदिर में मिलता है। इस स्वरूप में एक स्त्री को 'सर्वाभरणभूषित' अर्थात् सुंदर वस्त्र पहने दिखाया जाता है। दीप लक्ष्मी के हाथ में प्रज्वलित दीप रहता है। इस प्रकार की मूर्ति गांधार काल में भी प्राप्त हुई है। इस प्रकार दीपलक्ष्मी के संबंध में ऐसा माना जाता है कि इनका यह स्वरूप भी प्राचीन था और आज भी बना हुआ है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक निराकार 'श्री' तथा 'लक्ष्मी' को कालांतर में साकार रूप दिया गया। संभवत: प्रचलित आदिवासियों की माता यक्षिणी को अपनाकर उनको आर्य देवी लक्ष्मी का रूप दे दिया गया। आज दीपावली के दिन लक्ष्मी का गजलक्ष्मी, दीपलक्ष्मी के रूप में पूजन हर घर में बड़े हर्षोल्लास के साथ किया जाता है।

सा अ

३६, सर्वरितु विलास, मैन रोड,
उदयपुर-३१३००१ (राज.)
दूरभाष : ९४१४१७७५७२

अपराधी

● रश्मि गौड़

सोमा को आज सुबह से ही रह-रहकर दर्द उठ रहे थे। उसे पता था कि उसका दूसरा बच्चा बस पधारने ही वाला है। पर करती क्या? गरीब की जोरू ठहरी, घर के सारे कामकाज निपटाने में लगी थी। चार साल की बेटी अनु भरसक अपनी माँ के साथ लगी थी, उसे लगता कि क्या न कर दे वह अपनी अम्मा के लिए, परंतु इतनी छोटी बच्ची चुपचाप छोटे-छोटे काम, जैसे बरतन धो दिए; बाहर से छोटी बाल्टी पानी भर-भरकर माँ को पकड़ा रही थी। बंद-बंद सा घर, दो कोठरीनुमा कमरे में अमरीश का छोटा सा परिवार रहता था। सामने आँगन खुला था, उसमें नल और शौचालय था। दोनों ओर आँगन में ऊपर की नालियाँ बहती थीं, जिनमें एक दिन भी मेहतर न आए तो भयंकर बदबू उठने लगती। अनु ज्यों ही पानी लेने आँगन में निकली, ऊपर से ताई उमा ने आवाज लगाई, "अरी अनु! कहाँ मर गई?"

डबडबाई आँखों से अनु बोली, "ताईजी, पापा गए हैं दाई को बुलाने, अम्मा काम निबटा रही है।" तभी सोमा के जल्दी-जल्दी दर्द उठने लगे, वह होंठ दबाकर पलंग पर लेट गई। थोड़ी ही देर में उसके पति अमरीश दाई को लेकर पहुँचे। सोमा ने गरम पानी, तौलिया और पुरानी धोती का प्रबंध कर लिया था। आते ही दाई ने सबकुछ अपने कंट्रोल में किया और एक घंटे में बड़ी सुंदर राजकुमारी जैसी बच्ची को इस दुनिया में प्रवेश कराया। बोली, "सोमा, क्या खावै तू जो इतनी सोनी-सोनी लौंडियाँ पैदा करै।" प्रसव के दर्द से निजात पा सोमा भी क्षीण सी हँसी हँसकर बोली, "चाची, रूखी-सूखी खाऊँ मैं तो, भगवान् की जैसी मर्जी।"

दाई ने छोटी का नाम 'सोनी' रख दिया। सौ रुपए ले के बाहर निकलने को थी कि बोली, "यों तेरी डायन जेठानी तो बहुत खुश होगी। जानै तू पिछले तीन बार इसनै अपना गर्भ गिराया कि लौंडिया है। अब चौथी बार फिर पेट से है। मेरे कू ना बुलाती, अस्पताल जावै, ताकि लौडिया ना हो जा। वो डॉक्टरनी है न संतोष! वो फोटू निकाल कै बता दै के छोरा है के छोरी! बता क्या जमाना आ गया?"

सुपरिचित लेखिका। विज्ञान की स्नातक और मुंबई जैसे बहुभाषी महानगर में रहने के बावजूद अपनी भावनाओं को सहज ही सरल हिंदी में उतार पाती हैं। दिल्ली के पाठ्यक्रम में बाल कहानियाँ 'रैपिड रीडर' में पढ़ाई जाती हैं। दो कहानी-संग्रह 'आधी दुनिया' तथा 'उस पार' प्रकाशित।

दाई के जाते ही जेठानी छज्जे पै फिर नमूदार हुई, देवरजी को आवाज लगाकर पूछा, "देवरजी, क्या हुआ छोरा या छोरी?" अमरीश बोला, "छोरी हुई है।" उमा ताली मारके हँसी, बोली, "ले, तुझे तो छोरियों ने घेर लिया।" कहकर फिर गायब हो गई।

अमरीश ने क्षुब्ध मन से अंदर आकर जल्दी-जल्दी स्टोव पर दूध उबाला, उसमें हल्दी डालकर सोमा को पिलाया। आज फिर वह ५०० रुपए उधार लाया था। आटे का हलवा सोमा ने बनाकर रख दिया था, वह तीनों ने खा लिया। सोमा में कुछ जान आई। बोली, "अब मैं ठीक हूँ, शाम को खिचड़ी बना दूँगी।" अमरीश ने फटी धोती में लिपटी अपनी गुड़िया को हाथ में लिया तो निहाल हो गया, बोला, "मेरी गुदड़ी में तो लाल पैदा हो रहे हैं।"

बच्ची का मुख देखकर तीनों ही मुग्ध थे, अपनी गरीबी, मजबूरी, दु:ख सब भूल गए। ताईजी अब तक नीचे नहीं आई। अमरीश और रमेश दोनों भाई ऊपर नीचे रहते थे। रमेश पैट्रोल पंप पर पेट्रोल डालता था और मालिकों से मिलकर मिलावटी पेट्रोल भरना, कम भरना इन सब तरकीबों में महारत हासिल कर चुका था। बेईमानी में उसको भी हिस्सा मिलता था।

उसकी पत्नी उमा कर्कशा थी और बद्‌जुबान भी। अमरीश प्राइमरी स्कूल में पढ़ाता था और उसका खर्च मुश्किल से ही

चलता। कई बार रमेश ने समझाया कि स्कूल के बच्चों के लिए जो राशन आता है, उसे बेच दो या और कुछ नहीं तो वहाँ का दूध ही ले आया करो, कौन देखता है? परंतु अमरीश को बेईमानी का पैसा जहर लगता, वह अपनी छोटी सी तनख्वाह में काम चलाता, साथ ही उसे पढ़ने-लिखने का बहुत शौक था, यदाकदा लिख भी लेता था, जो पत्रिकाओं में छपता रहता।

रमेश को तीन पुत्र हुए, उमा फूली न समाती थी, घमंड से कहती, "मुझे छोरी हो ही न सकती," पर लोग जानते थे कि वह चार बार लड़कियों वाला गर्भ गिरवा चुकी है, इसमें उसके मायके वाले बहुत मददगार साबित होते।

इधर बेईमानी का पाठ पढ़ते, माँ की बद्‌जुबानी सीखते तीनों पुत्र बड़े होने लगे। इधर अमरीश की दोनों बच्चियाँ सुसंस्कृत और संवेदनशील थीं। पढ़ाई में भी अव्वल रहतीं। अमरीश ने तंग आकर नीचे का मकान छोड़कर मुहल्ले में एक रूम-किचन का घर ले लिया, जहाँ वह सुकून से रह सके और बच्चों पर ताई का गलत असर न पड़े।

सब दिन होत न एक समान! अमरीश के दिन भी फिरने लगे। उसे एक कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार राशि २०,००० रुपए मिली, फिर तो उसकी कहानियाँ हाथोहाथ ली जाने लगीं। संकलन छपकर बेस्ट सेलर (Best seller) बन गए और मध्य प्रदेश के छोटे से कस्बे से वह भोपाल में अपने बँगले में आ गया।

सोनी और अनु दोनों पढ़ाई में अव्वल थीं ही, उनका शांत और सुंदर स्वभाव सभी को प्रभावित करता। कालांतर में अनु पी.सी.एस. में उत्तीर्ण होकर अपने ही कस्बे में डिप्टी कलक्टर होकर पहुँच गई। इस बीच अमरीश और रमेश का संपर्क लगभग टूट ही गया था। रमेश ने बेईमानी कर-करके अपना पेट्रोल पंप खोल लिया था और उसका मिलावटी धंधा जोरों से चल रहा था। अब तो उसके तीनों बेटे भी नई-नई तरकीबें निकालकर ग्राहकों को लूटने में लगे थे। कस्बे में उनकी गुंडागर्दी मशहूर थी।

एक बार बड़े बेटे सुमित की किसी ग्राहक से कहा-सुनी हो गई। ग्राहक ने उनके पेट्रोल का पीपा भरवाकर लैब में भेज दिया। वहाँ पर उसमें भारी मात्रा में मिलावट मिली, सो उसने शिकायत कर दी, सुमित गिरफ्तार हो गया। दूसरे बेटे रोहित ने गुस्से में आकर उस ग्राहक पर हमला कर दिया, जिससे उसे भी हवालात की हवा खानी पड़ी। तीसरा बेटा विजय डर के मारे भाग गया और पेट्रोल पंप पर ताला लग गया। रमेश और उमा के तो प्राण सूख गए, पुलिस बहुत भारी रकम की माँग कर रही थी। क्या करे, कैसे करे, कोई वसीला भी तो नहीं! तभी पड़ोसी अखबार लेकर आया, बोला, "ये अपने अमरीश की छोरी अनुप्रिया डिप्टी कलक्टर होकै आई है? मुझे तो वह ई लग रही है।" दोनों पति-पत्नी में मानो किसी ने प्राण फूँक दिए, "अरे, ये तो वही लग रही है।"

पर क्या मुँह लेकर जाएँ! उमा बोली, "अरे, सरम वगैरा छोड़ो, अपने परिवार के लिए इतना भी न करेगी क्या?"

इस अंक के चित्रकार

संदीप राशिनकर

जाने-माने लेखक एवं चित्रकार। कई अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में चित्रों का चयन व प्रदर्शन। राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में हजारों चित्रों/रेखांकनों का प्रकाशन, अनेक प्रतिष्ठित प्रकाशनों की पुस्तकों के आवरण।

भित्ति चित्रों (म्यूरल्स) के क्षेत्र में अनेक स्थानों/प्रतिष्ठानों पर भव्य म्यूरल्स का सृजन एवं अभिनव प्रयोगों से इस शैली में प्रतिष्ठित कार्य।

कविताओं के अलावा कला एवं साहित्य-संस्कृति पर समीक्षात्मक लेखन/प्रकाशन।

संपर्क : ११-बी, राजेंद्र नगर, इंदौर-४५२०१२
दूरभाष : ९४२५३१४४२२

"परिवार! अपना परिवार! जब ये पैदा हुई थी, तब कितना तिरस्कार किया था इनका! देखने नीचे तक नहीं गई थी, हाथ मैं धेला तक न रखा था, न ताऊ ने, न ताई ने।" पड़ोसी बोल उठा।

"अजी, तुम चुप रहो, सब घरों में फूटे भांडे हैं, इससे क्या खून का रिश्ता मिट जावै।" उमा दार्शनिक होकर बोल उठी। पड़ोसी मुँह बिचकाकर चला गया। वह तो इन्हें चिढ़ाने आया था और उसका काम हो गया।

दोनों मियाँ-बीबी अनुप्रिया के ऑफिस पहुँचे। चपरासी ने बाहर रोक लिया, रमेश बोले, "कहो, उनके ताऊ-ताई आए हैं मिलने, हमारी भतीजी है वो!"

चपरासी अविश्वास से उन्हें देखते हुए अंदर गया। थोड़ी देर में बाहर आकर बोला, "मैडम कह रही हैं कि उनके तो कोई ताऊ-ताई हैं ही नहीं। जाओ-जाओ बड़े अफसरों के रिश्तेदार रोज पैदा होते रहते हैं।"

अपना सा मुँह लेकर दोनों लौट आए। दो बेटे हवालात में, एक भगोड़ा, बिजनेस चौपट। आज उमा का सर घूम रहा था, चार कन्याओं का भ्रूण मानो अट्टहास कर रहा था, उसे अपनी हत्या का अपराधी करार कर सजा मुकर्रर कर रहा था। उसकी हालत भीष्म पितामह की तरह हो गई थी, जो तीरों की शैया पर पड़े मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। आज उमा भी चार भ्रूण कन्याओं के शव पर लेटी सिसक रही थी कि कोई अर्जुन आए और उसे इस पीड़ा से मुक्ति दिलाए।

डी ३०३, आम्रपाली
ईडन पार्क, ब्लॉक : एस-२७
नोएडा-३०१३०१
दूरभाष : ९८६८८०१६१२

आलेख

भारत का स्वतंत्रता आंदोलन और जम्मू-कश्मीर में इसकी गूँज

• सिंधु कपूर

भारतीय रियासतों में जम्मू-कश्मीर शायद एकमात्र राज्य था, जिसकी स्थापना अंग्रेजों द्वारा एक संधि के माध्यम से की गई; वह संधि थी—१६ मार्च, १८४६ की अमृतसर संधि। महाराजा गुलाब सिंह ने जम्मू-कश्मीर में डोगरा वंश की नींव रखी और उन्होंने १८५७ तक शासन किया। इसके पश्चात् उनके पुत्र रणबीर सिंह ने १८५७ से १८८५ तक शासन किया। महाराजा प्रताप सिंह का कार्यकाल १८८५ से १९२५ तक रहा और महाराजा हरिसिंह ने १९२५ से १९४७ तक शासन किया। जम्मू-कश्मीर के राजनीतिक आंदोलन के इतिहास में रुचि रखनेवाले किसी भी व्यक्ति को ज्ञात है कि राजनीतिक प्रकृति का एकमात्र जन-आंदोलन जो यहाँ उभरा था, वह १९३० के दशक में जम्मू-कश्मीर मुसलिम कॉन्फ्रेंस के बैनर तले शुरू हुआ था। लेकिन शोध के दौरान यह ज्ञात हुआ है कि शुरुआत में जम्मू-कश्मीर के लोग स्वदेशी आंदोलन, जो १९०५ के बंगाल-विभाजन के बाद उत्पन्न भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन था, से आकर्षित व प्रभावित थे।

तथ्य यह है कि जम्मू-कश्मीर में राष्ट्रवादियों ने अपनी गतिविधियों को लो प्रोफाइल रखा था। उन्होंने अपनी गतिविधियों का केंद्र शिक्षण संस्थानों व सेना छावनियों को बनाया हुआ था। उनकी गतिविधियों में साहित्य का वितरण सम्मलित था, जिसमें स्वतंत्रता आंदोलन और आर्य समाज की विचारधारा जैसे विषयों पर पुस्तकें, समाचार-पत्र व अन्य सामग्री शामिल होती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रवादियों की रणनीति शुरू में ब्रिटिश विरोधी जागृति पैदा करने की थी, जिससे लोगों को संघर्ष के लिए तैयार किया जा सके। अंग्रेजों ने हिंसा फैलने की आशंका जताई थी, लेकिन हमें उनकी इस आशंका को प्रमाणित करने के लिए कोई सबूत नहीं मिले। यह भी संभव है कि राष्ट्रवादियों के द्वारा राज्य में मजबूत नेटवर्क बनने से पहले ही अंग्रेजों को इसकी भनक लग गई हो। इस आंदोलन ने हालाँकि कोई बड़ी उपलब्धि नहीं प्राप्त की, लेकिन राज्य के लोगों, विशेषकर हिंदू-समाज ने शिक्षा क्षेत्र में गहरी पैठ बना ली थी।

अभिलेखागार में उपलब्ध अभिलेखों के अनुसार १९०७ राज्य के राजनीतिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण वर्ष था। ब्रिटिश भारत में राजनीतिक विकास और ब्रिटिश विरोधी प्रदर्शन की गूँज जम्मू, जिसकी सीमा पंजाब से लगती थी, में सुनाई पड़ने लगी थी। इस ब्रिटिश विरोधी लहर की शुरुआत का पहला संकेत १९०७ में सामने आया, जब लाहौर में पढ़नेवाले तीन युवक—भीखम सिंह, मोहनलाल और जमना दास छुट्टियों में अपने घर आए और उन्होंने लाहौर से प्रकाशित 'पंजाबी' नामक पत्रिका के लिए सामूहिक रूप से सदस्यता अभियान चलाया। इस पत्रिका की प्रकृति ब्रिटिश विरोधी थी। जम्मू के कुछ स्थानीय छात्रों ने भी इस अभियान में उनकी सहायता की थी। सी.आई.डी. रिपोर्ट में उनके नाम ताराचंद, भगवान दास मेंगी और गुलशरण दास के रूप में दर्ज किए गए हैं; इनमें कॉलेज के एक शिक्षक संत सिंह का नाम भी शामिल था। वहीं इसी स्कूल के अन्य छात्र रुद्रमल को 'वंदे मातरम्' के नारे लागते हुए पाया गया। इस प्रकार की गतिविधियों की रिपोर्ट जब महाराजा प्रताप सिंह के पास पहुँची तो उन्होंने इन छात्रों को तत्काल राज्य से बाहर करने का आदेश दिया। निश्चित रूप से ये छात्र जम्मू-कश्मीर रियासत में स्वतंत्रता आंदोलन की शुरुआत के लिए उल्लेखनीय हैं। राज्य में ब्रिटिश अधिकारियों के लिए ज्यादा परेशान करनेवाली बात यह थी कि गुजराँवाला से प्रकाशित होनेवाले 'इंडिया' नामक समाचार-पत्र का व्यापक प्रसार हो रहा था। इन घटनाओं ने वास्तव में तत्कालीन ब्रिटिश रेजिडेंट यंग हसबैंड को विचलित कर दिया था। इस प्रकार एक से अधिक कारणों से वर्ष १९०७ जम्मू-कश्मीर के राजनीतिक आंदोलनों के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

इसी बीच पंजाब में अंग्रेज अधिकारी राष्ट्रवाद की लहर को दबाने में व्यस्त थे; फलस्वरूप स्वतंत्रता आंदोलन को समर्थन देनेवाले समाचार-पत्रों के प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा दिया गया और प्रिंटिंग प्रेस को जब्त कर लिया गया। प्रिंटिंग प्रेस, 'द कौमी प्रेस, लाहौर',

जम्मू-कश्मीर के उच्च शिक्षा विभाग में इतिहास का अध्यापन। पाँच स्वर्ण पदक एवं अनेक छात्रवृत्तियाँ प्राप्त। अंतरराष्ट्रीय युवा शिविरों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, संगोष्ठियों और वेबिनार में सहभागिता। तीन पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति डीन, फैकल्टी ऑफ सोशल साइंसेज जम्मू विश्वविद्यालय में क्लस्टर के रूप में कार्यरत। स्थानीय इतिहास, विरासत और मौखिक परंपराओं के संरक्षण के लिए समर्पित।

जिसमें पंजाबी अखबार छापा जाता था, को जब्त कर लिया गया तथा उसके संपादक के दफ्तर की तलाशी ली गई। इसी दौरान पाया गया कि 'इनकलाब' पत्र के एक संवाददाता विश्वनाथ करनी जम्मू के निवासी थे। उनके बारे में कहा गया कि वह 'देशद्रोही साहित्य' के प्रसार व बिक्री में संलिप्त थे। तदनुसार विश्वनाथ को गिरफ्तार कर लिया गया और बाद में १९११ में १,००० रुपए की व्यक्तिगत जमानत देने के बाद राज्य में लौटने की अनुमति प्रदान की गई। चंद्रशेखर आजाद और भगवती चरण सहित भगतसिंह और उनके सहयोगियों की वीरता, साहस और बलिदान की गाथा प्रसिद्ध है। हालाँकि बहुत से लोग नहीं जानते कि भगतसिंह और उनके सहयोगियों ने जम्मू को अपने एक ठिकाने के रूप में इस्तेमाल किया था और अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए वर्ष १९२६ में जम्मू के वेद मंदिर में अपना एक केंद्र स्थापित किया था। जम्मू के प्रसिद्ध वकील रहे स्वर्गीय इंद्रजीत गुप्ता अपनी किशोरावस्था में युवा छात्र के रूप में लाहौर में इन क्रांतिकारियों के संपर्क में आए थे। भगतसिंह ने उन्हें जम्मू में एक केंद्र की स्थापना का कार्य सौपा था, जो युवाओं को क्रांति के लिए प्रशिक्षित कर सके और साथ में जहाँ गोला-बारूद का भंडारण किया जा सके।

चंद्रशेखर आजाद और भगवती चरण सहित भगतसिंह और उनके सहयोगियों की वीरता, साहस और बलिदान की गाथा प्रसिद्ध है। हालाँकि बहुत से लोग नहीं जानते कि भगतसिंह और उनके सहयोगियों ने जम्मू को अपने एक ठिकाने के रूप में इस्तेमाल किया था और अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए वर्ष १९२६ में जम्मू के वेद मंदिर में अपना एक केंद्र स्थापित किया था। जम्मू के प्रसिद्ध वकील रहे स्वर्गीय इंद्रजीत गुप्ता अपनी किशोरावस्था में युवा छात्र के रूप में लाहौर में इन क्रांतिकारियों के संपर्क में आए थे। भगतसिंह ने उन्हें जम्मू में एक केंद्र की स्थापना का कार्य सौपा था, जो युवाओं को क्रांति के लिए प्रशिक्षित कर सके और साथ में जहाँ गोला-बारूद का भंडारण किया जा सके।

दांडी मार्च और जम्मू-कश्मीर में इसका प्रभाव

१२ मार्च, १९३० को दांडी मार्च शुरू होने के बाद व गांधीजी की गिरफ्तारी के परिणामस्वरूप इसका प्रभाव श्रीनगर व जम्मू दोनों जगहों पर महसूस किया गया। गांधीजी की गिरफ्तारी की खबर के बाद ६ मई, १९३० को श्रीनगर में हड़ताल रखी गई। अगले दिन ७ मई को स्थानीय लोगों के समर्थन से श्री प्रताप कॉलेज में छात्रों ने एक सामूहिक बैठक की। इसी प्रकार जम्मू में भी जुलूस व विरोध जैसी क्रांतिकारी गतिविधियाँ आयोजित की गईं, हड़ताल रखी गई। जम्मू के मुख्य बाजार से होकर लगभग ४०० लोगों का जुलूस निकाला गया। हिंदू महिलाओं की एक पार्टी भी छात्रों के साथ सम्मिलित हुई। जैसा कि अपेक्षित था, राज्य सरकार ने ९ मई, १९३० को डोगरा सदर सभा को भंग कर दिया। १९२९ में जब यह घोषणा हुई कि कांग्रेस का अगला अधिवेशन लाहौर में होगा तो डोगरा सदर सभा के सचिव लाला हंसराज महाजन ने १३ नवंबर, १९२९ को लाहौर कांग्रेस कमेटी को एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने कहा कि डोगरा सदर सभा और राष्ट्रीय कांग्रेस के लक्ष्य समान हैं, इसलिए डोगरा सभा के चार प्रतिनिधियों को कांग्रेस सत्र में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जा सकता है। कांग्रेस कार्यालय ने अपने उत्तर में स्पष्ट रूप से कहा कि कांग्रेस ने अभी तक अपनी गतिविधियों को भारतीय रियासतों में विस्तारित करने का निर्णय नहीं लिया है। इसलिए इस बात का खेद है कि सभा के प्रतिनिधियों को आमंत्रित नहीं किया जा सकता। इस राजनीतिक घटनाक्रम को देखते हुए महाराजा हरिसिंह ने डोगरा सदर सभा को भंग करने का आदेश जारी कर दिया। इसके अतिरिक्त स्थानीय समाचार-पत्र 'रणबीर' (RANBIR) पर प्रतिबंध लगा दिया गया और जम्मू के प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज में मौजूद असंतोषजनक स्थितियों की जाँच के लिए एक आयोग बनाया गया। वास्तव में 'रणवीर' समाचार-पत्र के प्रतिबंध का कारण था—७ मई, १९३० को उसके द्वारा लाया गया एक विशेष अंक, जिसमें महात्मा गांधी की गिरफ्तारी पर जम्मू में ब्रिटिश विरोधी प्रदर्शनों का विस्तृत विवरण दिया गया था।

इसी दौरान सोमदत्त, केदारनाथ और धन्वंतरि जैसे स्वतंत्रता सेनानियों ने जम्मू-कश्मीर के लोगों, विशेषकर युवाओं में राष्ट्रवाद का संचार किया। १९३० का वर्ष नागरिक स्वतंत्रता के दमन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जम्मू-कश्मीर के पहले और बड़े पत्रकार श्री विश्वनाथ कर्णी को श्रीनगर के हरि पर्वत किले में बिना मुकदमे के जेल में डाल दिया गया। इसी प्रकार पुराने राजनीतिक नेता सरदार बुद्ध सिंह को जम्मू के बहू किले में बिना मुकदमे के जेल में रखा गया था। ९ अक्तूबर, १९३० को विदेश और राजनीतिक मामलों के मंत्री जी.ई.सी. वेकफील्ड के कहने पर मंत्रिपरिषद् ने बिना मुकदमे के पंडित विश्वनाथ कर्णी को कैद करने का फैसला लिया था। उस समय महाराज हरिसिंह लंदन में थे। अत: तार द्वारा उनकी मंजूरी माँगी व प्राप्त की गई। इस प्रकार पंडित विश्वनाथ कर्णी श्रीनगर के हरि पर्वत जेल में पहले डोगरा राजनीतिक कैदी बने।

इस तथ्य के बावजूद कि जम्मू-कश्मीर जैसी रियासत में उपनिवेश विरोधी संघर्ष कम तीव्रता का था, लेकिन १९३० के बाद की घटनाओं ने निश्चित रूप से यहाँ पर अपनी छाप छोड़ी। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के लिए सहानुभूति व समर्थन जम्मू-कश्मीर में ठीक वैसा था, जैसा कि शेष भारत में था।

५६०, सही हट्स, एयरपोर्ट के पीछे
कोलोनल कॉलोनी
सतवारी, जम्मू

तात्या टोपे

तात्या टोपे सन् १८५७ के विद्रोह के एक महान् सेनानी थे। वे पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब के यहाँ लिपिक थे। तात्या और नाना बालसखा भी थे। तात्या टोपे अपनी असाधारण वीरता और रण-कौशल के कारण एक सामान्य लिपिक के पद से उठकर नाना साहब की सेना के नायक पद तक पहुँचे। वे मराठा सेनानायकों की कुशल युद्धनीति (छापामार युद्ध-पद्धति) में अत्यंत सिद्ध होने के साथ-साथ शिवाजी महाराज की गुरिल्ला युद्ध नीति के भी अप्रतिम सेनानी माने जाते थे।

तात्या टोपे का जन्म सन् १८१४ में नासिक के निकट पटौदा जिले के येवला नामक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री पांडुरंग पंत था। समय-समय पर रामचंद्र अपने पिता के साथ पेशवा के दरबार में जाया करते थे। वहाँ वे अपने पिता के साथ चुपचाप खड़े रहते। पेशवा बाजीराव भी उस बालक को देखकर प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते थे।

एक बार की बात है। रामचंद्र के एक वीरतापूर्ण कार्य से खुश होकर पेशवा बाजीराव ने उन्हें एक अत्यंत मूल्यवान् 'टोपी' पुरस्कार के रूप में भेंट की। इस टोपी में नौ हीरे और कई अन्य मूल्यवान् रत्न गुँथे हुए थे। इस टोपी को रामचंद्र ने अंत तक अपने साथ ही रखा। उनके उपनाम 'तात्या' तथा 'टोपी' यहीं से प्रचलित नाम बन गया। अब सभी उन्हें इसी नाम से पुकारते थे। 'टोपे' तो टोपी का ही बदला हुआ रूप था, जबकि 'तात्या' का मराठी अर्थ होता है—स्नेह अथवा अनुराग।

पेशवा की मृत्यु के बाद नाना साहब को बिठूर का राजा घोषित कर दिया गया। वे अत्यंत विनम्र स्वभाव के व्यक्ति थे तथा अपने मनोभावों पर नियंत्रण रखना जानते थे। अपने पिता के सौंपे गए दायित्व को उन्होंने जल्दी ही बड़ी कुशलता से सँभाल लिया। तात्या टोपे उस समय तक उनके लिपिक ही थे। बचपन का साथ तो पहले से ही था, अब विचार और व्यवहार की समानता ने दोनों की मित्रता को और अधिक घनिष्ठता का रंग दे दिया। नाना साहब प्रत्येक कार्य में तात्या की सलाह लेने लगे और नाना साहब का हर तरह से हित सोचना तात्या ने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। इसके साथ ही अब तात्या की छुपी हुई योग्यताएँ समय-समय पर सामने आने लगीं।

सन् १८५७ का प्रारंभिक काल था। गंगा के तट पर बसा कानपुर प्रथम श्रेणी की सैनिक छावनी तो पहले से ही था, अवध के ब्रिटिश शासन में मिल जाने के बाद इसका महत्त्व और अधिक बढ़ गया था। इस नगर की रक्षा में तैनात थी पहली ५३वीं नेटिव बंगाल इन्फैंट्री, द्वितीय कैवेलरी (घुड़सवार सेना) और तीसरी आर्टिलरी (बंदूकधारी सेना) की एक-एक कंपनी। देशी सेना में कुल मिलाकर लगभग ३ हजार सैनिक थे, जबकि यूरोपीय आर्टिलरी में केवल ६४ व्यक्ति व ६ तोपें थीं। इनके कमांडर ऑफिसर थे—मेजर जनरल सर ह्यू ह्वीलर। उनके नाम के साथ जुड़ा हुआ था पचास वर्षों का सेना की सेवा का अनुभव और गौरव।

इधर जब लोगों का अविश्वास बहुत बढ़ गया तो अंग्रेजों ने नाना साहब से सहायता की प्रार्थना की। नाना साहब तात्या टोपे को साथ लेकर ३०० सैनिकों की टुकड़ी एवं २ तोपों के साथ तुरंत कानपुर पहुँचे। नवाबगंज स्थित खजाने की रक्षा करने में उन्होंने अंग्रेजों की मदद की। साथ ही भड़के हुए देशी सिपाहियों को भी शांत करने का पूरा-पूरा प्रयास किया, जबकि वास्तविकता यह थी कि नाना साहब और तात्या भीतर से इस विद्रोह के समर्थक ही थे। उन्हें प्रतीक्षा थी तो केवल उपयुक्त अवसर की। यह पूरी घटना २२ मई, १८५७ की है।

जल्दी ही उन्हें इस काम में कई लोगों का सहयोग प्राप्त हो गया। बंगाल आर्मी के कुछ अनुभवी अधिकारी, जिनमें सूबेदार टिक्का सिंह (जो तब जनरल बना दिए गए थे), दुर्गजन सिंह, गंगादीन (तत्कालीन कर्नल), नाना साहब की निजी सेना के कमांडर ज्वाला प्रसाद आदि भी शामिल थे। इन सबके अतिरिक्त अनेक स्थानीय जमींदारों के सशस्त्र रक्षक व अवध के सैनिकों की नादिरी और अख्तरी रेजीमेंट भी उनके साथ थीं।

तात्या टोपे की दूरदर्शिता काम आई, क्योंकि जिस समय कानपुर अपने पेशवा के उल्लास में डूबा हुआ था, उसी समय अंग्रेज अधिकारी हेवलाक कानपुर और लखनऊ को लक्ष्य करके आगे बढ़ने के लिए अपनी सेना तैयार कर रहा था। वह कानपुर स्टेशन को विद्रोही देशी सैनिकों के अधिकार से छुड़ाना चाहता था, परंतु तात्या टोपे ने वहाँ पहले से ही ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि रेनॉर्ड के आगे बढ़ते ही उसे मुँह की खानी पड़ती। रेनॉर्ड समय रहते ही तात्या की इस चालाकी को भाँप गया और उसने अपना इरादा बदल दिया।

अंग्रेजों के साथ होनेवाली मुठभेड़ों में वे उन्हें भारी क्षति पहुँचाते रहे। उनकी नीति देखकर ऐसा लगता था कि वे केवल विजय के लिए युद्ध कर रहे हैं। परंतु तब भी कानपुर पर अधिकार करने में उन्हें सफलता नहीं मिल पाई थी। उस समय वे एक ऐसे किले की आवश्यकता महसूस कर रहे थे, जिसका उपयोग अभियान में गढ़ के रूप में किया जा सके। उनके इस मनोरथ को शीघ्र ही सफलता मिली कालपी के किले के रूप

में। यह स्थान कानपुर से केवल ४७ मील दूर था। दोनों नगरों के बीच बहती यमुना ने इसे प्राकृतिक खाई के रूप में एक सुरक्षा कवच भी प्रदान कर रखा था। तात्या टोपे ने शीघ्र ही कालपी के दुर्ग पर अपना अधिकार करके पेशवा का मुख्यालय वहाँ स्थानांतरित कर लिया।

अपने वाक्चातुर्य और विरोधियों को भी समर्थक बना लेने की कला के चलते तात्या ने एक बार फिर दुर्जेय ग्वालियर सैन्य दल और अन्य सैनिकों का सहयोग प्राप्त किया तथा भगिनीपुर, शिओली, अकबरपुर आदि नगरों को अपने अधिकार में लेते हुए तेजी से कानपुर की ओर बढ़ चले। सर कॉलिन, जिसे भारतीय विद्रोह को शांत करने के लिए क्रीमिया के युद्ध से वापस बुलाया गया था, की वापसी से पहले वे कानपुर पर कब्जा कर लेना चाहते थे।

कानपुर पर विजय पाने के अपने इस प्रयास के विफल हो जाने पर तात्या ने मध्य भारत में यमुना और नर्मदा के बीच के क्षेत्र को अपना कार्य-स्थल बना लिया। वहाँ अनेक राजे-रजवाड़ों और नवाबों का सहयोग उन्हें प्राप्त हुआ। झाँसी पहले से ही उनकी प्रमुख सहयोगी थी। वहाँ तात्या कई बार अंग्रेजों की आँखों में धूल झोंकने में कामयाब रहे।

उधर ह्यूरोज ने झाँसी की घेराबंदी कर दी। मजबूत किले में १५०० सैनिक और २५ तोपें मौजूद थीं। स्त्री-पुरुष सभी रानी के नेतृत्व में कंधे से कंधा मिलाकर लड़ रहे थे। अपने २० हजार सैनिकों को एकजुट कर तात्या उसकी मदद के लिए आगे बढ़े, किंतु शीघ्र ही उन्हें पराजित होकर हटना पड़ा, परिणामस्वरूप झाँसी का पतन हो गया।

इसके बाद भी अंग्रेजों को पराजित करने और पराजित होने का लंबा सिलसिला चला। तात्या टोपे ने अपने जीवन काल में अंग्रेज अधिकारियों को कभी चैन से न बैठने दिया। झाँसी की रानी की मृत्यु के बाद तो ब्रिटिश हुकूमत ने अपनी सारी शक्ति तात्या टोपे को पकड़ने में लगा दी। स्थानीय राजाओं का पूरा-पूरा सहयोग तात्या टोपे के साथ था। जब अंग्रेज किसी तरह तात्या पर विजय प्राप्त नहीं कर सके तो उन्होंने कूटनीति से काम लेते हुए तात्या टोपे के एक मित्र मानसिंह को नरवर राज्य दिलाने का प्रलोभन देकर अपने पक्ष में कर लिया। अंतत: ७ अप्रैल, १८५९ को जिस समय तात्या टोपे अपने मित्र मानसिंह द्वारा बताए गए 'सुरक्षित' स्थान पर विश्राम कर रहे थे, तभी अंग्रेजी सेना ने आधी रात के समय उन्हें गिरफ्तार कर लिया। जो तात्या टोपे अंग्रेजों की पहुँच से दूर थे, उन्हें अपने ही मित्र के विश्वासघात ने अंग्रेजों का बंदी बनवा दिया। कड़े पहरे के बीच उन्हें शिवपुरी में जनरल की छावनी में ले जाया गया, जहाँ उन पर ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध युद्ध करने तथा कई अंग्रेज अधिकारियों को मौत के घाट उतारने का दोषी बताते हुए मुकदमा चलाया गया और आखिर में फाँसी का हुक्म सुना दिया गया।

देशवासियों को उनके पकड़े जाने के समाचार पर विश्वास नहीं हुआ। भारत माता के इस जाँबाज सपूत की एक झलक पाने के लिए लोग उमड़ने लगे। उस अपार जन-समूह को सँभाल पाना अंग्रेज सेना के लिए कठिन हो रहा था।

१८ अप्रैल, १८५९ को सायं चार बजे भारत माता के इस वीर सपूत को फाँसी के तख्ते के पास लाया गया। जब उनका चेहरा ढकने के लिए उन्हें टोप पहनाया जाने लगा तो उन्होंने इनकार कर दिया और कहा, ''मैं अपनी मौत को आमने-सामने देखने के लिए तैयार हूँ।'' और फिर फाँसी का फंदा स्वयं अपने गले में डाल लिया। इधर जल्लाद ने हत्था खींचा, उधर तात्या की निर्जीव देह रस्सी के सहारे हवा में झूल गई। उनका शरीर सूर्यास्त तक फंदे पर ही लटकाए रखा गया। अपने लगभग दो वर्ष के क्रांतिकाल में १५० मोरचों पर लोहा लेनेवाले इस अमर सेनानी की स्मृति प्रत्येक भारतीय के मन-मस्तिष्क में सदैव बनी रहेगी।

क्रांतिवीर मंगल पांडेय

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और उसके इतिहास के पृष्ठों को अगर पलटा जाए तो आकाश के नक्षत्रों के समान अनगिनत नाम सामने आने लगते हैं। ऐसे नाम जिनका जीवन, जिनका कर्म केवल एक ही उद्देश्य को समर्पित रहा—अपने देश को पराधीनता के अपमान से मुक्ति दिलाकर उसका स्वर्णिम गौरव वापस दिलाना। 'मंगल पांडे' नाम ऐसे ही एक नरसिंह का है, जो मात्र एक ही सिंहनाद से इतिहास में अपना नाम अमर कर गए। वे सन् १८५७ की क्रांति का बिगुल बजानेवाले वीर सिपाही थे।

उनकी पारिवारिक निर्धनता भी उनकी निर्भीकता के आड़े नहीं आ पाती थी। धीरे-धीरे जब उनके परिवार पर ऋण का भार बहुत अधिक हो गया तो उसे चुकाने का दायित्व मंगल के कंधों पर आ पड़ा। वे अपने उग्र स्वभाव को भली-भाँति जानते थे। साथ ही उनकी यह भी इच्छा थी कि उन्हें कोई ऐसा कार्य मिल जाए, जिससे कि ऋण के भार से मुक्ति मिलने के साथ-साथ उन्हें साहस तथा वीरतापूर्ण कार्य करने का अवसर मिले। अत: उन्होंने एक सैनिक के रूप में तत्कालीन अंग्रेज सरकार की सेना में नौकरी कर ली।

ऐसे ही हजारों कारण थे, जिनसे भारतीयों के मन में अंग्रेजों के प्रति विरोध बड़े पैमाने पर पनप रहा था। सन् १७५७ से १८५० तक के वर्षों में भारतीयों का यह असंतोष अपना धैर्य न सिर्फ खोने लगा था, बल्कि ऐसे ज्वालामुखी में परिवर्तित हो चुका था, जिसमें कभी भी विस्फोट हो सकता था। मैल्कम लुई भारत में मद्रास सुप्रीम कोर्ट का जज रह चुका था। यदि उसकी उस रिपोर्ट को ही लें, जो कि उसने लंदन लौटकर अपने आकाओं को दी थी, तो उतना भर ही भारतीयों की कारुणिक दशा बताने के लिए पर्याप्त होगा। उसने कहा था—''हमने भारत को पूरी तरह से खोखला कर दिया है और उनकी सारी

समृद्धि एवं धार्मिक आस्थाओं को मिट्टी में मिला दिया है। हमने उनसे उनकी हर वह वस्तु छीन ली है, जिससे वे सिर उठाने के लायक न रहें। उनसे हमारा संबंध केवल मालिक और गुलाम का रहा है।''

लॉर्ड डलहौजी की 'हड़प करने तथा विलय की नीति' ने देशी-विदेशी राजाओं के मन में असंतोष भर दिया था। उन्हें अब अंग्रेजों पर जरा भी विश्वास नहीं रह गया था। उसकी नीति के कारण सतारा, झाँसी, नागपुर, जैतपुर, संभलपुर, बघाट और उदयपुर आदि राज्यों का अंत हो गया था। कर्नाटक के नवाब और तंजौर के राजा की मृत्यु के उपरांत उनकी उपाधियाँ छीन ली गईं। पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र को पेशवा का पुत्र नहीं माना गया और उनसे उपाधि व अन्य सुविधाएँ वापस लेकर पेंशन बंद कर दी गई।

बादशाह के इस अपमान से अन्य देशवासी भी तिलमिला उठे और उन्होंने बादशाह को अपने आंदोलन का नेता मानते हुए क्रांति का प्रचार तथा लोगों को संगठित करने का प्रयास आरंभ कर दिया। सभी देशवासियों में अंग्रेजों द्वारा बोए वैमनस्य के बीज को भुलाकर एक साथ उठ खड़े होने का आह्वान होने लगा। प्रचार के लिए भी अनोखे ढंग अपनाए जा रहे थे। गायक गा-गाकर, नर्तक नाचकर, नाटककार नाटकों द्वारा तथा साधु-फकीर उपदेशों व प्रवचनों द्वारा क्रांति का संदेश जनता तक पहुँचा रहे थे। अब प्रतीक्षा थी तो सिर्फ एक चिनगारी की।

मंगल पांडे और अन्य सिपाहियों को कई ऐसी सूचनाएँ मिलीं कि उनकी कनपटियाँ क्रोध से सुलग उठीं। साधु ने बताया कि किस प्रकार अंग्रेज भारतीयों का शोषण कर सारी संपत्ति अपने देश भेज रहे हैं। मंदिर-मसजिद को अपमानित कर तोड़ा जा रहा है। देव प्रतिमाएँ पैरों तले कुचली जा रही हैं। स्त्रियों की अस्मिता को लूटा जा रहा है। शोषण के रोज नए-नए ढंग ढूँढ़े जा रहे हैं; और अब तो हिंदू-मुसलमान दोनों की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के लिए ऐसे कारतूस सेना में प्रयोग किए जाएँगे, जिनपर गाय और सूअर की चरबीयुक्त खोल चढ़ा होगा। इस खोल को दाँतों से हटाकर ही प्रयोग किया जा सकेगा। अंग्रेज सेना में विदेशी सैनिकों के साथ-साथ देशी सैनिक भी भारी संख्या में मौजूद थे। इससे उनकी धार्मिक भावनाओं को गहरी ठेस पहुँचती थी, इसीलिए इन अंग्रेजों को सबक सिखाने के लिए स्थान-स्थान पर लोग तैयारी में जुटे हैं और एक निश्चित दिन सभी एक साथ विद्रोह का बिगुल फूँक देंगे। दमदम छावनी के अलावा मेरठ छावनी के सिपाहियों ने भी इस सूचना के मिलते ही नए कारतूस लेने से इनकार कर दिया। वे बुरी तरह से भड़के हुए हैं और अंग्रेज अधिकारी उन्हें फुसलाने में लगे हुए हैं। अंग्रेजों ने अभी तक भारतीय सैनिकों की केवल स्वामीभक्ति देखी है। उनका रौद्र रूप वे सहन नहीं कर पाएँगे।

इस योजना के सूत्रधार हैं पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र बिठूर के नाना साहब। सभी हिंदू-मुसलमान मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर के झंडे तले एकजुट हैं, जिन्हें अंग्रेजों ने अपने ही देश में, अपने ही किले में कैद कर रखा है। इस क्रांति की सूचना 'कमल के फूल' और 'रोटी' के सांकेतिक प्रतीकों के माध्यम से देश भर में फैलाई जा रही है। किसी एक पलटन के जितने सिपाहियों के हाथों से वह कमल का फूल गुजरता है, उसका अर्थ है कि वे सभी सैनिक विद्रोह के लिए तैयार हैं। जिस सिपाही के हाथ में वह कमल का फूल सबसे अंत में आएगा, वह उसे दूसरी पलटन के सिपाही तक पहुँचा देगा। इसी प्रकार एक गाँव का चौकीदार कुछ रोटियाँ बनवाकर दूसरे गाँव के चौकीदार के पास पहुँचाता है। दूसरा चौकीदार उन रोटियों को अन्य लोगों के साथ बाँटकर खा लेता है। जितने लोग उस रोटी को खाएँगे, वे मातृभूमि का ऋण चुकाने को तैयार समझे जाएँगे। फिर वह चौकीदार कुछ रोटियाँ बनवाकरअगले गाँव के चौकीदार तक पहुँचाएगा। इस प्रकार यह प्रक्रिया देश भर में चल रही है। सभी को एक ही दिन आक्रमण करना है। क्रांति के लिए निश्चित की गई तिथि है—३१ मई, १८५७। यह सारी जानकारी देने के बाद वह साधु चुपचाप रात के अंधकार में विलीन हो गया। मंगल पांडे की बैरक में उस समय २९ और ३४ नंबर पलटन के सिपाहियों के नेता मौजूद थे। सभी निश्चित तिथि की प्रतीक्षा करने लगे।

मेजर ह्यूसन एक क्षण को तो सकपका गया, पर जैसे ही सारी स्थिति उसे समझ में आई, उसके चेहरे से डर के भाव गायब हो गए, क्योंकि मंगल पांडे अकेले ही विद्रोह के लिए अपने साथियों को उकसा रहे थे। शेष सैनिकों के चेहरे पर अनिश्चय के भाव थे।

''गिरफ्तार कर लो इसे!'' मेजर ह्यूसन की आवाज गूँजी। पर कोई भी सैनिक अपने स्थान से हिला तक नहीं।

''देखते क्या हो, पकड़ लो इसे!'' एक बार फिर ह्यूसन की आवाज गूँजी और इसी के साथ मंगल पांडे की बंदूक भी गरज उठी। ह्यूसन घोड़े से गिरकर जमीन पर ढेर हो गया। गोली की आवाज से एक और अंग्रेज अफसर लेफ्टिनेंट बाह घोड़े पर दौड़ता हुआ उनकी ओर आने लगा। वह दूर से ही सारा दृश्य देख चुका था। जैसे ही वह नजदीक पहुँचा, मंगल पांडे ने उसपर भी गोली चला दी।

फलस्वरूप वह भी घोड़े से गिर पड़ा, परंतु तुरंत ही उठ खड़ा हुआ। घाव हलका ही था। उसने मंगल पांडे पर गोली चलाई, लेकिन निशाना चूक गया। मंगल पांडे अपनी तलवार लेकर उसपर टूट पड़े और क्षण भर में उसका काम तमाम कर दिया। स्वतंत्रता के यज्ञ में उनकी दो आहुतियाँ पड़ चुकी थीं, परंतु दृश्य अभी शेष था। एक और अंग्रेज अधिकारी वहाँ पहुँचा; परंतु मंगल पांडे ने अपनी बंदूक के कुंदे के जोरदार प्रहार से उसे भी ढेर कर दिया। ठीक इसी समय जनरल हियरसी वहाँ पहुँचा। सारा दृश्य देखकर दूर से ही उसने सैनिकों को आदेश दिया, ''सिपाहियो, गिरफ्तार कर लो इस बागी को!''

क्रोध से दहाड़ते हुए मंगल पांडे बोले, ''कायरों की तरह मरने से अच्छा है, शेर की तरह मरना। स्वतंत्रता की वेदी पर मैं ही अपनी पहली आहुति देता हूँ।'' और ८ अप्रैल, १८५७ को मंगल पांडे को पूरी यूनिट के सामने फाँसी दे दी गई। अंग्रेजों ने सोचा था कि इस बर्बरता से वे क्रांति की इस महाज्वाला को शांत कर देंगे, परंतु हुआ इसका उलटा ही। मंगल पांडे का बलिदान सारे भारतीयों के लिए ऐसी प्रेरणा बन गया, जिसने अंततः भारत को आजाद कराकर ही छोड़ा।

गजलें

• नरेश शांडिल्य

'दोहों के आधुनिक कबीर' के रूप में विख्यात और लोकप्रिय नरेश शांडिल्य एक प्रतिष्ठित कवि, शायर, नुक्कड़ नाट्यकर्मी और संपादक के रूप जाने जाते हैं। पहले ही कविता संग्रह पर हिंदी अकादमी, दिल्ली सरकार का साहित्यिक कृति सम्मान प्राप्त। वातायन (लंदन) का अंतरराष्ट्रीय कविता सम्मान, कविता का प्रतिष्ठित 'परंपरा ऋतुराज सम्मान' प्राप्त। त्रैमासिक पत्रिका 'अक्षरम संगोष्ठी' का १२ वर्षों तक कुशल संपादन।

: एक :

यों कहने को बहकता जा रहा हूँ
मगर सच में सँभलता जा रहा हूँ
उलझता जा रहा हूँ तुझमें जितना
मैं उतना ही सुलझता जा रहा हूँ
भले बाहर से दिखता हूँ मचलता
मगर भीतर ठहरता जा रहा हूँ
जमीं से पाँव भी उखड़े नहीं हैं
फ़लक तक भी मैं उठता जा रहा हूँ
नदी इक मुझमें मिलती जा रही है
मैं सागर सा लहरता जा रहा हूँ

: दो :

मैं रफू दर रफू दर रफू
मेरे पैबंद ढकता है तू
दर-ब-दर दर-ब-दर दर-ब-दर
तेरी खातिर फिरा कू-ब-कू
जाने क्योंकर यकीं है मुझे
तू भी मुझ सा ही है हू-ब-हू
सौंप रखा है खुद को तुझे
अब तू रख या न रख आबरू
बस यही एक अरमान है
काश तुझसे मिलूँ रू-ब-रू

: तीन :

गमे जां की दवा कैसे करोगे
सजाओं को जजा कैसे करोगे
सरापा गुँथ चुके हैं तुममें अब हम
हमें खुद से जुदा कैसे करोगे
बदन से हम निकल आए हैं बाहर
कहो हमको फना कैसे करोगे
तुम्हारी शर्त सारी मान भी लें
तो फिर शिकवा-गिला कैसे करोगे
जरा सा फासला बेहतर है, वरना
मुहब्बत बामजा कैसे करोगे

: चार :

खामोशी पढ़ सकते हो?
फिर तुम मेरे जैसे हो
पीर नहीं तो क्या हो तुम?
तुम आँखों से टपके हो
तुम? और मुझ पर मरते हो?
यार हटो, तुम झूठे हो
मुझसे होड़ लगाओगे?
जाओ, अभी तुम बच्चे हो
कैसे हो तुम? बतलाऊँ?
तुम मुझसे भी अच्छे हो

: पाँच :

वाइज तेरे बिहिश्त की चाहत नहीं हमें
मौला तेरी तलाश की आफत नहीं हमें
पत्तों के टूटने की सदा सुन रहे हैं हम
जाओ किसी के वास्ते फुर्सत नहीं हमें
हैं जो भी हम, हैं जैसे भी, अच्छे हैं या बुरे
अपनी किसी लकीर से नफरत नहीं हमें
हम पर हैं जो भी दाग इन्हें यों ही रहने दो
इन तमगों के बगैर भी राहत नहीं हमें
कहलाए बेवफा भी, सौ बदनामियाँ हुईं
सच तो है ये कि प्यार में बरकत नहीं हमें

: छह :

दिल न टूटा तो फिर मजा क्या है
प्यार करने का फायदा क्या है
एक झटके में मार डाला मुझे
ये करम है तो फिर सजा क्या है
रू-ब-रू हूँ तेरे, बता अब तो
मुद्द'आ है तो मुद्द'आ क्या है
मय-ओ-मीना की अब किसे हसरत
तुझसे बढ़कर कोई नशा क्या है
तेरे होने से है पता मेरा
जिंदगी पर तेरा पता क्या है

: सात :

तुम्हारे बाद किसी की नहीं है चाह हमें
तमाम उम्र को काफी है अब ये दाह हमें
तुम्हीं पे छोड़ दिया है सफर अब आगे का
तुम्हीं दिखाओ तो कोई दिखाओ राह हमें
तुम्हारे साथ का ऑरा हमारे हर-सू है
लगेगी कैसे कहो अब कोई भी आह हमें
हम आँख मूँद के सोचें तुम्हें तो लगता है
खुशी से चूम रही है कोई निगाह हमें
खुदा ने ख्वाब में आकर हमें ये बोल दिया
कि हैं मुआफ मुहब्बत में सौ गुनाह हमें

: आठ :

बुरा है वक्त तो अच्छा भी होगा
अँधेरा है तो उजियारा भी होगा
छिड़ेगा जिक्र जब-जब भी हमारा
तुम्हारे नाम का चर्चा भी होगा
कोई यों ही नहीं होता सुखनवर
यकीनन हमने कुछ खोया भी होगा
कहीं उसका अगर सानी है कोई
तो उसका हो न हो ऊला भी होगा
दरिंदो! ढूँढ़ कर देखो कभी तो
तुम्हारे दिल में इक बच्चा भी होगा

सत्य सदन, ए-५, मनसा राम पार्क,
संडे बाजार लेन, उत्तम नगर,
नई दिल्ली-११००५९
दूरभाष : ९७११७१४९६०

कला-संस्कृति के संरक्षण को समर्पित अमीरचंदजी

● स्वर्ण अनिल

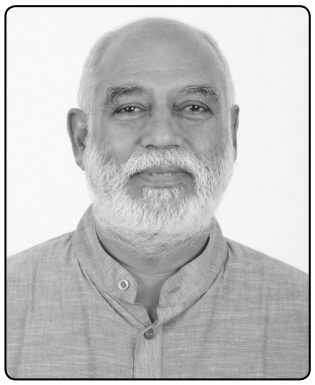

माननीय अमीर चंदजी से मेरा संबंध दशकों पुराना है। हमारे इस आत्मीय संबंध की धुरी पूर्वोत्तर ही थी। उस समय तक मेरे कई रेडियो धारावाहिक पूर्वोत्तर की रामायण एवं लोककथाओं पर प्रसारित हो रहे थे। अचानक एक दिन भाईजी हमारे घर पधारे और हमें कला और संस्कृति के संरक्षण-संवर्द्धन को समर्पित 'संस्कार भारती' की पूर्वोत्तर शाखा से जुड़ने के लिए उत्प्रेरित किया। मैं उनके व्यवहार को देखकर चमत्कृत थी, क्योंकि तब तक मैंने किसी भी संगठन के पदाधिकारी को अपने जैसे साधारण से व्यक्ति तक स्वयं पहुँचकर इस तरह आमंत्रित करते नहीं देखा था। साहित्य और कला क्षेत्र से जुड़े कला-साधकों के प्रति उनकी आत्मीयता और अपनेपन के भाव को उनके साथ काम करते हुए, मैंने हर क्षण निकटता से देखा है। सुदूर जनजातीय क्षेत्र के नन्हे बच्चों के हाथों से बने हुए अनगढ़ से चित्र हों या कला मर्मज्ञ विद्वज्जनों की अप्रतिम कृतियाँ, सभी को सम्मानित करना हमने उनसे सीखा है। भाईजी हर छोटे-बड़े से कुटुंबी सा निकट संबंध बना लेते थे।

मैं हमेशा हैरान होती रही हूँ कि आत्मप्रशंसा से ग्रसित आज के युग में भी श्रद्धेय अमीरचंद भाईजी अपने साथ काम करते हुए हर कार्यकर्ता के सुख-दु:ख की चिंता, उनकी व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं का समाधान इस तरह चुपचाप, बिना कोई ढिंढोरा पीटे करते रहे कि जब तक लाभार्थी स्वयं नहीं बोलता, तब तक किसी को पता ही नहीं चलता।

सदा सरल, सौम्य और मृदुभाषी तथा बच्चों के बीच बच्चों से और बड़ों के बीच गंभीर व्यवहार करने वाले भाईजी काम के समय किसी भी प्रकार की अनुशासनहीनता रंचमात्र भी सहन नहीं करते थे। कार्यक्षेत्र में नियमों का उचित ढंग से परिपालन वे स्वयं भी करते और हम सबसे भी उनकी यही अपेक्षा रहती थी। 'पूर्वोत्तर की सांस्कृतिक यात्रा' में ६ घंटे की खड़ी चढ़ाई के बाद १४ अक्तूबर, २०२१ को उषा वेला में नागालैंड की 'जुको घाटी' में शाखा का संचालन करते माननीय अमीरचंदजी। उनके साथ गए समूह के सुरों में संघ की प्रार्थना 'नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे त्वया हिंदुभूमे सुखम् वर्द्धितोऽहम' के सामूहिक उद्घोष की पावन स्मृतियाँ हम सबको हमेशा हर काल, हर स्थिति में नियमों के, निष्ठा से पालन की प्रेरणा देती रहेंगी।

कला और संस्कृति के प्रति उनका दृष्टिकोण समसामयिक और प्रगतिशील था। 'संस्कार भारती' के विविध आयोजनों की आधारभूमि उनका यही दृष्टिकोण रहा है। पिछले सभी प्रयोगों के साथ-साथ कोरोना काल का दंश झेल रहे कला-साधकों की पीड़ा के प्रति उनकी संवेदनशीलता से जन्मा 'पीर पराई जाने रे' कार्यक्रम भी इसी शृंखला से जुड़ा है। इस कार्यक्रम की परिकल्पना के संदर्भ में विरोध के कई स्वर भी उठे थे, पर सब की अनदेखी कर उन्होंने समाज की इस विकट चुनौती के समाधान के जोखिम भरे काम का दायित्व निर्द्वंद्व भाव से उठाया। हम सब जानते हैं, यह आयोजन समाज और कलासाधकों के बीच कितनी सकारात्मकता लेकर आया है।

उन्होंने जब हमें कोई योजना बनाने को कहा, तब अपना यह विचार बहुत स्पष्ट रूप में रखा कि हम जब भी अपनी योजनाओं में जनहित पर ध्यान केंद्रित करके उनका क्रियान्वयन करेंगे तो संगठन का हित अपने आप हो जाएगा। संस्कार भारती कला के माध्यम से जनहित के लिए इसी का अनुसंधान सकती है। हमारा लक्ष्य इसी का अनुसंधान, इसी की निरंतर खोज होना चाहिए। अपनी लक्ष्यसिद्धि के लिए हमें

कलाकारों को जोड़ने नहीं, उनसे जुड़ने के लिए निरंतर प्रयासरत रहना होगा, क्योंकि कोई भी साधक किसी से नहीं जुड़ता, वह तो केवल अपनी कला से जुड़ता है। लोग स्वयमेव उनसे जुड़ जाते हैं। ऐसे ही लोग ऋषियों की तरह जनहित के लिए समर्पित रहते हैं।

कला-संस्कृति के प्रति उनके दृष्टिकोण की बात करते हुए मैं उनके जीवन के अंतिम दिन के अंतिम व्याख्यान का उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक मानती हूँ। अपने इस व्याख्यान में कीर्तिशेष अमीर चंदजी ने अरुणाचल प्रदेश के बोमडिला उत्तर कमेंग के लामाई परंपरा के १२वें लामा द्वारा स्थापित गोम्जे गेदेन राब्ग्ये लिंग मठ (Gomse Gaden Rabgye Ling Monastery) में १६ अक्तूबर, २०२१ को भोर की वेला में वहाँ के भिक्षु प्रमुख, सचिव एवं अन्य अधिकारियों ने अरुणाचल क्षेत्र के जनजातीय विश्वासों पर मँडरा रहे सांस्कृतिक आक्रमणों की समस्याओं को भाईजी के सम्मुख रखा था, उनके समाधान के लिए माननीय भाईजी ने अपने विचार रखते हुए एक बहुत महत्त्वपूर्ण समाधान दिया, जो मेरी दृष्टि में इस क्षेत्र में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन वर्तमान में भी और भविष्य में भी करेगा। उन्होंने कहा, "मुझे लगता है समय के अनुसार यदि परंपराओं में परिवर्धन किया जाए तो यह अच्छा है। हमारी आने वाली पीढ़ियों को यह न लगे कि यह हमारे लिए नहीं है। यह तो संयासियों के लिए है। यह तो केवल मठों में ही चलेगा, जीवन में नहीं चल सकता। हमें इस दिशा में काम करना चाहिए। सुजाता की खीर का उदाहरण लीजिए। यदि चित्रकार ने चित्र में इस घटना को न दिखाया होता, इसकी कोई नाट्य प्रस्तुति न होती तो सुजाता की खीर को कौन जानता? यह सब कलाओं के माध्यम से लोगों तक पहुँचा है। हमें समाज के सामने कला और संस्कृति के माध्यम से आना चाहिए। इस तथ्य पर गंभीर विचार करना चाहिए।"

वास्तव में समाज के सामने उभरकर आने वाली हर समस्या और विसंगति को श्रद्धेय अमीरचंदजी कला और संस्कृति के माध्यम से दूर करने के पक्षधर रहे हैं। जीवनपर्यंत वे इस सत्य को मानते रहे कि भारत की समृद्ध संस्कृति ही समग्र विश्व को प्राणवायु देने का कार्य कर सकती है।

सुपरिचित रचनाकार। बंद मुट्ठी की रेत (काव्य-संग्रह), एक जोड़ी आँखें (कहानी-संग्रह), सात बहनों की लोकगाथाएँ (पूर्वोत्तर की लोककथाएँ)। 'वनांचल की पाती' की संस्थापक संपादक। पूर्वोत्तर में रामायण की परंपरा, डुग्गर, असम, मणिपुर, मिजोरम की सांस्कृतिक विरासत का धारावाहिक प्रसारण।

१६ अक्तूबर, २०२१ को सेला दर्रे के निकट सीमा सड़क संगठन (BRO) द्वारा सड़क निर्माण किया जा रहा था, इस कारण ४० मिनट तक अवरुद्ध हुए मार्ग ने कला और संस्कृति के पुरोधा एवं भारतीयता की विरासत को नई पीढ़ी तक पहुँचाने वाले कर्मशील मार्गदर्शक के प्राण बचाने के क्रम को अवरुद्ध कर दिया। आश्विन शुक्ल पक्ष की एकादशी को उनके महाप्रयाण का दिन! सभी प्रकार के दैहिक, वाचिक एवं मानसिक तापों पर अंकुश लगाने वाली पापांकुशा एकादशी का दिन 'मौन व्रत' के महत्त्व से जुड़ा है, परंतु अमीरचंद भाईजी ऐसा मौन व्रत लेकर स्वयं ही उस परमसत्ता में समाहित हो जाएँगे, ऐसा हम नहीं जानते थे।

अमीरचंद भाईजी की परिकल्पनाओं को साकार करने में अपनी भागीदारी निभाकर मैं अपने अत्यंत आत्मीय 'भाईजी' को सदा स्मृतियों में जीवंत रखना चाहती हूँ।

साअ

बी-५-६/४३१६, वसंत कुंज
(सी.एन.जी. पेट्रोल पंप के पास)
नई दिल्ली-११००७०
दूरभाष : ०९८६८९८७५७९

सुधी पाठकों, लेखकों एवं विज्ञापनदाताओं को
'साहित्य अमृत' परिवार की ओर से
दीपावली, भैया दूज एवं छठ पर्व
की हार्दिक शुभकामनाएँ!

रामानुजन के जीवन से क्या प्रेरणा ले युवा पीढ़ी

● राजेश कुमार ठाकुर

महान् गणितज्ञ रामानुजन का जन्म दिसंबर १८८७ को मद्रास के एक छोटे से गाँव इरोड में हुआ। इनके पिता श्रीनिवास अयंगर कपड़े की दुकान में एक मुनीम की छोटी सी नौकरी करते थे और माता कोमलातम्मल धार्मिक विचारों की महिला थीं, जो पास के मंदिर में भजन गाती थीं। दो कमरे का छोटा सा घर था, जिसमें एक कमरा कॉलेज में पढ़नेवाले कुछेक छात्रों को किराए पर दे दिया था, जिससे घर चलाने में मदद मिले। घर में दोनों समय अच्छा खाना मिल जाए, ऐसा कम ही होता था। ऐसे में बालक रामानुजन का कुंभकोणम के कंगायन प्राइमरी स्कूल में दाखिला कराया गया। पढ़ने के लिए किताब नहीं, लिखने के लिए कॉपी नहीं, पर इन विपरीत परिस्थितियों में जिस जिजीविषा का परिचय इस महान् गणितज्ञ ने दिया, वह अकल्पनीय है। ३२ वर्ष की छोटी अवस्था में इस नश्वर शरीर को त्यागने के पहले उन्होंने रॉयल सोसाइटी से फेलोशिप हासिल की और अपने तीन रजिस्टरों में लगभग ३९०० प्रमेयों को दर्ज किया, जिनमें अधिकांशत: प्रमेयों को सही पाया गया। इनका पूरा जीवन लाखों गणितज्ञों के लिए प्रेरणादायक रहा है। इन्हें नमन करते हुए आइए, इनके जीवन से आज की युवा पीढ़ी क्या प्रेरणा ले सकती है, इस पर विचार करें—

गरीबी कोई अभिशाप नहीं : जीवन संघर्षों से भरा है। मुसीबतें हमारे जीवन में हमारी दृढ़ता की परीक्षा लेना चाहती हैं। रामानुजन ने एक गरीब परिवार में जन्म लिया। एक समय का खाना मंदिर के प्रसाद से ही चलता था, घर में किराए पर रह रहे छात्रों से पुस्तकें माँगकर खुद उनका अध्ययन करना शुरू किया और १३ वर्ष तक जी.एस. कार की पुस्तक से खुद ही लगभग ६००० सवालों को हल करके गणित के नए संबंध स्थापित करने में सफलता पाई। पढ़ाई में खुद को इस कदर समर्पित कर दिया कि दसवीं कक्षा तक पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति मिलने लगी और प्रतिभा ऐसी कि शिक्षक खुद ही इन्हें १०० में से १०० अंक देकर गौरवान्वित महसूस करते। अपनी इच्छा को इस कदर मजबूत बनाया कि सारी परेशानियों पर खुद ही विजय प्राप्त कर ली। सच ही कहा है—अभाव कमजोरी नहीं, संबल है। गणित के प्रति इतनी दीवानगी कि सब सवालों को हल करने लगें तो कॉपी कम पड़ जाए, पर कभी माँ-बाप से कॉपी के लिए शिकायत नहीं की। स्लेट पर ही लिखने लगे और सवाल हल करने के बाद अपनी कोहनी से मिटाने लगे। कॉलेज के जो छात्र उनके घर में रहते थे, उनसे माँग-माँगकर एस.एल. लोनी की त्रिकोणमिति को भी खुद हल कर लिया और मात्र १३ वर्ष में कॉलेज के छात्रों को ट्यूशन पढ़ाने लगे, जिससे परिवार का बोझ कुछ कम कर सकें।

चलो अभीष्ट मार्ग में सहर्ष खेलते हुए,
विपत्ति, विघ्न जो पड़े उन्हें ढकेलते हुए।

सन् १९०९ में जानकीअम्मल से शादी के पश्चात् पारिवारिक जिम्मेदारी भी बढ़ गई और १९१० में मद्रास पोर्ट पर एक क्लर्क की नौकरी करनी पड़ी, पर खाली समय में गणित पर अपना गणितीय शोध जारी रखा। इसी वर्ष इन्होंने इंडियन मैथमेटिकल सोसाइटी की पत्रिका में अपना पहला शोध-पत्र प्रकाशित करवाया। इनकी गणित में प्रतिभा को देखते हुए मद्रास विश्वविद्यालय ने इन्हें शोधार्थी की उपाधि प्रदान की; यह अपने आप में अद्‌भुत था, क्योंकि रामानुजन के पास डिग्री के नाम पर सिर्फ दसवीं का रिजल्ट था।

दृढ़ इच्छाशक्ति सफलता के लिए जरूरी : सफलता उसी के कदम चूमती है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी अडिग रहता है। रामानुजन इसी का एक जीता-जागता उदाहरण हैं। १९०४ में कक्षा दस में पूरे जिले में सर्वाधिक अंक लेने के लिए इन्हें 'के. रंगनाथ राव पुरस्कार' प्रदान किया गया। एफ.ए. की कक्षा में तीन बार लगातार प्रयास के बाद भी सिर्फ गणित की परीक्षा में उत्तीर्ण और अन्य सभी विषयों में असफल होने की वजह से इनका एफ.ए. पास करने का सपना अधूरा रह गया।

जीवन चलाने के लिए उन्होंने कॉलेज के छात्रों को ट्यूशन पढ़ाने का काम किया। १९१० में मद्रास के डिप्टी कमिश्नर रामास्वामी अय्यर (जिन्होंने भारतीय गणित सोसाइटी की स्थापना की) से मिलने के बाद रामास्वामी ने इनके गणितीय ज्ञान से प्रभावित होकर इनके ज्ञान की जाँच के लिए नेल्लोर के जिलाधिकारी रामचंद्र राव के पास भेजा, जिन्होंने पुन: राजगोपालाचारीजी के पास रामानुजन का गणितीय परीक्षण करने के लिए उच्च गणित के कई सवाल दिए और पाया कि रामानुजन का गणितीय ज्ञान बेजोड़ है। रामानुजन के बारे में रामचंद्र राव जब निश्चिंत हो गए तो उन्होंने मद्रास पोर्ट में क्लर्क की नौकरी के लिए एक अनुशंसा-पत्र लिखा, जिसके बाद इन्हें नौकरी मिल गई। मद्रास पोर्ट पर खाली वक्त में गणितीय शोध उन्होंने जारी रखा। तकरीबन २० से अधिक रिसर्च पेपर प्रकाशित होने के बाद रामानुजन की पहचान बढ़ने लगी। प्रेसीडेंसी कॉलेज के प्राध्यापक ने यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन के प्रोफेसर एम.जे.एम. हॉल को रामानुजन के बारे में बताया और रामानुजन ने इसी बीच अपने १२० प्रमेय की लंबी चिट्ठी हार्डी को भेजी, जिन्होंने इन्हें अपना छात्र बनाकर लंदन बुला लिया, जहाँ रामानुजन ने अपनी प्रतिभा को पूरे गणितीय समाज के सामने प्रदर्शित किया। पाँच वर्ष के प्रवास में रामानुजन ने एफ.आर.एस. की डिग्री और ढेरों प्रसिद्धि हासिल की।

नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है,
चढ़ती दीवारों पर सौ-सौ बार फिसलती है।
मन का विश्वास रगों में साहस भरता है,
चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना नहीं अखरता है।

आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

परंपरा का पालन रूढ़िवादिता नहीं : रामानुजन ने अपनी सफलता का सारा श्रेय कुलदेवी नामगिरी को दिया। बचपन से मिले संस्कार की वजह से धोती पहनना, चोटी रखना, ईश्वर आराधना में समय बिताना वे आजीवन नहीं भूले। कई बार वे रात को सोकर उठ जाते और सवालों के हल अपनी कॉपी पर दर्ज कर देते। रामानुजन कहते थे, मेरे लिए एक समीकरण का कोई अर्थ नहीं है जब तक कि वह ईश्वर के विचार को व्यक्त न करे। लंदन में अपने प्रवास के दिनों में भी नित्य स्नान कर उपासना करना और शाकाहारी भोजन करना वे नहीं भूले। बचपन से ही ईश्वर के अस्तित्व को माननेवाले रामानुजन अपनी माता के साथ मंदिर जाते और ईश्वर की आराधना करना उनके जीवन की दिनचर्या में शामिल था। सफलता के शिखर पर पहुँचने के बाद भी उनकी आस्था कम नहीं हुई। रामानुजन के जीवन से आज की युवा पीढ़ी को यह सीखने की जरूरत है कि परंपरा का पालन करना कोई रूढ़िवादिता नहीं है।

सफलता उसी के कदम चूमती है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी अडिग रहता है। रामानुजन इसी का एक जीता-जागता उदाहरण हैं। १९०४ में कक्षा दस में पूरे जिले में सर्वाधिक अंक लेने के लिए इन्हें 'के. रंगनाथ राव पुरस्कार' प्रदान किया गया। एफ.ए. की कक्षा में तीन बार लगातार प्रयास के बाद भी सिर्फ गणित की परीक्षा में उत्तीर्ण और अन्य सभी विषयों में असफल होने की वजह से इनका एफ.ए. पास करने का सपना अधूरा रह गया। जीवन चलाने के लिए उन्होंने कॉलेज के छात्रों को ट्यूशन पढ़ाने का काम किया।

एससीईआरटी दिल्ली के अंतर्गत आनेवाले शिक्षण-प्रशिक्षण केंद्र डाइट दरियागंज में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत। अब तक गणित विषय पर ६० से अधिक पुस्तकों के अलावा गणित विषय पर ही ६०० से अधिक लेख प्रकाशित।

सच्चा गुरु सार्थक जीवन के लिए जरूरी : जीवन में सफलता के लिए एक सच्चे गुरु की तलाश बड़ी आवश्यक है। रामानुजन ने अपने जीवन में कई मित्रों, गुरुओं का सान्निध्य पाया, परंतु जी.एस. हार्डी के रूप में उन्होंने १९१३ में एक सच्चा गुरु प्राप्त किया। हार्डी ने रामानुजन की प्रतिभा को इनके पत्र से ही पहचान लिया। रामानुजन के पत्र में लिखे कई प्रमेय, जो पहली नजर में उनकी समझ में नहीं आए, को देखकर हार्डी ने लिखा, ये प्रमेय सच होना जरूरी है, अगर ये सत्य नहीं होंगे तो लोगों का गणित से विश्वास उठ जाएगा।

रामानुजन को इंग्लैंड लाने, उनको उच्च गणित का पाठ पढ़ाने, बीमार होने पर एक सच्चे मित्र की तरह इलाज कराने से लेकर ट्रिनिटी कॉलेज से बी.ए. की डिग्री दिलाने और अंत में रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन से एफ.आर.एस. की डिग्री दिलाने तक का सारा श्रेय हार्डी को ही जाता है। बीमार रामानुजन जब अस्पताल में भरती थे तो हार्डी १७२९ नंबर की टैक्सी में बैठकर उनको देखने पहुँचे। माहौल को हलका बनाने के लिए मस्ती भरे लहजे में हार्डी ने कहा, मैं जिस कार में तुमसे मिलने आया, उस कार का नंबर बड़ा अटपटा है, इसपर कुशाग्र रामानुजन ने बताया कि यह ऐसी अनोखी संख्या है, जिसे दो घनों के वर्गों के योग के रूप में लिखा जा सकता है।

$$१७२९ = १०^३+९^३=१२^३+१^३$$

रामानुजन को हार्डी गॉस और जैकोबी के समक्ष प्रतिभाशाली मानते थे। प्रसिद्ध गणितज्ञ एवं दार्शनिक बट्रेड रसेल ने कहा कि प्रो. हार्डी एवं प्रो. लिटिलवुड ने 'एक हिंदू क्लर्क' में दूसरे न्यूटन को खोज निकाला। प्रो. हार्डी ने कहा, उन्होंने मेरे जीवन को समृद्ध बनाया है, मैं उनको कभी भूलना नहीं चाहता। प्रो. हार्डी ने तत्कालीन गणित के विद्वानों को १०० में से जो अंक दिए थे, उसमें स्वयं को २५, लिटिलवुड को ३०, जर्मन गणितज्ञ हिलवर्ड को ८० और रामानुजन को १०० अंक दिए थे।

जिस रामानुजन को अपने देश में ११वीं कक्षा की उपाधि नहीं मिली थी, उनको विश्व का महान् गणितज्ञ बनने में गुरु हार्डी ने अपनी महती

भूमिका का निर्वाह किया।

हिम्मते मर्दा, मददे खुदा : यह बात सौ आने सच है कि ईश्वर उसी की मदद करता है, जो खुद अपनी मदद करता है। रामानुजन का जीवन एक प्रेरणा का स्रोत है। जीवन में इतनी विषमता के बावजूद उन्होंने कभी हार नहीं मानी। अपने सबसे पसंदीदा विषय गणित को अपने जीवन का ध्येय बना लिया और एकलव्य की भाँति खुद ही गणित के शिखर पर पहुँचने का प्रयास किया। पारिवारिक जिम्मेदारी के कारण मद्रास पोर्ट पर नौकरी करते हुए भी अपने लक्ष्य को पाने के लिए समय निकालना इनकी लगनशीलता को दिखाता है। लंदन में भी रामानुजन अस्वस्थ रहे, परंतु इस अवस्था में भी ३७ रिसर्च पेपर लिखना एक बड़ी उपलब्धि है। १९१९ में भारत आगमन के बाद भी इन्हें बीमारियों ने सताना बंद नहीं किया। जानकी ने अपनी पत्नी-धर्म का पालन करते हुए इनकी खूब सेवा की। जीवन के अंतिम समय में वे बिस्तर से उठने में भी असमर्थ थे, पर इसी अवस्था में उन्होंने मोक-थीटा फंक्शन की खोज की। अपने जीवन में जिन तीन नोटबुक में उन्होंने ३९०० प्रमेय अंकित किए, उसे अमेरिकी प्रोफेसर एंड्रूज और ब्रूस बर्न ने सिद्ध करने का काम किया। भारत आगमन के बाद मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा इनके लिए २५० रुपए की छात्रवृत्ति स्वीकार हुई, तब उन्होंने रजिस्ट्रार को पत्र लिखकर कहा कि इसमें से मेरे घर का खर्च निकलने के बाद जो बच जाए, वह गरीब विद्यार्थियों के सहायता कोष में जमा करा दें। यह उनकी सच्ची उदारता को दिखाता है।

जीवन में मुश्किलों से लड़कर ही असली सफलता मिलती है।

जब हौसला बना लिया है
ऊँची उड़ान का
फिर देखना फिजूल है
कद आसमान का

रामानुजन ने भारत में रहते हुए भी काफी नाम कमाया। ग्यारहवीं फेल एक छात्र के लिए जब प्रेसीडेंसी कॉलेज का गणित का अंग्रेज अध्यापक अनुशंसा-पत्र लिखे, विश्वविद्यालय अपनी लाइब्रेरी का दरवाजा खोल दे और जर्नल इनके लेख छापने को लालायित हो तो यह अवश्य ही इनके विषय में पैठ और प्रतिष्ठा को दरशाता है। इंग्लैंड के पाँच वर्ष के कार्यकाल में रामानुजन ने अनेक सम्मान प्राप्त किए, परंतु उन्होंने जीवन में सरलता, सादगी और भारतीयता को यथावत् बनाए रखा। भारत आने के बाद इनका स्वागत देश के हर विश्वविद्यालय ने किया। हर कोई इन्हें अपने यहाँ नौकरी देने के लिए लालायित था, पर इनके मन से कभी भी विनम्रता और सादगी का विचार ओझल नहीं हुआ।

डी-१४३२, जहाँगीर पुरी
दिल्ली-११००३३

दीये का दीया

लघुकथा

● **हेमंत उपाध्याय**

एक संत ने दीपावली पर माटी के दीये जलाने का सुझाव देते हुए पूछा, "इससे कितने परिवारों को मदद मिलेगी।" एक ने उत्तर दिया, "एक कुम्हार के परिवार को।" दूसरे ने उत्तर दिया, दो को "कुम्हार व तेली के परिवार को।" तीसरे से पूछा, उसका उत्तर था तीन, "कुम्हार, तेली व जुलाहे के परिवार को।"

"संत ने कहा, जवाब अभी भी अधूरा है, चौथे ने कहा, "उपरोक्त के अलावा किसान के परिवार को भी अप्रत्यक्ष रूप से मदद मिलेगी।"

संत बोले, अभी भी उत्तर में कसर बाकी है। पाँचवे ने कहा उक्त चार परिवार के अलावा "किसान के यहाँ कपास बोने वाले मजदूर परिवार, कपास के बीज बेचने वाले व्यापारी परिवार, कपास तोड़ने वाले मजदूर परिवार, कपास शहर ले जाने वाले गाड़ी मालिक एवं गाड़ी चालक के परिवार को यहाँ तक कि तेल के उद्योग से जुड़े सभी परिवारों को मदद मिलेगी।"

गहराई से सोचने पर पता चलता है कि एक दीपक कितने घरों में चूल्हा जलाने की क्षमता रखता है, अर्थात् दीया प्रज्वलित करने की इस दैवीय प्रथा से कितने परिवार लाभान्वित होते हैं। इसका लाभ अनंत रहेगा। संत खुश हो गए।

संत बोले, बिना सोचे हम भारत की सुप्रथाओं को बंद कर रहे हैं। विदेशी लेम्प जला रहे हैं। मिट्टी के दीये जलाने से दीये जलने वाले परिवार का अंधकार दूर होगा और देवता भी प्रसन्न होंगे।

अत: माटी के दीप जलाने की प्रथा जारी रखें, "दीये ने बहुत कुछ दिया है।" ये घर ही नहीं देश का अंधकार भी दूर कर सकता है। "लोकल दीये को वोकल बनाएँ।" स्वदेशी अपनाएँ—"वस्तुएँ भी संस्कार भी।"

साहित्य कुटीर,
पं. राम नारायण उपाध्याय वार्ड क्र. ४३
खंडवा-४५०००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ७९९९७४९१२५

स्नेह भरा हो दीपक में

● आशा शर्मा

साथ

जिंदगी से निकल के क्या कोई साथ इस तरह से भी निभाता है
ताउम्र अश्क बनके वह मेरी आँखों को घर बनाता है,
वालिदेन की दुआएँ हों तबस्सुम लबों पे बच्चों के
रहमत खुदा की बरसे जब आशियाँ यों कोई सजाता है,
खुदा की जात पर शुबहा कभी न करना तुम
इक सहारा छिनते ही सौ हाथों से वह उठाता है,
जुनून सिर पे मंजिल के हौसले भी बुलंद हों जिसके
वही शख्स आके दुनिया में राह अपनी खुद बनाता है,
सब देखते हों हसरत से इसरार हो बुलावे का।

शिकायत

गर करना है शिकायत तो कातिबे-तकदीर से कीजै,
नाकामिए-मुहब्बत भी तो है आपकी खता
इलजाम इसका क्यों फिर गैर के सिर कीजै
समुंदर अश्क भरा लिखा हो जब मुकद्दर में
भूले से भी प्यार का फिर नाम न लीजै,
पहलू में टूटा दिल लबों पे आह भरते हुए
किसी बेवफा को फिर भी कभी बद्दुआ न दीजै,
वह जिसका नाम लेकर जीते रहे थे अब तक
वक्ते-रुखसत सलाम आखिरी उसी बेदर्द को कीजै।

माँ का मन

पल-पल उड़ता फिर-फिर मुड़ता, बिखरे रंग समेटा करता
न सोता न सोने देता, बैरी मन तू कैसा चंचल?
कभी आज को लेकर कुढ़ता, फिर बीते पल हँसकर जीता
बाँहों में दो नन्हे शावक, चूमा करता औ दुलराता,
समय भूलकर जीता है तू, विष के घट नित पीता है तू
युग आए औ चले गए, पर न बदला है न बदलेगा,
और किसी का नहीं है पागल यह तो माँ का मन है निश्छल।

वरिष्ठ रचनाकार एवं कवयित्री, जिनकी रचनाएँ आकाशवाणी एवं दूरदर्शन द्वारा प्रसारित।

आओ मिलकर दीया जलाएँ

आशा की बाती डूबी हो औ स्नेह भरा हो दीपक में
तमस चीरती जीवन नभ का लालिमा उषा की ले आएँ,
दु:ख के बादल छँट जाने दो चमके विद्युत् की दंत पंक्ति
नीर नयन का पीर हृदय की भूलें अधर पुन: मुसकाएँ,
नन्हा बीज बनें औ छिपने को कोख धरा की पाएँ
आशीष गगन से बन फुहार फिर नव-अंकुर को लहराएँ,
बनना हो वट-वृक्ष हमें तो बाँहें लंबी फैलाएँ
अपने समेटकर रख लें उनमें छाँह बटोही पाएँ,
आओ मिलकर दीया जलाएँ।

सुकून

जब आँसू भी काम न आएँ और आह बेअसर हो जाए
ऐ नाकामिए-दिल, बता तू ही, ऐसे में क्या किया जाए?
खामोश रहके लब जिस पल, दर्दे-दिल से वफाएँ करते हों
आँख खुद दगा दे दे, औ सारे राज फाश कर जाए,
दामन फैलाए सजदे में, फर्श पे बैठके यह पूछूँ मैं—
ऐ खुदा, किस तरह दुआ माँगूँ, मेरी फरियाद अर्श तक जाए,
गर ठोकरें हों किस्मत में, गम गाहे-बगाहे मिलते हों
ईमान हो अगर पुख्ता, मंजिल खुद चलके आ जाए,
सारी कायनात है अपनी, मिल सबसे बाँह फैलाए
दु:ख समेट ले सबके, तुझको सुकून मिल जाए।

५०५-बी, शेखर प्लेनेट, ५४-स्कीम,
इंदौर-४५१०१० (म.प्र.)

बाल-कहानी

खुशियों की दीवाली

● मंजरी शुक्ला

सुबह से घर में कोहराम मचा हुआ था। पापा पलंग के नीचे लेटे हुए कुछ ढूँढ़ रहे थे तो मम्मी ने सारे कपड़े निकालकर अलमारियाँ खाली कर दी थीं और कपड़ों का ढेर जमीन पर पड़ा हुआ था। दीपू था कि उसने रो-रोकर आँखें लाल कर ली थीं।

पर पटाखों का थैला कहीं भी नजर नहीं आ रहा था। जितनी देर हो रही थी, उतना ही मम्मी का गुस्सा भी बढ़ता चला जा रहा था, क्योंकि न तो समय पर नाश्ता बन पा रहा था और न ही वह दीपू को चुप करा पा रही थी। उधर पापा भी जब ढूँढ़ते हुए थक गए तो कुरते की जेब से अखबार निकालकर वहीं फर्श पर लेटे-लेटे ही पढ़ने लगे। मम्मी एक कमरे से दूसरे कमरे घूमते हुए लगातार पटाखे ढूँढ़ रही थीं। जब वह बैडरूम में आईं तो उन्होंने पापा के पैर पलंग के बाहर देखे। घबड़ाते हुए उन्होंने नीचे झाँका तो पापा आराम से चश्मा लगाए लेटकर अखबार पढ़ रहे थे।

मम्मी ने चिढ़ते हुए पूछा, "पटाखों के थैले का इश्तहार क्या अखबार में छपवा दिया है?"

पापा बेचारे चश्मा उतारते हुए बाहर आए और थके स्वर में बोले, "मैं आज शाम को जाकर दीपू के लिए और पटाखें ले आऊँगा। अब जब थैला नहीं मिल रहा है तो जाने दो।"

दीपू बोला, "मुझे लग रहा है कि मेरे पटाखों की थैली चोरी हो गई है।"

"पर आज तक तो हमारे घर से कुछ भी नहीं चोरी हुआ।" पापा ने अखबार कुरते की जेब में वापस रखते हुए कहा।

"हमारे घर में आया ही कौन है, जो पटाखे चुराकर ले जाएगा?" मम्मी ने पापा की बात का समर्थन करते हुए कहा।

दीपू बोला, "कल शाम को मेरे दो दोस्त आए थे अवि और बंटी, मुझे लग रहा है कि..."

सुपरिचित लेखिका। अब तक बाल-साहित्य की पाँच पुस्तकें। देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानियाँ आदि प्रकाशित। संप्रति कुरुक्षेत्र आकाशवाणी में एनाउंसर। स्वतंत्र रूप से साहित्य लेखन में रत।

पापा तुरंत बोले, "अपने दोस्तों के बारे में ऐसा बिल्कुल नहीं सोचना चाहिए।"

दीपू बोला, "मैं पूरे यकीन से कह सकता हूँ कि बंटी ही चोर है।"

"बेटा, बिना देखे किसी पर कभी भी कोई इलजाम नहीं लगाना चाहिए।" पापा ने नाराज होते हुए कहा।

"नहीं पापा, मैं सच कह रहा हूँ। कल ही बंटी कह रहा था कि उसके पापा के पास पटाखे खरीदने के लिए पैसे नहीं है, क्योंकि उसकी मम्मी की बीमारी में सारे पैसे खत्म हो गए।"

मम्मी ने दीपू को प्यार से समझाते हुए कहा, "अगर उसके पास पटाखे खरीदने के लिए पैसे नहीं हैं तो इसका मतलब यह नहीं है कि वह चोर है।"

"पर पापा, यह हो भी तो सकता है न, क्योंकि उसको भी तो पटाखे बहुत पसंद हैं।"

मम्मी गुस्सा होते हुए बोलीं, "तुम सिर्फ बंटी को ही क्यों कह रहे हो। अपने दूसरे दोस्त का नाम भी नहीं ले रहे?"

"अवि तो बहुत अमीर है आपने देखा है। घर देखा है आपने उसका, ऐसा लगता है महल है। कल ही वह अपनी मम्मी के साथ चार

बड़े पैकेट पटाखे लेकर आई थी।"

पापा ने दीपू का हाथ पकड़कर समझाते हुए कहा, "मैं तब भी कहूँगा कि अगर तुमने बंटी को पटाखे ले जाते हुए नहीं देखा है तो तुम उसे चोर नहीं कह सकते हो।"

दीपू ने यह सुनकर मुँह बना लिया और पापा कमरे से बाहर चले गए। दीपू ने तो ठान ही लिया था कि उसे बंटी के घर से पटाखे बरामद करने ही हैं। इसलिए वह चुपचाप बंटी के घर चल दिया। दरवाजे पर ही बंटी और उसकी छोटी बहन मिन्नी हँसते हुए पटाखे गिन रहे थे।

अपने पटाखे देखकर दीपू का चेहरा गुस्से से लाल हो गया और वह चीखा—"तुमने मेरे सारे पटाखे चुरा लिये हैं।"

"तुम्हारे पटाखे···ये क्या तुम्हारे पटाखे हैं?" बंटी सकपकाता हुआ बोला।

"और क्या तुम्हारे हैं? चोर कहीं के।" दीपू चीखा।

तब तक बंटी की मम्मी वहाँ पर आ गई थीं। वह बहुत शांत स्वभाव की महिला थी और सभी बच्चों को बहुत प्यार करती थी।

उन्होंने दीपू से बड़े प्यार से कहा, "बंटी ने आज तक कभी कोई चोरी नहीं की है। तुम्हारे घर तो वह कई सालों से आ-जा रहा है, क्या आज तक तुम्हारा कोई सामान गायब हुआ?"

दीपू को समझ में नहीं आया कि वह क्या बोले। पर फिर वह पटाखों की तरफ देखता हुआ बोला, " पर ये सारे मेरे पटाखे हैं, जो कल बंटी मेरे घर से लाया है।"

उसकी मम्मी ने कहा, "पटाखों का थैला बंटी को कूड़े के ढेर पर पड़ा हुआ दिखा था।"

बंटी रुआँसे होता हुआ बोला, "मैं जब तेरे घर से लौट रहा था तो कूड़े के ढेर पर मैंने एक थैला देखा, जिसमें से अनार और रॉकेट दिख रहे थे। मैं बहुत देर तक वहाँ खड़ा रहा कि जिसका थैला है, वह लेने आ जाएगा, पर जब कोई नहीं आया तो मुझे लगा कि रात में कूड़ा जलाने वाला आएगा और पटाखों से कहीं वह और वहाँ घूमनेवाले जानवर घायल न हो जाएँ, इसलिए मैं इन्हें घर ले आया।"

पर दीपू को उसकी बात का विश्वास नहीं हुआ और वह बंटी को गुस्से से देखने लगा। बंटी की मम्मी ने चुपचाप सारे पटाखे उसी थैले में रखकर दीपू को पकड़ा दिए। दीपू को पटाखे ले जाते देखकर मिन्नी ने फूट-फूटकर रोना शुरू कर दिया और पटाखों का थैला पकड़ लिया।

मिन्नी को रोता देखकर दीपू को बहुत दु:ख हुआ, पर वह बंटी से इतना ज्यादा गुस्सा था कि उसने मिन्नी को दो पटाखे भी नहीं पकड़ाए और दौड़ता हुआ घर चला गया।

जब वह घर पहुँचा तो मम्मी घर में काम करनेवाली शांति आंटी को डाँटते हुए कह रही थीं कि कम-से-कम देखना तो चाहिए था कि थैले के अंदर क्या था। तुमने दीपावली की सफाई करते हुए दीपू के सारे पटाखे कूड़े में फेंक दिए। अब कौन जाएगा उस कूड़े के ढेर में ढूँढ़ने?

दीपू मम्मी की बात सुनकर सन्न रह गया। उसकी आँखों के आगे बंटी की मम्मी का उदास चेहरा, मिन्नी का रोते हुए नंगे पैर पटाखों के पीछे भागना और सिर झुकाए बैठा हुआ बंटी याद आ गया। उसकी रुलाई फूट पड़ी और जोर-जोर से रोने लगा। मम्मी घबराते हुए आई और दीपू से पूछा, "क्या हो गया···और यह पटाखों का थैला कहाँ से मिला तुम्हें?"

दीपू मम्मी के गले लग गया और हिलक-हिलककर रोने लगा। मम्मी ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा, "तुम्हारे पटाखे मिल गए, फिर तुम क्यों रो रहे हो?"

उसने सिसकियों के बीच मम्मी को सारी बात बता दी। दु:ख और शर्म से मम्मी की आँखें भी डबडबा उठीं। उन्होंने पल्लू से आँसू पोंछे और तुरंत दीपू के साथ बाजार गईं। ढेर सारे पटाखे लेकर वह दीपू के साथ सीधे बंटी के घर पहुँचीं।

बंटी की मम्मी ने दरवाजा खोला। उनका चेहरा बहुत उतरा हुआ था। तब तक वहाँ बंटी और मिन्नी भी आ गए। मिन्नी अपनी मम्मी के पीछे छिपते हुए बोली, "आंटी, अब हमारे पास और पटाखे नहीं हैं।"

दीपू की मम्मी ने प्यार से मिन्नी को गोद में उठाते हुए पटाखे का थैला पकड़ा दिया। मिन्नी खुशी से झूम उठी और तुरंत सारे पटाखे निकालकर जमीन पर बैठ गई। दीपू की मम्मी सिर झुकाए खड़ी थीं। उन्हें समझ ही नहीं आ रहा था कि वह क्या कहें। तभी बंटी की मम्मी ने मुसकराते हुए उन्हें गले से लगा लिया।

दीपू को सिर झुकाए खड़ा देखकर बंटी बोला, "तो पटाखे फोड़ने हर साल की तरह आज भी शाम को तेरे घर आ जाऊँगा।"

यह सुनकर बंटी हँस दिया और चारों तरफ जैसे कई अनारों और आतिशबाजियों की सतरंगी रोशनी चमक उठी।

साअ

क्वार्टर नंबर डी-१४३३
इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड
रिफाइनरी टाउनशिप विलेज ऐंड पोस्ट-बहोली
पानीपत-१३२१४० (हरियाणा)
दूरभाष : ०९६१६७९७१३८

गिजुभाई बधेका

(बच्चों को प्यार करनेवाले दोस्त अध्यापक)

• सुनीता

बाल शिक्षा में एक नया स्वप्न देखनेवाले गिजुभाई बधेका बड़े अनोखे बाल साहित्यकार हैं। उन्होंने पहलेपहल यह आवाज बुलंद की कि बच्चों को पढ़ाना है तो आपके हृदय में माँ की तरह ममता और दुलार होना चाहिए। बच्चों को पढ़ाते समय डाँट-डपट और डंडे का प्रयोग करना बर्बरता है। बच्चों के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित करनेवाले गिजुभाई बधेका ने ऐसी अनोखी शिक्षा का स्वप्न ही नहीं देखा, उसे व्यवहार में भी ढाला। गुजरात में उन्होंने शिक्षा की ऐसी प्रयोगशाला शुरू की, जिसकी गूँज सारे देश ने सुनी।

गिजुभाई बच्चे की शिक्षा और बाल साहित्य को एक साथ लेकर चलते थे। उन्होंने जोर देकर कहा कि बच्चों को रोचक कहानियाँ सुनाकर आप जो प्रभाव पैदा कर सकते हैं, वह किसी और तरह से संभव ही नहीं है। बच्चों को डंडे के डर से अनुशासित नहीं किया जा सकता, और न डाँट-डपटकर उन्हें पढ़ाया जा सकता है। पर हाँ, अगर आप सुंदर और रोचक कहानियों के जरिए बच्चों में संस्कार डालेंगे और उन्हें अच्छी चीजें समझाएँगे, तो न सिर्फ उनका सारा व्यक्तित्व बदल जाएगा, बल्कि उनकी पढ़ाई-लिखाई में इतनी रुचि पैदा हो जाएगी कि उन्हें कभी पढ़ने के लिए कहने की जरूर ही न पड़ेगी।

गिजुभाई बधेका बच्चों के बहुत अच्छे लेखक भी थे, जिन्होंने एक से एक दिलचस्प कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियों में बड़ी नाटकीयता और रस है, जिन्हें सुनते हुए बच्चे किसी जादू की डोर से बँधे साथ बहते हैं। पर गिजुभाई इससे भी अधिक आदर्श बाल शिक्षा का स्वप्न देखनेवाले ऐसे विलक्षण स्वप्नदर्शी थे, जिन्होंने देश में पहली बार बाल साहित्य के जरिए शिक्षा देने का महामंत्र अध्यापकों को दिया। वे ऐसे ममतालु शिक्षाशास्त्री थे, जिनकी लोकप्रियता ने हर किसी को अचरज में डाल दिया। हजारों बच्चे उनके मुरीद थे, जिन्होंने उनकी कहानियों से जीवन के अनमोल पाठ पढ़े। इसलिए आज भी उन्हें लोग 'बच्चों की मूँछोंवाली माँ' कहकर प्यार और आदर से याद करते हैं।

गिजुभाई बधेका ने सिर्फ बालशिक्षा में प्रयोग ही नहीं किए, बल्कि अपने प्रयोगों पर आधारित एक सुंदर पुस्तक 'दिवास्वप्न' पुस्तक लिखी, जिसे आज भी बड़े-बड़े शिक्षाशास्त्री 'बाल शिक्षा की गीता' कहकर याद करते हैं। गुजरात के इस विलक्षण शिक्षाशास्त्री की यह पुस्तक सन् १९३२ में लिखी गई थी और तभी से अपने नएपन और शिक्षा के बारे में अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण इसने सभी का ध्यान आकर्षित किया। मध्य प्रदेश के गांधीवादी विद्वान् काशीनाथ त्रिवेदी ने बड़े धैर्य से इस पुस्तक का गुजराती से हिंदी में ऐसा अनुवाद किया, जो मूल जैसा ही आस्वाद देता है। यह पुस्तक समय बीतने के साथ-साथ इतनी लोकप्रिय हुई कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने १९९१ में इसका पहला संस्करण प्रकाशित किया। तब से सन् २०११ तक इसके अठारह संस्करण हो चुके हैं।

सुपरिचित लेखिका। 'नानी के गाँव में' (कहानी-संग्रह); 'खेल-खेल में बातें' (लेख-संग्रह); 'फूलोंवाला घर', 'दादी की मुसकान', 'रिया और दादी' शीघ्र प्रकाश्य। महान् युगनायकों पर लिखी जीवनीपरक पुस्तक 'धुन के पक्के' खासी चर्चित हुई। 'आओ, सैर करें भारत की' पुस्तक के अलावा प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में गंभीर आलोचनात्मक लेख और बच्चों की कहानियाँ, लेख आदि प्रकाशित।

गिजुभाई की यह पुस्तक ऐसे सभी शिक्षाकर्मियों के लिए जो बच्चों के लिए कुछ नया करना चाहते हैं, उन्हें बस्ते के बोझ से, ज्ञान के अतिरेक से मुक्ति दिलाने की बेचैनी महसूस करते हैं, एक दिग्दर्शक का काम करती है। गिजुभाई अच्छी तरह जानते हैं कि सच्चा ज्ञान वह है, जिसे बच्चे खेल-खेल में हृदयंगम कर लेते हैं। जबरदस्ती ठूँसा गया ज्ञान तो ऊब और अपच पैदा करता है और बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर दुष्प्रभाव डालता है। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद शिक्षा को लेकर नए ढंग से सोचने-विचारने वाले सभी लोगों को एक हार्दिक खुशी और संतोष तो प्राप्त होता ही है कि हाँ, एक ऐसा भी रास्ता हो सकता है, जो मासूम बच्चों की मासूमियत बचाए रख सके, उनकी हर पल की जिज्ञासु वृत्ति को संतुष्ट कर सके और बगैर उन पर क्रोधित हुए या बगैर किसी शारीरिक दंड के, उनकी अति सक्रियता को सही दिशा में मोड़ सके।

गिजुभाई बधेका का मानना था कि शिक्षा तो आनंद की वस्तु है। उसका भला शारीरिक दंड से क्या वास्ता? पर दुर्भाग्य से शिक्षा के नाम

पर बच्चों को शारीरिक दंड देने का तरीका कमोबेश आज भी चल रहा है, जो न सिर्फ बच्चों को कुंठित कर रहा है, बल्कि उनमें बदले की भावना और मारपीट की प्रवृत्ति भी पैदा कर रहा है। बड़े-बड़े नामी स्कूलों की महँगी शिक्षा और पढ़ाई के तामझाम के बावजूद यह सही शिक्षा का अभाव ही है, जो बच्चों में क्रोध और असुरक्षा की भावना पैदा कर रहा है। प्यार और कोमलता से पढ़ाने की बजाय, एक अनुचित प्रतिस्पर्धा पैदा करके, हम उन्हें एक तरह की हिंसा ही सिखा रहे हैं। ऐसी पढ़ाई से वे लगातार उद्धत बन रहे हैं, ताकि वे अपने अपमान का तुरंत बदला ले सकें। अगर उन्हें सही शिक्षा मिले, प्यार से उन्हें कोई पढ़ाने वाला हो, तो ऐसी बुराइयाँ पनप ही नहीं सकतीं।

'दिवास्वप्न' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, शिक्षा को लेकर एक ममतालु अध्यापक का सपना ही है। बहुत प्यारा, बहुत आह्लादकारी सपना, जिसकी हम सब कामना करते हैं कि काश, ऐसा हो पाता! गिजुभाई ने इस पुस्तक में बच्चों के साथ खेलते हुए, कहानी सुनाते हुए, मिट्टी के खिलौने बनाते हुए एक ऐसे अध्यापक की कल्पना की है और अपने जीवन के ऐसे अनुभवों को उसमें ऐसे पिरोया है कि वह कोरा दिवास्वप्न न होकर हमारी कामनापूर्ति का साकार रूप ले लेती है।

गिजुभाई की 'दिवास्वप्न' बहुत ही दिलचस्प पुस्तक है। एक साँस में पढ़ जानेवाली। बरसों से यह घर में थी, पर पहले कभी पढ़ने की फुरसत ही न मिली। शायद इसलिए भी, कि यह छोटी सी पुस्तक बड़े-बड़े पोथों में दबी हुई थी। तो नजरअंदाज होती रही। अभी कुछ समय पहले ही अपने पढ़ने के व्यसन के कारण कोई नई पुस्तक देख रही थी कि नई-पुरानी किताबों और पत्रिकाओं के बीच दबी गिजुभाई बधेका की 'दिवास्वप्न' दिखाई पड़ी। नाम तो गिजुभाई का बहुत बार सुना है, और उनका नाम आते ही मन में बच्चों के मामा गिजुभाई की प्यारी सी तसवीर खिंच आती है, जो बच्चों को मजेदार कहानियाँ सुनाया करते हैं। पर 'दिवास्वप्न' पुस्तक पढ़ी तो मन में नए विचार और चिंतन की खिड़कियाँ ही खुलती चली गईं। लगा, बाल शिक्षा के क्षेत्र में ताजा विचारों के इस झोंके ने मुझे भीतर-बाहर से बदल दिया है। एक छोटी सी पुस्तक भी क्या जादू कर सकती है, इसे जानना हो, तो मैं कहूँगी कि फुर्सत मिले तो आप भी गिजुभाई बधेका की पुस्तक 'दिवास्वप्न' पढ़ें। बाल शिक्षा को लेकर लिखी गई ऐसी रोचक पुस्तक शायद ही कोई और हो।

□

चलिए, अब गिजुभाई बधेकाजी के 'दिवास्वप्न' और इस पुस्तक के जादुई प्रभाव की चर्चा की जाए।

असल में 'दिवास्वप्न' कहानी है एक ऐसे प्रयोगशील शिक्षक की, जो एक प्राथमिक पाठशाला में चौथी कक्षा में पढ़ाने आता है। पहले ही दिन में उसके मन में शिक्षा की पारंपरिक शैली को लेकर उदासीनता है। वह कुछ नया करना चाहता है। उसे बिल्कुल पसंद नहीं कि पहले दिन से ही कक्षा में घुसे, हाजिरी ली और फिर पाठ्यपुस्तक का पहला पाठ शुरू। उसकी धारणा है कि पहले बच्चों से अच्छे से परचना चाहिए, अपरिचय की दीवार टूटनी चाहिए। पढ़ाना-लिखाना तो इसके बाद ही हो सकता है।

खैर, पहले दिन इस नए प्रयोगवादी अध्यापक की शुरुआत शांतिपाठ से होती है। अब चौथी कक्षा के बच्चे पहले दिन नए अध्यापक की कक्षा में चुप क्यों बैठने लगे? ऊपर से ऐसे अध्यापक से, जिसमें जरा भी राब नहीं है। उसके लिए सचमुच बड़ी मुसीबत हो गई। गिजुभाई ने इस दृश्य का बहुत ही सुंदर चित्र खींचा है—

"लड़कों में से कोई ऊँ-ऊँ करने लगा, कोई हाऊ-हाऊ करने लगा तो कोई धमाधम पैर पटकने लगा। इतने में एक ने ताली बजाई और सब ताली बजाने लगे। फिर कोई हँसा और हँसी उड़ने लगी। मैं खिसिया गया।"

पहले दिन नए अध्यापक का यह प्रयोग तो सफल नहीं हुआ। पर अगले दिन कक्षा में जाने पर अध्यापक ने कहा, "कहानी सुनोगे?" और यह सुनते ही सब बच्चे खुश हो गए, उसके आसपास घेरा बनाकर बैठ गए। थोड़ी ही देर में एकदम पूरी कक्षा एकाग्रचित्त होकर कहानी सुन रही थी। कहानी भी राजा-रानी, उनके परिवार और राजकुमारों के विचित्र कारनामों की। यानी इतनी लंबी कि जिसका कोई ओर-छोर नहीं। पर बच्चे हैं कि एकटक सुन रहे हैं, न भूख न प्यास, न छुट्टी का होश। छुट्टी की घंटी बजने पर भी सबका एक ही आग्रह, "मास्टरजी, कहानी पूरी कीजिए न!" किसी बच्चे का घर जाने का मन ही न हो। वाह, कमाल है भाई, मन करता है, ऐसा स्कूल बचपन में हमें भी मिला होता तो कितने मजे आते। मेरी बहुत सी बचपन की सहेलियाँ स्कूल की मार के डर से स्कूल का मुँह ही नहीं देख पाईं। वे अगर ऐसा स्कूल, ऐसे अध्यापक पातीं तो आज क्या वे अनपढ़ होतीं?

गिजुभाई स्वयं भी बच्चों पर कहानी के जादुई असर की चर्चा बड़े सुंदर ढंग से करते हैं। वे कहते हैं, "पहले दिन जो मेरी सुनते तक नहीं थे और जो हा-हा, ही-ही करके मेरी खिल्ली उड़ा रहे थे, वे ही जबसे कहानी सुनने को मिली है, तब से शांत बन गए हैं। मेरी ओर प्रेम से देखते हैं। मेरा कहा सुनते हैं। मैं जैसा कहता हूँ, उसी प्रकार बैठते हैं। 'चुप रहो, गड़बड़ मत करो' तो मुझे कभी कहना ही नहीं पड़ता और कक्षा में से निकालने पर भी नहीं निकलते।"

गिजुभाई स्वयं भी बच्चों पर कहानी के जादुई असर की चर्चा बड़े सुंदर ढंग से करते हैं। वे कहते हैं, "पहले दिन जो मेरी सुनते तक नहीं थे और जो हा-हा, ही-ही करके मेरी खिल्ली उड़ा रहे थे, वे ही जबसे कहानी सुनने को मिली है, तब से शांत बन गए हैं। मेरी ओर प्रेम से देखते हैं। मेरा कहा सुनते हैं। मैं जैसा कहता हूँ, उसी प्रकार बैठते हैं। 'चुप रहो, गड़बड़ मत करो' तो मुझे कभी कहना ही नहीं पड़ता और कक्षा में से निकालने पर भी नहीं निकलते।"

यों गिजुभाई अपने अनोखे प्रयोगशील मास्टर के जरिए कहानी के सूत्र से अपने विद्यार्थियों से एक अटूट बंधन में बँध जाते हैं। कहानी द्वारा ही फिर इतिहास की बातें होती हैं, साहित्य की बातें होती हैं, यानी कहानी, कविता, नाटक, एकांकी की। पर व्याकरण··· ? वह बच्चों को कैसे पढ़ाया जाए? बहुत से बच्चों को तो वह हौआ ही लगता है।

पर अध्यापक और बच्चों का यह विलक्षण संवाद बना, तो फिर सीधे-सीधे व्याकरण सिखाने की एक बहुत ही मजेदार पद्धति भी निकल आती है। और सवाल-जवाब भी बड़े मजेदार। भई, सिंह की स्त्री कौन हुई? सिंहनी। फिर ऐसे ही बकरा, बकरी आदि बहुत सारे उदाहरण सामने आ जाते हैं। बच्चों से ही सारा कुछ निकलवाया जाता है। व्याकरण भी इतने आनंददायक ढंग से पढ़ाया जा सकता है, यह गिजुभाई से सीखा जा सकता है।

इसी तरह गिजुभाई बताते हैं कि स्कूल का मतलब सिर्फ पाठ्यपुस्तक पढ़ा देना ही नहीं है। इसके साथ शिक्षा का अर्थ बच्चों के संपूर्ण विकास पर ध्यान देना है। उनकी शारीरिक सफाई, नाखून, बाल, कपड़े, मुँह-हाथ सब साफ-सुथरे रखना। सिर्फ अपनी ही सफाई नहीं, बल्कि पूरे स्कूल की भी सफाई की ओर ध्यान देना आदि भी शिक्षा का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

पुस्तक पढ़ते हुए बराबर खयाल आ रहा था कि आज की शिक्षा कैसी हो गई है? यह सिर्फ पाठ्य-पुस्तकों की रटाई तक सीमित हो गई है। न सिर्फ अध्यापक ऐसा करते हैं, बल्कि अभिभावक भी इसी बात का निरंतर दबाव बनाते हैं, जिससे बच्चों का एकांगी विकास होता है। इम्तिहान में ज्यादा नंबर हासिल करने के पीछे जो खींचतान चलती है, उसका भी गिजुभाई विरोध करते हैं। हाँ, बच्चों से जो गलतियाँ होती हैं, उनके सुधार की ओर उनका पूरा ध्यान रहता है।

शिक्षा में उनके प्रयोगों के कुछ और दिलचस्प तरीके भी हैं। उदाहरण के लिए, बच्चों में कला के पति रुचि विकसित करना, चित्र बनाना, लोकगीत सिखाना, सुनना, बच्चों को ही पात्र बनाकर कहानी का नाट्य रूपांतरण करवाना, वगैरह-वगैरह।

इस नए अध्यापक के प्रयोगों के दौरान दूसरे अध्यापकों की क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका भी पुस्तक में बहुत बढ़िया वर्णन है। असल में नए अध्यापक की प्रयोगशीलता से सबसे ज्यादा मुश्किल दूसरे अध्यापकों को ही है। कैसे दूसरे अध्यापक इस नए प्रयोगशील अध्यापक से ईर्ष्या करते हैं, क्या-क्या कटूक्तियाँ उसके खिलाफ हवा में तैरती हैं, इसका बड़ा ही जीवंत वर्णन है। दूसरे शिक्षक अकसर यह कहकर नए अध्यापक का मजाक उड़ाते थे—

"ये महाशय तो रोज एक नया प्रयोग करते हैं। ये हमें अपने छात्रों को सुख से पढ़ाने भी देंगे या नहीं? इन्हें परवाह ही क्या है? ये इस प्रयोग में सफल हो गए तो साहब, हमसे भी कहेंगे कि लो, करो इस तरह और उस तरह, और यदि सफल न हुए तो अपना बोरिया-बिस्तर लेकर चल देंगे।"

लेकिन परीक्षा परिणाम आया, तो सब कुछ उलट गया। डायरेक्टर साहब नए अध्यापक के प्रयोगों से बहुत प्रभावित हुए। उनकी भरपूर सराहना करते हुए वे कहते हैं—

"···ये सज्जन एक साल पहले चौथी कक्षा में शिक्षा के प्रयोग करने हेतु मेरे पास आए थे। मैंने उस समय इन्हें एक पढ़ा-लिखा मूर्ख ही समझा था। मैंने यह सोचकर इन्हें अनुमति दी थी कि इनके जैसे बहुतेरे पड़े हैं, जो कसौटी पर कसे जाने पर भाग खड़े होते हैं। मुझे कहना चाहिए कि मैं इनमें विश्वास नहीं करता था। लेकिन अब मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ कि इनके प्रयोग बहुत सफल हुए हैं। मेरे विचारों में भी इन्होंने भारी परिवर्तन कर दिया है और आज अपने अंत:करण में मुझे यह ध्वनि सुनाई पड़ रही है कि प्राथमिक पाठशाला के इस पुराने ढर्रे का अब शीघ ही अंत होगा। हमारे जैसे शिक्षकों और अधिकारियों को अब राजी-खुशी रुखसत लेकर नई पीढ़ी के शिक्षाशास्त्रियों और कल्पनाशील विचारकों को अपना स्थान सौंप देना चाहिए।"

और भी बहुत कुछ है, जो याद आ रहा है। असल में शिक्षक, बालक और बाल साहित्य इन तीनों की त्रिवेणी बहुत महत्त्वपूर्ण है। बच्चे को अच्छी शिक्षा देने का रास्ता ही यह है कि उसे अच्छा बाल साहित्य पढ़ने को दिया जाए, या अच्छी कहानियाँ सुनाई जाएँ। तब शिक्षा भार नहीं बनती, एक रुचिकर खेल हो जाती है। बच्चा हर घड़ी उससे सीखता है, हर बात से सीखता है। इससे न सिर्फ बालक का संपूर्ण विकास होता है, बल्कि समाज में एक सुंदर और रचनात्मक बदलाव नजर आता है।

कुल मिलाकर 'दिवास्वप्न' बच्चों की शिक्षा से जुड़े हर व्यक्ति के लिए एक अत्यंत पठनीय पुस्तक है। आँखें खोल देनेवाली। मैंने तो इसे एक ही बैठक में पढ़ा है और सुबह शुरू करने के बाद, शाम तक खत्म करके ही छोड़ा। इसे पढ़ने के बाद ह्रदय में एक अलग तरह का आह्लाद, एक अनोखी खुशी की लहर तैरती रही। यह एक बढ़िया पुस्तक पढ़ लेने की गहरी तृप्ति ही तो थी। इसके साथ ही बरसों पहले स्वयं हम लोगों ने एक साल तक श्रमिक बस्ती में 'पहला कदम' नाम से स्कूल चलाया था, उसकी याद फिर से ताजा हो गई। बच्चों को कहानियाँ-कविताएँ सुनाते हुए खेल-खेल में पढ़ाई-लिखाई का आनंद क्या होता है, यह हम लोगों ने खुद महसूस किया था।

गिजुभाई की 'दिवास्वप्न' पुस्तक पढ़ते हुए उस स्कूल के सभी बच्चों के चेहरे आँखों के आगे बरबस तैरने लगे। वे झुग्गी-झोंपड़ी के बच्चे थे, पर इतने अच्छे और प्रतिभावान कि हम लोग दंग थे। उन्हें रंग और ड्राइंग बुक्स दी गईं, तो उन्होंने ऐसे सुंदर और मनमोहक चित्र बनाए कि देखकर हम अचरज में थे। कल्पना की उड़ान उनमें कम न थी। इसी तरह उन्हें घर और आसपास के परिवेश पर कुछ लिखने के लिए कहा गया, तो उन्होंने बड़े अलग ढंग से अनुभव लिखे। छोटी-छोटी बातें, लेकिन मर्म

को छू लेनेवाली। इसलिए कि उन्होंने किताबों से ज्यादा जीवन के खुले विद्यालय में शिक्षा हासिल की थी। गरीबी ने उन्हें प्यार और हमदर्दी की सीख दी थी। उनमें बहुत कुछ जानने की इच्छा थी, साथ ही अपनी बात कहने की भी।

ये ऐसे बच्चे थे, जो स्कूलों में अध्यापकों के कठोर व्यवहार से डरकर भाग खड़े हुए थे। पर हमारे खुले स्कूल में तो वे बड़ा रस लेते थे और बड़े उत्साह से आया करते थे। कपड़े बहुत साधारण, मैले भी, पर उनके दिल बड़े उजले थे और आँखों में चमक थी। यह मैंने महसूस किया, मनुजी ने भी। उन्हें एक पुरस्कार मिला, जिसकी राशि वे लेना नहीं चाहते थे, और उसी से यह स्कूल चला। हमारे जीवन का यह यादगार अनुभव था, जिसे 'दिवास्वप्न' पढ़कर मैंने एक बार फिर बड़ी शिद्दत से याद किया।

और भी बहुत कुछ है, जो याद आ रहा है। असल में शिक्षक, बालक और बाल साहित्य इन तीनों की त्रिवेणी बहुत महत्त्वपूर्ण है। बच्चे को अच्छी शिक्षा देने का रास्ता ही यह है कि उसे अच्छा बाल साहित्य पढ़ने को दिया जाए, या अच्छी कहानियाँ सुनाई जाएँ। तब शिक्षा भार नहीं बनती, एक रुचिकर खेल हो जाती है। बच्चा हर घड़ी उससे सीखता है, हर बात से सीखता है। इससे न सिर्फ बालक का संपूर्ण विकास होता है, बल्कि समाज में एक सुंदर और रचनात्मक बदलाव नजर आता है।

यह कितने आनंद की बात है कि गिजुभाई बधेका ने बरसों पहले यह स्वप्न देखा था और इसका महत्त्व दिनोदिन बढ़ता जाता है। बहुत दिनों बाद मैंने कोई ऐसी पुस्तक पढ़ी, जिसने मुझे बहुत गहरी तृप्ति दी और मन में नए विचारों की खिड़कियाँ खुलने लगीं। लगा, शिक्षा बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण के साथ-साथ एक अच्छे समाज की भी आधारशिला है। पर वह शिक्षा सुंदर और रचनात्मक ढंग से क्यों नहीं दी जा सकती? शिक्षा के भारी तामझाम की बजाय, सीधे-सादे और सरस ढंग से पढ़ाई क्यों नहीं हो सकती?

गिजुभाई का लिखा बहुत कुछ है, जिनमें उनकी रोचक कहानियों का गुलदस्ता भी शामिल है, पर अगर आपने वह सब नहीं पढ़ा, तो यह एक ही पुस्तक ही उन्हें अनंत काल तक आपके दिल में बसाए रखेगी।

सा अ
५४५, सेक्टर-२९,
फरीदाबाद-१२१००८ (हरियाणा)
दूरभाष : ०९९१०८६२३८०

दीपावली

कविता

• आर.सी. शुक्ल

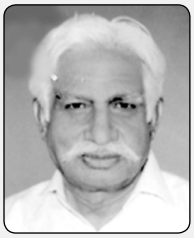

सुपरिचित कवि। अंग्रेजी-हिंदी दोनों भाषाओं में कविता लेखन। अब तक अंग्रेजी कविताओं की दस पुस्तकें एवं हिंदी की पाँच पुस्तकें प्रकाशित।

दीये जलाओ
दीवाली का
शुभ दिन आया है

प्रमुदित थे नगरी के वासी
वापस आए हैं,
राम धर्म का ध्वज फहराने
मंगल लाए हैं,
भरत धन्य हो गए
हर्ष का वैभव आया है।

भीतर का तम दूर भगाओ
पुण्य प्रयासों से,
तुम हो गए प्रबुद्ध
जियोगे निर्मल साँसों से,
सभी तुम्हारे स्वजन
बताओ कौन पराया है।

अंधकार अज्ञान
रोशनी ज्ञान हुआ करती,
भक्तों को पाकर ही
धरती धन्य हुआ करती,
खोलो बंद कपाट
निराला अवसर आया है।

खील, खिलौने, मधुर बताशे
फूलों की खुशबू,
दूर कहीं भयग्रस्त खड़ी है
दुविधा की बदबू,
कठिन तपन के बाद
सुहाना मौसम आया है।

दीवाली की रात
तुम्हें समझाने आई है
उजियारे में खूब नहाओ
कहने आई है
हो जाओ निर्भीक
तुम्हारा संबल आया है।

सा अ
एम.आई.जी. ३३, रामगंगा विहार, फेस-२,
मुरादाबाद-२४४१०५ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४११६८२७७७

बशीरा

• अंजीव अंजुम

वह गाँव का अंतिम छोर। खाली चौड़ी जगह। जिसके बीचो-बीच विशाल बरगद का छायादार पेड़। विशाल भुजाओं को सँवारे। उसके मोटे तने को घेरे, जमीन से उठा था एक छोटा सा चबूतरा। इसी चबूतरे पर मोहल्ले भर के लोगों का जमघट लगा रहता। यहीं देश दुनिया और गाँव भर की बातों का सिलसिला चलता। वहीं बगल में गाँव की बड़ी पोखर। जिसमें धोबी पाड़ा के धोबी कपड़े धोते। पशु पानी पीते। उस बरगद के आश्रय में कुछ झोंपड़ियाँ भी थीं। बेतरतीब और बेपरवाह सी। एक दूसरे से जुड़ी हुई, लेकिन कुछ खफा सी। ये आठ-दस झोंपड़ी वाले कच्चे मकान थे। गाँव का यह छोटा सा कोना सक्का जाति के लोगों का आवास था।

जिनमें उन गरीब मजदूरों का अपना-अपना कुनवा मेहनत-मजदूरी करके अपना भरण-पोषण करता। खेती तो थी नहीं। बस इन्हीं टूटे-फूटे मकानों के अलावा कुछ गायें एवं बकरियाँ ही इनकी दौलत थीं। और इसी दौलत द्वारा कभी-कभी एक दूसरे के घर में छोटा सा नुकसान कर देने पर सुबह से ही इस मोहल्ले में हो-हल्ला शुरू हो जाता। और गाँव का यह कोना उस हो-हल्ला से तब तक गुंजायमान रहता, जब तक कि वहाँ के आदमी व औरतें मजदूरी पर और बच्चे बकरियों व गायों को चराने न ले जाते। उन मजदूरों का यही काम था।

लेकिन इन सबसे अलग था 'बशीरा'। अँधेरे से भरी एक कोठरी, उसके आगे टूटा हुआ छप्पर और उसके एक कोने में पड़ी खाट का वह मालिक था। बदरंग सा कंबल, दरी, लिहाफ और पुराना फटा गद्दे ही उसकी कुल जमापूँजी थी। उसकी दौलत खुले में पड़ी थी। उसकी कोठरी को हमने कभी भी खुला हुआ नहीं देखा। और न कभी दीपक की रोशनाई उस आलय से फूटती देखी। सिर्फ देखा तो अंधकार, बस अंधकार। बस इसी अंधकार का मालिक था बशीरा।

बशीरा की उम्र करीब पचपन-साठ होगी। पतले-लंबे और गोरे मुँह पर काले भूरे अनसुलझे बाल, जिन्हें देखकर लगता था कि उनका कभी कंघी से सामना ही नहीं हुआ होगा। झुर्रियों पतले भरे माथे के तले छोटी-छोटी भौंहों के नीचे भूरी बरोनियों से सजी हलकी काली-भूरी आँखें, जिनमें अनंत गहराई तक शांति-ही-शांति पसरी रहती। गालों के सपाट तट पर छितरी हुई बुढ़ापे का परिचय कराती खामोश सलवटें। और उन

सुपरिचित साहित्यकार। गीत, गजल, कविता, दोहा, कहानी, लघुकथा, संस्मरणात्मक रेखाचित्र आदि अनेक विधाओं में ९५२ कृतियाँ प्रकाशित। राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी, जयपुर की त्रैमासिकी 'ब्रजशतदल' एवं साहित्य मंडल श्रीनाथद्वारा की पत्रिका 'हरसिंगार' का सहयोगी संपादन कार्य। अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

सलवटों के बीच उभरी पतली नाक, जिसके अंतिम छोर पर अतिव्यापक हुए नकुए किसी छोटी गुफा का अहसास कराते। इसी गुफानुमा नाक के नीचे लालिमा के आवरण को खो चुके पतले होंठों से दो पंक्तियाँ बनती नजर आतीं। लेकिन होंठों पर पसरी सूखी वीरान सी खामोशी, उस चेहरे की पुस्तक के पृष्ठ का कोरापन प्रकट कर देती।

कभी-कभी बशीरा के होंठों से कुछ शब्द ऐसे छिटकते, जैसे मटर की सूखी फलियाँ चटककर दानों को लुटा देती हैं। और लूटने वाले उन बिखरे शब्दों को लूटकर बशीरा से हँसी-मजाक करते। लेकिन बशीरा था कि कानों के पट बंद कर बुत बना बैठा रहता।

ईद या किसी अन्य शुभ अवसर पर बने गाढ़े कत्थई भूरे रंग के कुरते-पायजामे और एक धारियों वाली हरी पीली स्वाफी को कंधे पर डाले, पाँवों में प्लास्टिक के जूते पहने कंधों को झुकाए ही अकसर मैंने उसे देखा था। चलते समय उसकी निगाहों से ज्यादा उसके कदम रास्ते को खोजते थे। सर्दियों में किसी काश्तकार द्वारा दी गई गरम जर्सी पहने और हाथ के बने गरम मोटे लिहाफ को वह सिर पर पगड़ीनुमा बाँधकर जब दिखाई देता तो ऐसा लगता, जाने कितना बोझा बशीरा ने अपने सिर पर बाँधा है।

यों तो बशीरा के सिर पर कुछ भी वजन नहीं था। न घर-गृहस्थी का, न खेती-क्यारी, न ढोर-पशुओं का। पत्नी थी नहीं। शादी के कुछ वर्ष पश्चात् वह घर-गाँव छोड़कर दो बेटों को लेकर शहर चली गई थी। कहते हैं बशीरा ने उन्हें काफी रोका था, लेकिन वह गाँव की जिंदगी को बदतर मानती थी। उसके अरमान ऊँचे थे। वह नहीं रुकी। वह चली गई थी बशीरा को अकेला छोड़कर। बस उसी दिन वह बशीरा के जीवन

का सारा रंग, सारी उमंग भी ले गई थी। तब से बशीरा के मन में एक अंधकार भर गया था और उसी अंधकार में मानो बहुत दूर कुछ ढूँढ़ने की अभिलाषा रहती थी उसकी।

वह मुरझा गया था। उसकी दृष्टि, वाणी और हाथ-पाँवों में शिथिलता बस गई थी। वह कभी-कभार काम-धंधा करता था। उसे देखकर लगता था कि वह मन का राजा था या राजा का मन था उसका। किसी के रोकने से रुकता नहीं था। किसी के कहने से करता नहीं था। न मस्ती का मालिक था और नहीं किसी दीवानगी का अंदाज था उसका। हाँ, कई बार उसको देखकर लगता था, जैसे कि उसका कुछ खो गया है। और वह उसे ढूँढ़ने में लगा है किसी संत की तरह। उसने अपना हाल कभी किसी को बताया नहीं, लेकिन मालूम तो सभी को था। जीवन का सबकुछ तो उसके हाथों से कब का फिसल चुका था। लेकिन बशीरा ने तो उस फिसले हुए को कभी उठाना नहीं चाहा। या यह लगता था कि बशीरा कभी उस स्थिति से उठ नहीं पाया।

वे अनजान फिजाँ में अपनेपन की खुशबू ढूँढ़ने आए थे। न किसी से राम-राम न किसी से दुआ सलाम। गाँव की सभ्यता के सामने आज एक शहरी सभ्यता उतरी थी। दो नदियों की धाराओं का मिलन था। जहाँ सुल्तान, उसके पत्नी-बच्चे उन मेहमानों से लिपट पड़े। गले मिलने और हँसी-मजाक के साथ स्वागत करने लगे, वहीं उस शहरी सभ्यता ने हल्की हँसी के साथ एक शिष्ट अभिवादन किया। लेकिन वहाँ तो लूट मची थी खुशियों की। भतीजों ने चाचा-चाची व भाइयों के गले लगकर इस खुशी को दुगुना बढ़ा दिया था। गाँव वाले भी अनजानी खुशी पर उल्लसित थे। इस गरमी में हवा भी ठंडी बहने लगी थी। बरगद की पत्तियाँ भी खनक उठी थीं। हर ओर खुशी का आलम था।

बशीरा का जीवन जैसा था, वैसी ही उसकी दिनचर्या थी। कब जागा, कब सोया, कब कहाँ खाया यह तो शायद उसे भी पता नहीं होता था। बशीरा को कहीं भी कोई भी बैठा लेता, चाय, रोटी, सब्जी या जो कुछ बन पड़ता, कोई उसे खिला देता। और बशीरा बिना कुछ बोले, बिना किसी आशीर्वाद दिए उस भोजन को खत्म कर एक फकीर की तरह आगे बढ़ जाता। कई बार ताऊजी ने उसे अपने खाने में से खाना खिलाया था। उसे गुड़ बहुत पसंद था। ताऊजी उसे गुड़ जरूर देते थे। वह गुड़ की मिठास का खाने के अंत तक आनंद लेता था। उसे देखकर मुझे लगता था कि बशीरा को मिठास की आस है। और वैसे भी मीठे पल को कौन पाना न चाहेगा। हरेक मन हर पल एक मीठास की आस रखता है। और शायद ऐसी ही कोई आस बशीरा के मन के किसी कोने में पल रही होगी।

और यह आस खत्म हुई करीब पच्चीस वर्ष पश्चात्। उस दिन मोहल्ले में रौनक थी। जैसे बे-समय ही दीवाली आ गई हो सभी के घरों में। खास तौर पर बशीरा के उस टूटे-फूटे आश्रय पर। जाने कितने वर्षों बाद आज बशीरा की उस कोठरी के आगे लिपाई हो रही थी। सुबह-सुबह बकरियों को एक पुराने बाड़े में बाँध दिया गया था। बरगद के नीचे खुली जगह पर सुबह से ही पानी का छिड़काव किया जा रहा था। उस छोटे चबूतरे पर कुछ ठीकठाक खाट व पलंग डाल दिए गए थे। अपनी चमक न्योछावर करती एक-दो कोरी चादरें और टूटे-फूटे नाम के तकिए भी उस पलंग की शोभा बढ़ा रहे थे।

ऐसा लगता था, जैसे किसी का शादी समारोह है। अड़ोसी-पड़ोसी में यह नजारा आपसी चर्चा का विषय बन गया था। कुछ देर बाद बात तीर की तरह निकलकर आई। बशीरा का भाई सुल्तान बता रहा था, "आज बशीरा ते मिलिबै याकी घरवारी अरु बालक आय रहे हैं। बालक तो अब बड़े आदमी है गए हैं। गाड़ी-घोड़ा, मकानहू ले लीन्हे हैं। भैया! अच्छी नांय लगे। कैसेहू देखनी तो पड़ेगौ ही। घर कौ मामलो है।"

लेकिन इन सब से अलग बशीरा पर कोई चमक नहीं थी। उसके मन में किसी प्रकार का कोई उल्लास या कोई उमंग नजर नहीं आई। लगता था या तो वह जीवन के रंगों की पहचान भूल गया है। या शायद उसके मन में ही कोई खुशी का सागर उछालें ले रहा है, जिसे वह बाहर निकालना ही नहीं चाहता। हाँ, आज उसको नया कुरता-पायजामा पहनने को जरूर मिल गया था। लेकिन जूते उसके वही थे खस्ताहाल। जहाँ सभी की आँखों में इंतजार था, वही बशीरा की आँखें शांति का दृश्य छिपाए थीं।

इंतजार की घड़ियाँ खत्म हो गईं। कुछ समय बाद सफेद दूधिया चमचमाती कार उस खाली स्थान पर आकर रुकी। बच्चों का हो-हल्ला उमड़ पड़ा। घरों के दरवाजों पर औरतें और युवतियों के घूँघट से नेत्र उस नजारे को लूटने आ खड़े हुए। हर नजर उस गाड़ी पर टिकी थी। कैसे हैं बशीरा के साहबजादे। कैसी है बशीरा की वह समझदार घरवाली!

गाड़ी का दरवाजा खुला। उसमें से दो गोरे-चिट्टे युवा उतरे। वे शक्ल-सूरत से किसी अफसर से कम नहीं लग रहे थे। साथ में चमचमाते सलवार-कुरते में बुजुर्ग महिला भी उनके साथ थी। उन्होंने गाँव के इस अल्हड़ माहौल पर ज्यादा गौर नहीं किया। वे अनजान फिजाँ में अपनेपन की खुशबू ढूँढ़ने आए थे। न किसी से राम-राम न किसी से दुआ सलाम। गाँव की सभ्यता के सामने आज एक शहरी सभ्यता उतरी थी। दो नदियों की धाराओं का मिलन था। जहाँ सुल्तान, उसके पत्नी-बच्चे उन मेहमानों से लिपट पड़े। गले मिलने और हँसी-मजाक के साथ स्वागत करने लगे, वहीं उस शहरी सभ्यता ने हल्की हँसी के साथ एक शिष्ट अभिवादन किया। लेकिन वहाँ तो लूट मची थी खुशियों की। भतीजों ने चाचा-चाची व भाइयों के गले लगकर इस खुशी को दुगुना बढ़ा दिया था। गाँव वाले भी अनजानी खुशी पर उल्लसित थे। इस गरमी में हवा भी ठंडी बहने लगी थी। बरगद की पत्तियाँ भी खनक उठी थीं। हर ओर खुशी का आलम था।

लेकिन इस खुशी से परे था तो केवल 'बशीरा'। उसके चेहरे पर अब भी वही बुझापन था, एक सुप्त दीपक सा। वह इस स्नेह-मिलन का दर्शक मात्र था। तब एक शीतल मंद बयार इस खुशी में उसे समेटना चाहती थी, लेकिन वह था कि उसे पकड़ना तो क्या, छूना भी नहीं चाहता था। लगता था, वह उस हवा से काफी दूर जा चुका है।

उस दिन सुबह का सूरज उमंग-उल्लास से भरा था। तभी तो मोहल्ले भर में धूम मची थी। सेवइयाँ और पकवानों से उन खास मेहमानों का स्वागत हुआ। गाँव के लोगों ने भी उत्सव में साझा किया। बशीरा के बेटों का पूरा साक्षात्कार हुआ। इतने वर्षों तक कहाँ रहे? क्या किया? अब कैसे आने का प्रयोजन हुआ? तब पता चला कि बेटे अपने बाप को ले जाने के लिए आए हैं।

गाँव वालों ने बेटों से काफी जानकारी ली। बेटों में भी वही अदा थी, जो माँ में थी। उन्हें अपनी कामयाबी और धन पर गुमान था। तभी तो बेटों ने गाँव और बिरादरी के सामने ऊँची बातों में कह दिया था, "यहाँ तो नरक का जीवन है, चाचा को इसीलिए लिवाने आए हैं।"

इस बात पर सभी कुछ एक दम ठहर सा गया। हँसी-खुशी के उफान पर शांति की चादर आ गिरी। सभी के मुँह पर ताले से लग गए। कोई उनका क्या जवाब देता। परिवार के मामले में कोई कैसे बोलता?

लेकिन तभी हाथ-पैरों में तीव्रता बढ़ाते हुए चबूतरे से उठकर शांत बैठा बशीरा उन सभी के बीच में आ खड़ा हुआ। टूटी, कँपकँपाती और लड़खड़ाती आवाज में वह चिल्ला उठा, "मैं कहूँ नाँय जाऊँगौ। मैं कहूँ नाँय जाऊँगौ। मैं यही पे रहूँगौ। मेरो जेई घर है। जेई है जेई है। मैं कहूँ नाँय जाऊँगौ।"

बशीरा के चेहरे पर उस समय उग्रता मिश्रित भय फैला था। उसकी आँखें फटी हुई थीं। बोलते हुए मुँह से लार गिर पड़ी थी। उसने गले में पड़ी स्वाफी को कसकर पकड़ लिया था और उसके पाँवों में कंपन दिखाई दे रहा था। वह इतना कहकर वहाँ रुका नहीं, सीधा अपनी कोठरी में जा घुसा।

बशीरा की इन बातों ने उस आँगन में उतरी उल्लास भरी रंगोली पर मानो राख डाल दी हो। बेटे और बीबी के मन के पंखों को उसने एक झटके में काट दिया था। सब वहीं का वहीं रह गया। सारे अरमान चढ़ी धूप की तरह शाम ढलते-ढलते ढल गए। शाम को गाड़ी और गाड़ीवाले हारे पहलवान की तरह चले गए। सुबह की रंगत शाम के चूल्हों में सुलगकर धुआँ बनकर हवा में जा मिली। बशीरा की कोठरी पुनः अपने अंधकार को सहेज और समेटकर बंद हो गई। और उसके बाद बशीरा पुनः सुप्त हो गया।

वह आज भी अनंत में विस्फरित आँखों से कुछ ढूँढ़ता है। कुछ पाने की लालसा रखता है। टकटकी लगाए जाने कितने समय तक कुछ अनुभव करता है। उसे देखकर लगता है, दूर विजन में कोई उससे बातें करता है। मैं कई बार उससे पूछना चाहता था, लेकिन सब जानते हुए पुनः चुप हो जाता था, क्योंकि मैं जानता था और आज भी जानता हूँ कि बशीरा का जवाब सिर्फ और सिर्फ खामोशी है, कुछ और नहीं।

साअ

राधा ओल्ड के पीछे, सादाबाद रोड,
राया, मथुरा-२८१२०४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ७०१७३२८२११

लघुकथा

मान

● अशोक गुजराती

मिसेज मेहरा बहुत परेशान थीं। उनकी काम वाली बाई कई बार समझाने के बावजूद ग्यारह-साढ़े ग्यारह को ही आती थी। यह उनका खाना बनाने का समय था। वह बीच में आकर रुकावट पैदा कर उन्हें झुँझला देती थी।

एक दिन वह लगभग बारह बजे आई। श्रीमती··· न, न···मिसेज मेहरा बेहद गुस्से में थीं। आते ही उसको डाँटा। वह बोली, अभी ग्यारह ही तो बजे हैं। मिसेज मेहरा अपने-आपको काबू में न रख सकीं। उसका कान उमेठकर चेहरा दीवार घड़ी की ओर घुमाया—'झूठ बोलते शर्म नहीं आती तेरे को··· देख, देख घड़ी देख!'

मिसेज मेहरा को बाद में यह जरूर लगा कि उसका कान उमेठकर उन्होंने कुछ गलत कर दिया है। लेकिन उनका ऐसा स्वभाव बन गया था कि उनसे कोई चूक हो जाने पर वह स्वयं ही रूठ जाती थी। पति और बच्चे उन्हें मना लेते थे। वरना तो उन्हें अनंत अवधि तक होंठ सिलकर रखने का खूब अभ्यास था। वे खुद कभी अपनी भूल स्वीकार कर क्षमा-प्रार्थी नहीं होती थीं। धीरे-धीरे उनकी यह आदत बन गई थी, बल्कि पत्थर की लकीर।

महीने के शेष दिन आते-जाते रहे, पर उन्होंने उस काम वाली से पूरा अबोला रखा। वह भी हो सकता है, डर के मारे चुपचाप आती और अपना काम कर चली जाती। अंत में उसने अपना मेहनताना माँगा। लेकर बस इतना बोली, मैं कल से पंद्रह दिनों के लिए गाँव जा रही हूँ··· और चली गई।

मजबूरी में दूसरी एक बाई को लगाया। वह ठीक काम नहीं करती थी। किसी तरह उसे तीस दिन निभाया। पति के जोर देने पर मिसेज मेहरा ने उनसे पहले वाली बाई को फोन लगवाया। उसने साफ कह दिया कि उसके पास कई घर हैं, वक्त नहीं है, वह नहीं आ सकती।

साअ

ई-१३१७, भैरों रेजीडेंसी कनाटिया रोड,
मीरा रोड (पूर्व), जिला थाणे-४०११०७ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ०९९७१७४४१६४
ashokgujarati07@gmail.com

इमली का चटकारा

● उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

डॉ. योजना साह जैन के लघु कथा-संग्रह 'इमली का चटकारा' को हाथ में लेते ही सर्वप्रथम तो यही समझ में आया कि संभवत: सभी कहानियाँ की केंद्र बिंदु नारी ही है, क्योंकि पुस्तक का कवर स्वयं में इतना आकर्षक व आत्म-व्याख्यात्मक है। यूँ तो इस कहानी-संग्रह में १२ कहानियाँ हैं, परंतु कुछ कहानियाँ महिलाओं पर केंद्रित हैं और उनके जीवन की मूलभूत समस्याओं को उजागर करती हैं। अधिकतर कहानियाँ तो वास्तव में दिल को छू जाने वाली हैं, जैसे—'आंदोलन' जो डॉ. योजना ने आंदोलन के संबंध में अपने शब्दों की क्या खूब बाजीगरी दिखाई है, जो कि क़ाबिले-तारीफ है। इतने सधे हुए शब्दों का चयन किया है इस कहानी में कि क्या कहना!

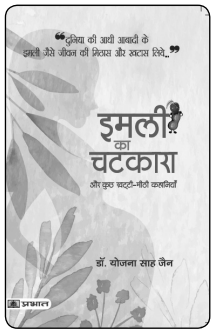

ऐसा कटाक्ष किया है डॉ. योजना ने कि जितनी भी प्रशंसा उनके शब्दों के चयन और वाक्य विन्यास की जाए, वह कम है। बहुत ही कम लघु-कथाओं में यह दिखता है। इसी कहानी में ग़रीबों के सपनों की भी बड़ी सुंदर व्याख्या की है : पहले गाँव में बाढ़ आई थी और यहाँ लोगों के पागलपन की बाढ़, जो एक बार फिर उसका सबकुछ खा गई"

मैंने भी कहानी की समीक्षा करते हुए एक दोहा कहा—

बेचारा मजदूर है, उसका यही नसीब।
आंदोलन के नाम पर, पिसता रहा गरीब॥

सभी कहानियाँ विषयवस्तु से भरपूर हैं। सभी में किसी-न-किसी ऐसी समस्या को चित्रित किया है डॉक्टर योजना ने, जो आज आजादी के ७० से अधिक वर्षों के बाद भी इनके समाधान की बाट जोह रही हैं। ये हमें लगभग हर एक कहानी में पढ़ने को मिला। चाहे आंदोलित करती हुई कहानी 'आंदोलन' हो या एक जरूरत का बखान करती हुई सशक्त कहानी 'लेडीज बाथरूम' हो। 'वही पुरानी चिट्ठी' आज भी एक पुराने समय की व्यथा कहती प्रतीत होती है।

लेडीज बाथरूम' : यह झकझोर कर रख देने वाली एक सशक्त कहानी है। शीर्षक को पढ़कर ऐसा बिल्कुल नहीं लगा था कि कहानी ऐसे भी लिखी जा सकती है।

दरअसल यह समस्या कहानी की नायिका कविता की ही नहीं अपितु निम्न श्रेणी में काम करने वाली हजारों-लाखों महिलाओं की है। लेकिन क्या इस समस्या की तरफ इतनी गहराई से किसी का ध्यान गया है। कहानी 'लेडीज बाथरूम' यह सोचने के लिए मजबूर कर देती है ।

डॉ. योजना ने समाज की इस बुराई की भर्त्सना करते हुए इतनी ख़ूबसूरती से एक कहानी के रूप में इस समस्या को चित्रित करने का अथक प्रयास किया है। वाक़ई इस बोल्ड कथ्य के लिए डॉ. योजना बधाई के साथ-साथ शाबाशी की हक़दार भी हैं।

प्रतीकात्मक कहानी 'इमली का चटकारा' के अंतिम पड़ाव में तो जिंदगी ही चटकारे लेती हुई प्रतीत हुई। पारिवारिक बिंब को बखूबी प्रस्तुत करने में डॉ. योजना की योजना क़ाबिले-तारीफ है।

'इमली का चटकारा' में चटकारा कम और अंतिम चरण में एक सार्थक बग़ावत देखने व चखने को मिली।

खट्टी मिट्ठी इमलियाँ, खाती हूँ मैं खोज।
चटकारा है जिंदगी, लेती हूँ में रोज॥
जब दुनिया थी बेरहम, तब कंचन मजबूत।
जीकर उसने दे दिया, सच्चा एक सबूत॥

सभी १२ कहानियाँ एक मँजी हुए लेखिका की तरह डॉ. योजना ने लिखी हैं और ऐसा नहीं लगता कि यह उनका पहला कहानी-संग्रह है। डॉ. योजना के इस कहानी-संग्रह को पढ़ने के बाद ऐसा एक बार भी नहीं लगा कि यह लेखिका का पहला कहानी-संग्रह है।

सबसे बड़ी खूबी यह रही कि हर कहानी का अंत बहुत ही सकारात्मक संदेश देते हुए किया गया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि डॉ. योजना की योजना पहले से 'हैपी एंडिंग' करने की ही रही होगी।

समय के अनुसार समाज में नई-नई समस्याएँ उजागर होती हैं और उन समस्याओं को कवि व लेखक अपने शब्दों से इसे जनमानस के ध्यान में आज भी रचनाओं के माध्यम से ही लाते हैं। चाहे वे प्रेमचंद द्वारा रचित 'निर्मला' हो या जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित 'कामयाबी' हो या फिर महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'यामा' हो—सभी में समकालीन विषयों, समस्याओं को उजागर करती हुई कहानियाँ थीं।

मुझे लगता है कि डॉ. योजना की लेखनी में एक शक्ति है, जिसे वे कालांतर में अधिक निखार सकती हैं और वर्तमान की अनेक समस्याओं को अपने शब्द विन्यास से लघु-कहानियों के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकती हैं।

डॉ. योजना को इस प्रथम लघुकथा-संग्रह के लिए मेरी हार्दिक बधाई व उनके निरंतर प्रगति के लिए शुभेच्छा। वे निरंतर लिखती रहें और उनकी लेखनी सदैव सशक्त रहे तथा उनकी रचनाएँ पाठकों को प्रभावित व प्रेरित करती रहें।

5000 से अधिक पुस्तकों का विस्तृत सूची-पत्र निशुल्क पाने के लिए लिखें—
पोस्टेज फ्री
हेल्पलाइन नं. 7827007777
प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2015 प्रकाशक
4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
☎ 011-23257555
E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✣ Website : www.prabhatbooks.com ✣ www.facebook.com/prabhatprakashan

महामारी में चुनाव

● गोपाल चतुर्वेदी

अपनी-अपनी अनिवार्यता है। प्रसिद्ध विद्वान् पी. लाल का मानना है, कि गतिशील और जीवंत प्रजातंत्र में चुनाव होने ही होने वरना महामारी के दौरान चुनाव करवाने को सोचता ही कौन? वह भी तब, जबकि सब जानते हैं कि इस लाइलाज महामारी में बिना मास्क और उचित दूरी के संक्रमण होने की सर्वाधिक संभावना है? तभी तो देश के नेता भीड़ जुटाने की स्वयं की क्षमता को अपनी 'शान' समझते हैं? यों इनमें एक समान गुण हैं, जो इन्हें नेतृत्व के देवत्व से जमीनी इनसान के समकक्ष बनाता है। यह सब बेहद बड़बोले हैं। इन्हें पाँच सौ की भीड़ कभी पाँच हजार की लगती है, कभी पचास हजार की। पी. लाल के अनुसार इस बड़बोलेपन ने देश को बचाया है। नहीं तो चुनावी संक्रमण इतना व्यापक होता कि महामारी अब तक पता नहीं कितनी जनसंख्या को चपेट में ले चुकी होती? पी. कुमार का मत है कि 'महामारी का मानसिक प्रभाव, शारीरिक से कहीं अधिक है। तभी तो जाने-माने शास्त्रीय गायक जब 'ओम' का आलाप लगाते हैं तो उनके मुँह से ऑक्सीजन निकलता है। जब अयोध्या में कोई भक्त जय सियाराम का उद्घोष करता है तो कुछ-कुछ 'रैमडेसिविर' का स्वर सुनाई पड़ता है।'

हम पी. लाल की राय से अधिकतर सहमत हैं। सिर्फ हमारा विचार है कि यदि चुनाव कुछ समय के लिए टाल दिए गए होते तो बेहतर रहता। हमारी प्रजातांत्रिक प्रतिबद्धता से पूरा विश्व परिचित है। महामारी के महाकाल में चुनाव करवाना कौन देश की ऐसी प्राथमिकता थी कि इसके बगैर गुजारा नहीं होता या मुल्क की नाक कट जाती? जब चुनाव की पराजय से नेता की नाक सही सलामत है तो उनके न होने से देश की नाक को क्या फर्क पड़ता है? ऐसे पी. लाल मानें न मानें, हमें कभी कभी गंभीर संदेह होता है कि हमारे नेताओं की नाक शरीर का स्थाई अंग न होकर, निकाली-लगाई, जा सकती हैं। अन्यथा तो अबतक वह इतनी कट-छँट गई होती कि उसके दो छिद्रों के अलावा शायद ही कोई अन्य अवशेष बचता! संभव है कि ऐसे महानुभाव नासिकाओं का कोई भंडार घर पर रखते हैं और वक्त-जरूरत घिसी-पिटी नाक को नई से बदल लेते हैं। तभी तो वह दावा करने में समर्थ हैं कि चुनावी जीत-हार से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता है। इस संदर्भ में उनका वक्तव्य भी है, 'प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में यही तो फायदा है कि एकतंत्र से उलट, जनतंत्र में जीत-हार लगी रहती है। जनता सत्ता से नाखुश हुई तो विरोधियों को अवसर देने से क्यों चूके? इसीलिए जनतंत्र हमेशा जनमत के सहारे है।'

कुछ नेता चुनावी मौकों पर जनता को जनार्दन निरूपित करने से भी बाज नहीं आते हैं। यह उनकी विनम्र स्वीकारोक्ति है। इन्होंने इसी जनता को चुनाव के पहले 'कचरा' माना है। घर के सामने यही उस के दर्शनार्थ आते तो वह कभी मीटिंग में व्यस्त रहते, कभी पद की जुगाड़ में। अब इन्हीं नेताओं को इसी कचरे में कन्हैया नजर आते हैं। अब वह दर्शन देते नहीं, दर्शन करने पैदल निकलते हैं। लोकतंत्र की यही खूबी है। इसके चलते कब कोई बिना सीढ़ी अहम के आसमान पर चढ़े, कब जमीन पर टपके, कहना कठिन क्या, असंभव है।

राजनेता शायद संसार का सबसे आशावादी व्यक्ति है। वह अभी हाल ही में हारा है और आज फिर से अपने हवाई किले बनाने में लग गया है। कैसे और क्या किया जाए कि जीते नेता की छवि धूमिल हो? कैसे जनता का विश्वास उस पर से हटे? कौन सा दुष्प्रचार का उसकी छवि पर असर होगा? कैसे सिद्ध किया जाए कि वह न व्यवहार से प्रजातांत्रिक है न अपने सोच से? हार के बाद पहले सप्ताह से पराजित दल इस जुगाड़ में भिड़ता है कि विजयी पार्टी को कैसे पछाड़ा जाए? क्या राज्य में हालात इतने बदतर हैं कि राष्ट्रपति शासन की कोई गुंजाइश है? कैसे हालिया विजय को पराजय में तब्दील किया जाए?

ऐसे नेता भूलता है कि चुनाव के तत्काल बाद इस प्रकार के प्रयास व्यावहारिक नहीं हैं। जाने क्यों, चुनाव के समय उसके दल ने ऐसा माहौल बनाया था कि विजय उनके ही दल की होगी। केंद्रीय मंत्रियों से

लेकर मुख्यमंत्री व प्रधानमंत्री तक ने, वहाँ प्रचार करने में, कोई कसर नहीं छोड़ी। सबने मिल-जुलकर स्वयं को आश्वस्त कर लिया कि जीत तो उनकी ही होनी है। दुर्भाग्य से जनता ने अपने वोट से उनका सारा आत्मविश्वास ध्वस्त कर दिया। अब परिवर्तन के लिए पूरे पाँच वर्ष का समय है। तब तक न जाने कितने राज्यों मे चुनाव हों और केंद्र में भी। क्या सत्ता दल को चिंता है कि इस पराजय का उसके भविष्य पर क्या विपरीत प्रभाव पड़ेगा? कहीं राज्य का यह नेता इतना महत्त्वपूर्ण बनकर न उभरे कि विपक्ष के नेतृत्व की कमान कहीं वह ही न सँभाल ले? मुमकिन है कि वह इस आकलन से राज्य के नेतृत्व के पंख वह अभी से काटने की कोशिश में लग गए हैं? किसी भी सत्तादल के लिए विपक्षी एकता एक खतरनाक संभावना है, विशेषकर, महामारी की परिस्थिति में जब शासक दल से जनता कोई खास प्रसन्न नहीं है, उलटे नाराज है। क्या यह महामारी की दूसरी और घातक लहर आने के पूर्व दवा या जरूरी ऑक्सीजन की उपलब्धि की योजना नहीं बना सकते थे? क्या तब अपनी पीठ ठोकना इतना महत्त्वपूर्ण था कि यह यही करते रहे और संसार भर को उपलब्ध संसाधन सप्लाई कर वाहवाही लूटते रहे? पी. लाल का कहना है कि इसमें ऐसे महानुभावों को क्या दोष देना? यह केवल इनसानी प्रवृत्ति है। हाँ, इससे इतना जरूर साबित होता है कि यह टैगोर या महात्मा गांधी ऐसे महापुरुष नहीं हैं। इन्हें अपनी महानता का आभास ही नहीं है, वह इसे दूसरों पर लादने से भी नहीं हिचकते हैं। कौन कहे, गांधी-टैगोर को भी यह अहसास रहा होगा पर उन्होंने हमेशा एक सामान्य इनसान के समान व्यवहार किया। क्या पता, उनके व्यक्तित्व को यही महान बनाता है। यों उनका कृतित्व भी उनकी महानता का साक्षी है। पूरा देश उनकी महानता से परिचित है। उसे जताने की उन्हें कोई जरूरत भी नहीं है।

ऐसी घातक हरकतें किस कोड या इशारे से संपन्न होती हैं, इससें शंकालु ज्ञानी भी अपरिचित है। बस उसने अपनी 'शंका' जता दी, वह भी शिष्यों से। उन्होंने इसे प्रचारित कर दिया तो इसमें उसका क्या कुसूर? यदि इस विषय में उसे अपने विचार व्यक्त करने होते तो वह लेख लिखना या टी.वी. की तमाम चर्चाओं में भाग लेता। सच्चाई तो यह है कि वह सोचने में भी असमर्थ है कि जनता की चुनी हुई सरकार ऐसी जन-विरोधी इरादे रख सकती है? शंकालु विद्वान् ने यह भी साफ कर दिया कि उसने सरकार पर घटिया आरोप नहीं लगाए हैं। सरकार के विरुद्ध दुष्प्रचार में उसकी भूमिका कतई नहीं है। बुद्धिजीवी पत्रकारों से 'ऑफ दि रिकॉर्ड' यह भी कहता है कि उसने भी चुनाव संबंधी इस तरह की अफवाहें सुनी हैं, पर यह कतई विश्वास योग्य नहीं है।

विद्वान् जन्मजात शंकालु होते हैं महामारी को लेकर कुछ विद्वान् अपनी विचारधारा व व्यक्तिगत निष्ठा के कारण अधिक ही शंकालु हो गए हैं। फिलहाल वह इस विषय पर लेख आदि नहीं लिख रहे हैं, पर अपने मौखिक प्रचार में लगे हैं। शिष्यों को समझा रहे हैं कि महामारी-काल में चुनाव कोई दुघर्टना नहीं है, न यह प्रजातंत्र के प्रति अतिशय लगाव का द्योतक है। उलटे, यह जान-बूझकर उठाया गया, एक सोचा-विचार कदम है। रैली, भाषण, मीटिंग आदि होंगी। इसमें कितने ऐसे होंगे जो मॉस्क पहनेंगे या एक-दूसरे से समुचित दूरी बनाएँगे? संक्रमण फैलाने का यह सबसे बड़ा अवसर होगा। संक्रमण के पश्चात दो ही विकल्प संभव है, या तो व्यक्ति को चिकित्सा सुविधाएँ मिलें या वह चल बसे। महामारी के दौरान ऑक्सीजन व दवाओं का अभाव एक ऐसा तथ्य है, जो जगजाहिर है। महामारी-निरोधक, एक साधन, सब का वैक्सीनेशन है। इधर तो उसका भी अभाव महसूस हो रहा है। लोग जाते हैं, कतारों में लगते हैं और टीका न उपलब्ध होने से लौट जाते हैं। संक्रमण की संभावना और बढ़ जाती है। शंकालु विद्वानों का निष्कर्ष है कि कहीं यह सब शासकीय हरकतें जनसंख्या-नियंत्रण का माध्यम तो नहीं है? सरकारी इरादों को भाँप पाना कोई आसान है क्या? लाशों पर जीमना गिद्धों का स्वभाव है, चीलें यों ही मँडराती हैं, कौए काँव-काँव की कॉन्फ्रेंस करते हैं। उनके मन में क्या है सब जानते हैं। पर इंसानी गिरगिट कब रंग बदल ले किसे पता है? ऐसे निर्णय अधिकतर लिखित नहीं होते हैं। कौन फाइल पर यह तथ्य दर्ज कर अपनी खुद की फाँसी का फंदा तैयार करेगा?

इससे शंकालु बुद्धिजीवी ने एक तीर से दो शिकार किए हैं। उसने एक तो स्पष्ट कर दिया है कि सरकार में ऐसे काम के निर्णय फाइलों पर नहीं लिये जाते हैं। लिहाजा, इस विषय में साक्ष्य खोजना संभव नहीं हैं। ऐसी घातक हरकतें किस कोड या इशारे से संपन्न होती हैं, इससें शंकालु ज्ञानी भी अपरिचित है। बस उसने अपनी 'शंका' जता दी, वह भी शिष्यों से। उन्होंने इसे प्रचारित कर दिया तो इसमें उसका क्या कुसूर? यदि इस विषय में उसे अपने विचार व्यक्त करने होते तो वह लेख लिखना या टी.वी. की तमाम चर्चाओं में भाग लेता। सच्चाई तो यह है कि वह सोचने में भी असमर्थ है कि जनता की चुनी हुई सरकार ऐसी जन-विरोधी इरादे रख सकती है? शंकालु विद्वान् ने यह भी साफ कर दिया कि उसने सरकार पर घटिया आरोप नहीं लगाए हैं। सरकार के विरुद्ध दुष्प्रचार में उसकी भूमिका कतई नहीं है। बुद्धिजीवी पत्रकारों से 'ऑफ दि रिकॉर्ड' यह भी कहता है कि उसने भी चुनाव संबंधी इस तरह की अफवाहें सुनी हैं, पर यह कतई विश्वास योग्य नहीं है। दरअसल, बुद्धिजीवी चिंतित हैं। सरकार के रावण से अधिक सिर है, कौन कहे सैकडों हों? हजारों-लाखों हाथ हैं। जाने कब शंकालु विद्वान् पर देश-द्रोह की कौन सी धारा लगा दे, जेल में ठूसने के लिए। वह जेल जाने से डरता है। टॉयलेट में बिना चुना हुआ अखबार पढ़े, उसे कब्ज होने का गंभीर खतरा है। जेल के डॉक्टरों का क्या भरोसा? वह गलत इलाज ही कर दें। तब उसे कौन बचाने आएगा?

फिर भी पत्रकारों को सामने पाकर वह खासा मुखर हैं। 'देखिए, यह हमारा निजी विचार नहीं है पर इतना जरूर है कि गाँव-गाँव में चुनाव कराकर क्या उत्तर प्रदेश की सरकार ने कोई समझदारी का प्रदर्शन किया है? जो महामारी अभी शहरों तक सीमित थी, उसे गाँव-गाँव भेजने से फायदा क्या है? वहाँ कौन इसका निदान करेगा, बिना ऑक्सीजन और दवाओं के? वहाँ तो अस्पताल भी नहीं है। किसान अन्नदाता है। उन्होंने सिर्फ देश का पेट भरा है। यह कोई ऐसा अपराध है, जिसके लिए शासक उन्हें मृत्युदंड देने पर उतारू है? हमसे कई विचारक इस प्रकार की चर्चा करते हैं। क्या हम चुप बैठें? हम उन्हें आप तक प्रेषित कर मन का बोझ हलका कर रहे हैं। हम ऊपरवाले से मनाते हैं कि ऐसा न हो। यही आशा हमें आप से भी है। आप भी सोचिए कि इस गलत निर्णय का निराकरण कैसे हो? इसी में हमारा, आपका, अन्नदाताओं, सबका कल्याण है। हम नास्तिक हैं। फिर भी प्रभु से हमारी यही प्रार्थना है।'

दुखद है कि देश में कुत्सित राजनीति ने ऐसे पाँव पसारे हैं कि उसने जन-कल्याण को भी नहीं बख्शा है। इधर जानें जा रही हैं, उधर सरकार की टाँग-खिंचाई हो रही है। क्या किसी को अनुमान तक था कि महामारी की दूसरी लहर ऐसी घातक और भयावह होगी? सोशल मीडिया पर समर्पित बुद्धिजीवियों के बिना सिर-पैर के ऐसे प्रचार से क्या प्राण-रक्षा की संभावना है?

ऐसा लगता है कि ऊपरवाले ने उनसे कानाफूसी कर दूसरी लहर की सूचना दी हो। तब से उन्होंने विषेशज्ञों की कई काल्पनिक कमेटियाँ बनाकर दूसरी लहर के आक्रमण की चेतावनी दी है। सबका लक्ष्य प्रधानमंत्री का दफ्तर है जहाँ इन्हें जान-बूझकर दफन कर दिया गया? इतना ही नहीं वह यह आरोप भी लगा रहे हैं कि जब इस आपदा की आशंका थी तो दूसरों की सहायता द्वारा विश्वप्रिय बनने की क्या आवश्यकता थी? दुघर्टना के बाद सभी चौकन्ने होते हैं, विशेषकर बुद्धि के कीड़े जिन्हें बुद्धिजीवी भी कहते हैं। वह भूलते हैं कि आज संसार हमारी मदद के लिए इसी कारण आगे आया है।

पिछले शासकों ने देश की स्वास्थ्य-प्रणाली के लिया क्या किया कि अब हाय-तौबा मचाने में जुटे हैं? रही-सही कसर उन चरित्रहीन इंसानी गिद्धों ने पूरी कर दी है जिन्हें हर आपदा पैसा कमाने का अवसर है। ऑक्सीजन है, दवा है पर जमाखोरों और कालाबाजारियों ने उस पर कब्जा जमा रखा है। इसी प्रवृत्ति के इनसानी शैतान अस्पतालों में भी हैं।

वंशवादी वारिश की जनसेवा के नाम पर सिर्फ उपलब्धि है, उससे कायाकल्प की क्या उम्मीद है? पर किसी भी बहाने सत्ता हथियाने की कोशिशों में अनुचित क्या है? जनता समझे न समझे, वह खुद को सत्ता परिवार का पुश्तैनी आका समझता है। कुरसी की संभावना से वह भी प्रफुल्लित हैं। उनके साथी भी इसी विचार के हैं। कौन कहे, अंधे के हाथ बटेर लग ही जाए? ऐसों को महामारी और संक्रमण से क्या लेना-देना? उनके अंतर में सिर्फ सत्ता का आकर्षण है? सत्ता हथिया कर, वह राष्ट्रीय भ्रष्टाचार का, एक और अध्याय, लिखने को प्रस्तुत ही नहीं, कटिबद्ध भी हैं। इतने वर्षों के सत्ताहीन समय की वसूली भी तो करनी है।

सा.अ.
९/५, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक **साहित्य अमृत** के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 600120110001052 IFSC-BKID 0006001 में **साहित्य अमृत** के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर **साहित्य अमृत** का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. 011-23257555, 8448612269 अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

तांका कविताएँ

● रामनिवास मानव

जो आँगन में
बंदूकें उगाएँगे,
वे एक दिन
अपनी बंदूकों से
आप मारे जाएँगे।

कहाँ है गीता!
नाप रहे सच को
अब तो वही,
है हाथों में जिनके
यहाँ झूठ का फीता।

हावी है झूठ
अब तो सच पर,
सच है यही।
अब झूठ जो कहे,
बस, वही है सही।

सच को सच
यहाँ जिसने कहा,
हर युग में
न्याय के नाम पर
कितना-कुछ सहा।

है नया दौर,
हो रहा सबकुछ
और से और।
विस्थापित है सत्य,
नहीं आस्था को ठौर

जब भी झाँका
है अंत:करण में
मैंने अपने,
मंदिर-गुरुद्वारे
मिले भीतर सारे।

बाहर नहीं,
है सर्वस्व अपने
भीतर बाबा!
क्या मंदिर-मसजिद,
और क्या काशी-काबा।

मन मंदिर;
दीपक जो नेह का
भीतर जले,
रहे फिर अँधेरा
नहीं उसके तले।

कितने फंडे,
सत्ता के कई-कई
हैं हथकंडे।
कभी हाथ जोड़ती,
चलाती कभी डंडे।

संसद् गूँगी
और सत्ता बहरी,
नेता भी मौन।
जन-मन की पीड़ा
फिर समझे कौन?

लोकतंत्र का
है अजब तमाशा।
मौज उड़ाते
बगुले-गिद्ध-कौवे,
खाते खीर-बताशा।

नापे जा रहे
अब हंसों के गले।
दूसरी ओर
सब्सिडी की खातिर
खाते कौवों के खुले।

कहने को ही
यहाँ लोकतंत्र है।
चलाते उसे
सत्ता के हथकंडे
या पुलिस के डंडे।

चुप चौराहे,
गुमसुम सड़कें,
स्याह चेहरे।
चौपालों में भय के
निशान हैं गहरे।

भरे पड़े हैं
अब बौने-कुबड़े
दरबारों में।
जारी खेल घिनौना
वही सरदारों में।

सुपरिचित लेखक। इनकी रचनाओं पर अब तक सत्तर से अधिक शोधार्थी शोध कर चुके हैं। दस अनूदित कृतियाँ प्रकाशित। देश-विदेश की डेढ़ सौ से अधिक संस्थाओं द्वारा हिंदी-साहित्य में विशिष्ट योगदान हेतु विभिन्न पुरस्कारों और सम्मानों से सम्मानित।

घूम रहे हैं
धर्म-ध्वजा उठाए
कई पाखंडी;
धरा नाम भले ही
बाबा, स्वामी या दंडी।

कहाँ नहीं हैं!
ऊँची-ऊँची दीवारें
हर कहीं हैं।
रूप, रंग, वेश की,
जाति, धर्म, देश की।

खिंची दीवारें,
घर-आँगन अब
बँटे हैं सारे।
टूटे रिश्तों के धागे,
स्वार्थ सबसे आगे।

जब भी खोला
अतीत का एल्बम,
उमड़ आईं
कुछ यादें सुख की,
कुछ बातें दु:ख की।

दिवस ढला;
करने जब बैठा
मैं जोड़-घटा,
तब क्या-कुछ पाया?
सिर्फ शून्य बकाया।

५७१, सेक्टर-१, पार्ट-२,
नारनौल-१२३००१ (हरियाणा)
दूरभाष : ८०५३५४५६३२

आंता

• विभा नायक

बहुत दूर तक वह मेरा पीछा करती रहीं। उनकी छुअन मेरे रोंगटे खड़े कर रही थी, मेरे कदमों को लड़खड़ा रही थी। एक पल को मुझे यों भी लगा, जैसे वह मेरी पीठ को चीरकर मेरे दिल तक पहुँच गई हों और उन्होंने मेरी धड़कन को अपनी गिरफ्त में ले लिया हो। पर अफसोस धड़कन तब भी नहीं रुकी, और तेज हो गई, जैसे वह भी भाग जाना चाहती हो उन आँखों की छुअन से।

उफ्फ! भला दो निगाहों में इतनी ताकत कैसे हो सकती है कि वह भागते कदमों को भी अपनी गिरफ्त में ले लें। जरूर वे जादुई थीं, वरना मैंने ऐसी आँखें इस जन्म में तो नहीं देखी थीं। सवालों की एक लंबी फेहरिस्त थी उन आँखों में। ठीक है, पर मुझसे क्या चाहती थीं वह? क्यों इस तरह मुझे असहज बना रहीं थी? क्यों मेरा पीछा कर रही थीं वे और मैं? मुझे क्या हो गया था उन आँखों की छुअन से कि मैं और मेरी आराम से चलती साँस ठहर सी गई थी कुछ देर के लिए?···

कुछ तो था जो मेरी समझ के परे था। पर था जरूर कुछ ऐसा जो शायद मेरी जिंदगी का ही नहीं मेरी आत्मा का भी अंश था···वह रात यों ही अँधेरों में रोशनी तलाशते हुए गुजर गई और वह आँखें रात भर मेरे दिमाग में चक्कर लगाती रहीं, पर नतीजा कुछ नहीं था।

मैंने पढ़ा था कि अनगिनत भाषाओं में से चिरस्थायी कहें तो सिर्फ एक भाषा होती है, और वह है स्पर्श की भाषा, छुअन की भाषा। देह जिसे स्पर्श करती है उसका भाव, उसका गुणधर्म आत्मसात् कर लेती है। मस्तिष्क भूल जाता है, पर देह नहीं भूलती। देह समाप्त हो जाती है, पर उसकी स्मृतियाँ नहीं मरतीं। उसकी भाषा नहीं मरती। हर जन्म में उसकी युगों पुरानी, जन्मों पुरानी छुअन अपने चिरस्थायी होने का असर दिखा ही देती है। कभी उँगलियों की बनावट में, कभी लहजे में और कभी गहरी निगाहों में। देह की भाषा है देह को छोड़कर कहाँ जाएगी? कभी दर्द के रूप में, कभी कंपन के रूप में देह संकेत करती है बहुत कुछ। अतीत और वर्तमान तो क्या भविष्य तक का संकेत दे देती है देह। पर इससे पहले कि

अब तक 'कैद आवाजें' (यौनकर्मी महिलाओं के जीवन पर आधारित), दो पुस्तकों में सह-संपादक। Shephalikauvach शीर्षक से ब्लॉग लेखन। आकाशवाणी के विदेश सेवा प्रभाग से निरंतर वार्त्ताओं का प्रसारण। २०१३ में 'उदंत मार्तंड सम्मान' से सम्मानित। संप्रति श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय में सहायक प्रवक्ता।

हम कुछ समझें बहुत कुछ घट जाता है। उन आँखों की छुअन को मुझे ऐसे ही लगा, जैसे मेरी देह सदियों से जानती है बहुत अच्छे से पहचानती है। हाँ, मेरा मस्तिष्क जरूर उन आँखों को भूल चुका था, पर उन आँखों का गहरा स्पर्श शायद उसे अब तक याद था, तभी तो वह खुद भी बेचैन था और मेरी पूरी देह को बेचैन कर रहा था।

हर बात अपनी माँ से शेयर करने वाली मैं नहीं समझ पा रही थी कि किसी से भी क्या कहूँ। कुछ मेरी भी तो समझ आए कि यह सब क्या हो रहा है आजकल मुझे। राह चलते न जाने कितने लोगों से सामना होता है। पर मस्तिष्क में अब तक कोई ऐसे नहीं अटका था। उसकी वे आँखें, गहरी निगाहें जैसे मेरे मन को कुरेद रही थीं। मुझसे कुछ कह रही थीं, पर मैं नहीं समझ पा रही थी कुछ भी। बहुत असहज सी स्थिति थी यह। ···सबकुछ समझ के परे था। वह व्यक्ति जिसकी आँखों में मैं गुम हो चुकी थी, न जाने कौन था, पर उसकी आँखें मुझसे परिचय स्थापित कर रही थीं।

हफ्ता बीत गया, महीना और बीतते-बीतते पूरे दो साल बीत गए। घटना कुछ पुरानी हो गई। पर वे आँखें नहीं बीतीं। मेरे मस्तिष्क में वह वैसे ही छाई हुई थीं, जैसे उस दिन जब वह मुझसे पहली बार मिली थीं और जब मैं उनसे भाग जाने की नाकाम कोशिश कर रही थी। पर सच तो यह है मेरा मस्तिष्क उनमें कोई संबंध खोज रहा था और मैं उन्हें खोज रही थी अपने विगत में, अपने अतीत में। पर हासिल कुछ नहीं था सिवाय शून्य के।

पर उस दिन वो मुझे फिर मिलीं। मेरे घर के पास। जाने क्या था उनमें अजीब सा पैनापन कि लगा कि अंदर तक कुछ गहरे चुभ गया हो, अचानक ऐसा लगा जैसे सब कुछ घूम रहा है। घर, आकाश, जमीन सबकुछ। और फिर एक गहरा काला अँधेरा मेरी आँखों में समा गया। और फिर···मुझे कुछ याद नहीं।

जब आँखें खुलीं तो देखा, बिस्तर पर हूँ और सिर माँ की गोद में। वे मुझे सहला रही थीं। मुझे होश में आया देख वह दुलारकर मुझसे बोलीं, सोना, मेरी गुड़िया, मेरी रानू···क्या हो गया था तुझे? देखो, सब कितने परेशान हो गए थे और आंता! सोना, मेरी गुड़िया तुझे आंता···कहते-कहते माँ सुबक पड़ीं और कमाल है पापा ने भी कुछ नहीं कहा, बस माँ का हाथ अपने हाथ में ले लिया। कहते भी कैसे कुछ। दुनिया के स्ट्रांगेस्ट पापा आज खुद भी तो सुबक रहे थे···बच्चों की तरह।

माँ, क्या हुआ, आप लोग ऐसे क्यों व्यवहार कर रहे हो। हुआ क्या? मुझे नहीं समझ आ रहा था कि यह सब हो क्या रहा है? माँ ने अपने आँसू पोंछते हुए कहा, कुछ नहीं सोना। सब ठीक है और मेरी ओर बगल में रखा दूध का गिलास बढ़ाते हुए बोलीं, चलो, उठो दूध पी लो। कुछ नहीं खाया तुमने कल से। माँ जब ज्यादा दुलार करती हैं तो सोना, रानू और भी न जाने क्या-क्या कहती हैं मुझे? तब मुझे लगता है कि जरूर कुछ बात है कि माँ इतना प्यार जता रही हैं। इसीलिए कुछ आशंकित होते हुए मैंने कहा, माँ यह सब क्या है आप लोग ऐसे परेशान मत हुआ करो। कुछ नहीं हुआ, मुझे मैं ठीक हूँ। और आप न हँसते रहा करो बस।

ओके। हाँ, ठीक है। अब दूध पी लो प्रवचन हो गया हो तो। अबकी पापा बोले बनावटी आवाज में कड़कपन के साथ, जो कि साफ पता चल रहा था कि बनावटी है। अंदर तो कुछ और ही चल रहा था उनके, जो वह छिपा नहीं पा रहे थे। पी रही हूँ पापा कहते हुए मैंने गिलास मुँह से लगा लिया। मैं जानती थी किसी के पेट में भी अन्न का दाना तक नहीं जाने वाला जब तक मुझे न खिला-पिला दें। उफ्फ! प्रेम भी क्या चीज है। कितना असहाय बना देती है इनसान को। अब माँ-पा को ही देख लो। उनकी खुशी मुझ पर ही आश्रित है। मेरा चेहरा देखकर ही उनका दिन तय होता है। माँपा मैं भी आपको बहुत चाहती हूँ। आप मेरी जिंदगी हो माँपा। पर मैं बहुत बुरी बेटी हूँ माँपा। बहुत रुलाती हूँ न आपको···दिमाग में यही सब चल रहा था कि जैसे एक झटका सा लगा और दिमाग में बिजली सी कौंध गई।

मैंने दूध का गिलास एक ओर रखते हुए कहा, मैंने आंता को देखा माँ···माँ मैंने आंता···कहते हुए मेरा गला रुँध गया। वह आंता···उसकी आँखें, माँ वे आंता ही है···माँ···माँ ने सुबकते हुए मुझे अपने सीने से लगा लिया और बोलीं सोना तुझे सब याद आ गया···मैं माँ के सीने से लगी बिलख रही थी। दो वर्ष पुराना वो अतीत, जो मेरे मस्तिष्क में जमकर बैठा था, आज मेरी आँखों से पिघल-पिघल के बाहर आ रहा था। गहरे अंदर से उठी कोई बहुत दर्दीली सी चीज, जैसे मेरे गले से बाहर आ जाना चाह रही थी। पर अफसोस वो दर्दीली चीज, जिसे शायद कलेजा कहते हैं, बाहर नहीं आया। कुछ बाहर आया तो वह अतीत, वह निगाहें, जिनसे अनजाने ही···मैं न जाने कब से भाग रही थी। उफ्फ, वह आँखें···वह गहरी निगाहें मेरे आशु, मेरे एंटोन की थीं, जिनमें मेरी पूरी दुनिया समाई हुई थी। मेरी सुबह, मेरी शाम, मेरी पूरी जिंदगी, जैसे उन भूरी आँखों के घेरों में खो गई थी वही आँखें, जो मेरे दो साल के निक्कू के चेहरे में झलकती थीं, उफ्फ उनसे मैं कैसे दूर हो गई।

आह···मेरी आत्मा का अंश, मेरी जान का टुकड़ा, मेरा मासूम सा निक्कू अपनी तोतली आवाज में आशू अपने प्यारे पापा को आंता कहकर बुलाता था। जब मैं आशू को उसकी बातों में छिपी कहानियों की वजह से एंटोन कहती थी, तब निक्कू एंटोन कहने की कोशिश में 'आंता' कहता और तब मैं और आशू बहुत हँसते···और फिर मैंने भी आशू को आंता कहना शुरू कर दिया था एंटोन की जगह, जब मैं आशू को आंता कहती तो मेरा सोना, मेरा छोटा सा निक्कू बहुत हँसता और फिर एक गहरा अँधेरा···निक्कू अपने पापा की उँगली पकड़कर जा रहा है···पार्क···पर वह अपने आंता के साथ लौटा क्यों नहीं···मुझे···अपनी माँ को बिना कुछ कहे वो चला कहाँ गया? उसका आंता कहाँ था, जब मेरा छोटा सा निक्कू झूले से गिर गया था। आह···वह पैना दृश्य जबकि निक्कू अपने आंता के हाथों में हमेशा के लिए सो गया था, मेरे मस्तिष्क और आँखों में क्या जबान तक में जम गया था···और···और मैं और उसके आंता उसे···उसे नहीं जगा पाए! निक्कू जिसकी आँखें बिल्कुल अपने आंता जैसी थीं, कहाँ चला गया अचानक ऐसे··· ? जिंदगी के वह दो वर्ष जिन्हें मैं भुला बैठी थी अपनी पूरी तकलीफ के साथ मेरी जिंदगी में फिर से लौट आए थे।

अब से कुछ क्षणों पहले अपने माँपा को अपने लिए दुखी होता देख मैं सोच रही थी कि प्रेम इनसान को असहाय बना देता है। पर नहीं, प्रेम केवल इतना ही नहीं करता। वह अगर करने पर आए तो व्यक्ति को विक्षिप्त तक बना डालता है।

मैंने महसूस किया कि मेरी हथेलियों को किसी ने अपनी हथेलियों में छुपा लिया है। अपनी गहरी आँखों में ढेरों समुंदर समाए वह आशू था, पर अफसोस उसकी आँखों में मेरा आंता नहीं था।

मकान नं. १४९, गली नं. ४,
उत्तरांचल एन्क्लेव,
बुराड़ी, दिल्ली-११००८४
दूरभाष : ७६८३०२६९२८

हिंदी बालसाहित्य : चुनौतियाँ, संभावनाएँ और भविष्य

● सुरेंद्र विक्रम

अब के बच्चे बड़े सयाने, गाते हैं टी.वी. के गाने।
उन्हें न भाते दूध-बताशे, चॉकलेट के बिना रुआँसे।
अब न खेलते कोई कंचे, उन्हें चाहिए सिर्फ तमंचे।
नहीं कबड्डी अथवा कुश्ती, लिखना-पढ़ना आती सुस्ती।
अब बूझो 'क्विज' तो हम मानें, अब के बच्चे कितना जानें।
अब के बच्चे नहीं हैं भोले, अब के बच्चे जगत् टटोलें।
कंधे पर बिस्तर औ' झोले, साइकिल ले गिरि-वन में डोलें।

—डॉ. प्रभाकर माचवे

ज्यादा नहीं सिखाओ हमको, हम भी तो कुछ कर सकते हैं।
तुम बुजुर्ग हो राह दिखाई, बहुत-बहुत शुक्रिया तुम्हारा।
लेकिन अपने पैरों के बल, चलने का अधिकार हमारा
नहीं सहारा अब हमको दो, हम भी आखिर चल सकते हैं।

—गोपाल कृष्ण कौल

आज के बच्चों के बारे में कही गई उपर्युक्त पंक्तियों में आज का सच उजागर हो रहा है। देखने-सुनने में यह पंक्तियाँ भले ही भयावह लग सकती हैं, मगर बच्चों की बदलती सोच ने अभिभावकों को इस सच को स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया है। इक्कीसवीं शताब्दी के बच्चे न तो इतने सीधे और सरल हैं कि उन्हें आसानी से बहलाया जा सकता है और न ही वे माता-पिता, बड़े-बुजुर्ग और अभिभावकों की हर बात को आँख मूँदकर स्वीकार करने के हिमायती हैं।

ऐसे बदलते परिवेश में, बदलते बच्चों के लिए बालसाहित्य लिखना भी बहुत बड़ी चुनौती है। ऊपर से मीडिया ने बच्चों को गूगल से गुगली करने की पूरी छूट दे रखी है। राष्ट्रीय बालभवन, नई दिल्ली की एक संगोष्ठी में तत्कालीन निदेशक डॉ. मधु पंत ने कहा था—

"यदि हम बच्चों की सोच, उनके विचारों और उनकी मानसिकता को ध्यान में रखकर चिंतन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि आज का वक्त बालसाहित्यकारों के लिए बहुत बड़ी चिंता और चुनौती का है, क्योंकि उनके पास बागडोर है संसार भर के बच्चों में चेतना जगाने की और उन्हें उचित दिशा प्रदान करने की। आज आवश्यकता है कि हर बालसाहित्यकार की सोच को आंदोलित किया जाए, उन्हें घिसे-पिटे मूल्यों, अंधविश्वासों, परंपराओं और सामंती मूल्यों के मापदंड से थोड़ा हटकर सोचना पड़ेगा। अगर ऐसा नहीं किया गया तो हम अपनी भावी पीढ़ी को वह सूरज नहीं दिखा पाएँगे, जो उनके विकास के लिए आवश्यक प्रकाश और ऊर्जा प्रदान करेगा।"

सुपरिचित लेखक। अब तक २४ पुस्तकें प्रकाशित, एनसीईआरटी सहित विभिन्न राज्यों तथा अनेक प्राइवेट प्रकाशकों की हिंदी की पाठ्यपुस्तकों में कविताएँ संकलित। विश्व हिंदी सम्मेलन में भारत की ओर से बालसाहित्य का प्रतिनिधित्व, उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ से दो बार तथा अन्य ४० संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित।

उपर्युक्त कथन बदलते परिवेश को देखते हुए इस अर्थ में और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि आज का बच्चा समस्याओं से जूझ रहा है। माता-पिता ने अपनी बड़ी-बड़ी आकांक्षाओं को उनके ऊपर लादकर और मुश्किलें खड़ी कर दी हैं। ऐसे में बच्चों की संवेदना को समझना और उनकी पीड़ा को महसूस करना सार्थक बालसाहित्य सृजन के लिए अपरिहार्य है।

आज एक बहुत बड़ा सवाल हमारे सामने मुँह बाए खड़ा है कि आखिर बच्चा क्या चाहता है? सामाजिक विसंगतियों से जूझता, अकेलेपन का शिकार, बस्ते के बोझ से आक्रांत, विद्यालय तथा परिवार के दो पाटों के बीच में पिसते हुए बच्चे अपना दुखड़ा किसे सुनाएँ? अपने मन की बात किससे कहें? पहले संयुक्त परिवारों में बच्चों को कई तरह की आजादी होती थी। बच्चे अपने मन की भावनाओं को आपस में एक-दूसरे से बाँट लेते थे। आज एकल परिवारों और एक या दो बच्चों की स्थिति ने इस पर विराम लगा दिया है। बच्चों के मन की दबी हुई आकांक्षाएँ अनायास दम तोड़ रही हैं।

अपने लंबे बालसाहित्य सृजन के दौरान बच्चों से रूबरू होते हुए मैंने जिन चुनौतियों को महसूस किया है, उनमें सबसे पहले नए और पुराने के संक्रमण की चुनौती है। आधुनिकता की चकाचौंध में भटके हुए बच्चों को सही रास्ता दिखाने की चुनौती है, तेजी से बदलती सूचना क्रांति, बाजारवाद का प्रभाव, मीडिया की घुसपैठ तथा अभिभावकों की

उदासीनता से बच्चे बालसाहित्य से विमुख हो रहे हैं। आज बच्चे कुछ नए की तलाश में है। पुरानी चीजों का मोहभंग उनकी नियति में शामिल हो गया है।

यह गंभीर चिंता की बात है कि इस दौर में बच्चे एकाकीपन के कारण ही बालसाहित्य से कटते जा रहे हैं। उन्हें दस श्रेष्ठ बालसाहित्यकारों के नाम तक याद नहीं हैं, फिर उनसे कैसे आशा की जा सकती है कि वे दस बालकविताएँ या पाँच बालकहानियाँ याद रख सकेंगे। मेरा मानना है कि सार्थक बालसाहित्य बच्चों में ऊर्जा का संचार करता है तथा उन्हें संवेदनशील बनाता है। बालसाहित्य से न जुड़ने के कारण बच्चे संवेदनाशून्य होते जा रहे हैं। घर आए मेहमान का प्रफुल्लित होकर स्वागत करना, उनके पैर छूना, उनके बीच में उठना-बैठना तथा आपस की बातों में शरीक होना जैसी चीजें बाल-सुलभ गतिविधियों का हिस्सा नहीं रह गई हैं।

इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ से ही बालसाहित्य को लेकर नया चिंतन शुरू हो गया था। बीते दो दशकों के बाद अब यह प्रश्न फिर से उठ खड़ा हुआ है कि आज बच्चों के लिए बालसाहित्य का नया स्वरूप क्या होगा? यह सवाल हमेशा से ही तैरता रहा है कि बालसाहित्य सृजन हँसी-खेल नहीं है, यह चुनौती भरा लेखन रहा है। इस चुनौती का सामना करते हुए बालसाहित्य की सोच की दिशा में परिवर्तन भी अपरिहार्य हैं। यह प्रश्न भी बड़ा प्रासंगिक है की बदलता परिवेश और मीडिया का बढ़ता हुआ प्रभाव कहीं हिंदी बालसाहित्य को ही न निगल जाए?

आज मीडिया के बढ़ते हुए चैनल रस्साकशी करते हुए जिस गति से बच्चों को अपनी गिरफ्त में लेते जा रहे हैं, उसे देखते हुए यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि इस सदी में बच्चे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अंधभक्त हो जाएँगे। यह परिस्थिति बालसाहित्यकारों के लिए और कठिन चुनौती भरी होगी। इस खुली चुनौती में बालसाहित्यकारों को अधिक से अधिक प्रभावशाली, प्रेरक और दिशाबोधक रचनाओं का सृजन करना होगा, जिससे बच्चे मीडिया के बढ़ते प्रभाव से मुक्त होकर बालसाहित्य की ओर अपने को केंद्रित कर सकें।

यह प्रश्न भी विचारणीय है कि दस वर्ष की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते बच्चा इतने सारे रक्तरंजित दृश्य, हत्या, मारपीट, अराजकता तथा बलात्कार के दृश्य परोसे गए चैनलों के माध्यम से देख चुका होता है कि उसके सामने आगे के दृश्य बौने नजर आते हैं। ऊपर से नई-नई सूचनाओं का विस्फोट बच्चों पर किस तरह और कितना असर दिखाएगा, यह कहना शायद अभी जल्दी होगी। कुछ भी हो, लेकिन इतना तय है कि ऐसी परिस्थिति में बालसाहित्यकारों को अनायास ही कम समय में बड़े हुए बच्चों को उनकी परिधि में लाकर वास्तविक ज्ञान-चक्षु खोलने होंगे, उन्हें बालसाहित्य की उपयोगिता का आभास कराना ही होगा।

बालसाहित्य सृजन की एक चुनौती और है कि हमें बच्चों से सीधा साक्षात्कार करके यह भी जानना होगा कि बच्चे क्या और किस तरह का साहित्य पढ़ना चाहते हैं। इसका कारण यह है कि अब बच्चों की रुचियों में व्यापक स्तर पर परिवर्तन हुआ है। सुप्रसिद्ध बालसाहित्यकार क्षमा शर्मा का यह सवाल बड़ा महत्त्वपूर्ण है—

"क्या एक ही कहानी या एक ही रचना सब बच्चों के लिए उपयोगी हो सकती है? शायद नहीं, क्योंकि बड़ों की तरह हर बच्चे की रुचि भी अलग-अलग होती है। एक जमाना था—जब ८ साल से १८ साल तक के बच्चों की रुचि एक समझी जाती थी। उनके लिए एक ही रचना ठीक मान ली जाती थी, लेकिन सच तो यही है कि हर बदलता साल बच्चों के लिए रुचियों और सीखने के नए दरवाजे खोलता है। आज दादी-नानी के मुकाबले कहानियाँ तकनीक और एप्स के हवाले हो गई हैं, तो इसीलिए कि पहले की तरह न तो संयुक्त परिवार बचे हैं और न ही माँ-बाप के पास बच्चों को किस्से-कहानियाँ सुनाने का पहले जैसा समय है।"

बीसवीं शताब्दी के अंत तक बच्चों की रुचि के नाम पर कॉमिक्स की भी बहुत भीड़ रही है। प्रकाशकों के तर्क थे कि चूँकि बच्चे कॉमिक्स बहुत पसंद करते हैं, इसलिए उनका धड़ल्ले से प्रकाशन नियमित हो रहा है। मेरा मानना है कि इस भीड़ में कुकुरमुत्ते की तरह जगह-जगह उग आए कपोलकल्पित कॉमिक्स के पात्रों ने हवाई किले बनाकर बच्चों को बहुत दिग्भ्रमित किया है। विदेशी पात्रों की बढ़ती लोकप्रियता से प्रभावित होकर कुछ भारतीय प्रकाशकों ने जो भौड़ी नकल बच्चों के नाम पर परोसी है, उसने समाज में भ्रम-जाल ही फैलाया है। इससे जहाँ एक ओर बच्चों का कोमल मन आहत हुआ वहीं, दूसरी ओर कॉमिक्स की भ्रष्ट भाषा ने उनकी सोच और संवेदना को पंगु बना दिया।

आज भी बालसाहित्य सर्जकों के समक्ष यह चुनौती है कि वह अटपटे और बालमन को प्रदूषित करने वाले कॉमिक्स के आगे बढ़े पैरों में विचारों की ऐसी बेड़ियाँ डालें कि वह भरभराकर गिर पड़े। मुझे यह साझा करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रथम बुक्स, नमन प्रकाशन तथा अमर चित्र कथा ने इस दिशा में सार्थक प्रयास किया है, तथा रोचक भाषा में बच्चों के लिए उपयोगी और उनके आयु वर्ग के अनुकूल चित्रकथाएँ प्रकाशित की हैं।

आज बालसाहित्य के सामने सबसे बड़ा संकट यह है कि जो अच्छा बालसाहित्य लिखा जा रहा है, उसका प्रकाशन कहाँ हो? यह कम चिंता की बात नहीं है कि करोड़ों की आबादी वाले देश में बच्चों के लिए हजार तो क्या एक सौ भी अच्छी बाल पत्रिकाएँ नहीं है। जैसे-तैसे जहाँ और जो बालसाहित्य छप भी रहा है उसमें अनेक अशुद्ध, लयहीन, अतुकांत और शिथिल बालकविताओं का बोलबाला है। अधिकांश बालकहानियों में सपाटबयानी है। लोककथाओं और पौराणिक कथाओं को ही बार-बार घोला जा रहा है।

पिछले दो दशकों में प्राइवेट प्रकाशकों ने हिंदी की कक्षा एक से लेकर आठ तक की अलग-अलग नामों से ढेरों पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित की हैं। इनमें बालसाहित्यकारों की रचनाओं के बल पर करोड़ों का वारा-न्यारा किया है। मगर लेखकों को रॉयल्टी देने के नाम पर प्रकाशक ऐसे बिदकते हैं, जैसे पटाखे में किसी ने आग लगा दी हो।

आज इक्कीसवीं सदी में जी रहे बच्चों के सामने कई तरह के संकट हैं। दृश्य और श्रव्य दोनों माध्यमों के बढ़ते हुए शिकंजे ने उनसे

उनका सहज बचपन तो छीन ही लिया है, ऊपर से कुकुरमुत्ते की तरह उगाए अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों ने खेलने-कूदने की उम्र में बच्चों को तनाव में जीने के लिए मजबूर कर दिया है। ऐसी परिस्थिति में यह बड़ा ज्वलंत प्रश्न है कि बच्चों के लिए बालसाहित्य लेखन कैसा, किस तरह का हो? उन्हें पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त और कैसा बालसाहित्य प्रदान किया जाए, जिनसे एक ओर उनका मनोरंजन हो तथा दूसरी ओर वे अपने भावी जीवन की दिशा तय कर सकें।

एक और ज्वलंत प्रश्न है कि आखिर बच्चे बालसाहित्य क्यों पढ़ें? जब तक ऐसा बालसाहित्य नहीं लिखा जाएगा, जो बच्चों को पंक्तिबद्ध होकर खरीदने के लिए मजबूर करे, उनकी अंतरात्मा तक को आंदोलित करे, तब तक सारी चीजें ख्वाबों में ही पलती रहेंगी। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे भी अपनी चिंता इसी स्वर में व्यक्त करते हैं—

"एक बालसाहित्यकार का स्वयं का चिंतन और उसके विचारों का फलक इतना विस्तृत होना चाहिए कि वह न केवल अपने परिवेश, वरन् समाज के प्रत्येक पहलू से परिचित हो। उसे यह अहसास हो कि आज कौन सा पहलू किस तरह से बच्चों को प्रभावित करता है। बच्चे कहानियाँ केवल इसलिए नहीं पढ़ते कि वे उनका भी और लोगों की तरह मनोरंजन करती हैं। बच्चे कहानियों में केवल आनंद ही नहीं पाते बल्कि अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त होता देखते हैं। कौन है, जो बच्चों को समाज की विसंगतियों से जूझने की ऊर्जा दे सकता है? यह दायित्त्व बालसाहित्यकार का ही है जो अपनी सशक्त रचनाओं से बच्चों में नई चेतना, नई स्फूर्ति ला सकता है।"

बच्चों के लिए लेखन की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि रचनाकार जिस विषय का चयन करें, उसका संबंध सीधा बच्चों से हो। इस दृष्टि से बालसाहित्य के लेखन एवं चुनाव के लिए आवश्यक हो जाता है कि रचनाकर बच्चों के व्यक्तित्व के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का गंभीरता से अध्ययन करें। बालसाहित्य लेखन में बच्चों की मानसिकता, उनकी अभिरुचि, रचनाओं के घटनाक्रमों को समझ सकने की क्षमता आदि का ज्ञान बहुत आवश्यक है। उसमें प्रेम का प्रदर्शन—मानव प्रेम, प्रकृति प्रेम तथा देश प्रेम के रूप में हो एवं क्रोध का प्रदर्शन अत्याचार एवं अनाचार के विरोध के रूप में हो। बालसाहित्य में आतंक, दंड, हिंसा, प्रतिरोध एवं क्रूरता के स्थान पर प्रेम, सहानुभूति, सहयोग एवं कोमलता के उदाहरण मिलने चाहिए, जिसे पढ़कर बच्चों में आत्मसम्मान एवं महत्त्वाकांक्षा की भावना जाग्रत् हो। सौंदर्य भावना के विकास की दृष्टि से बच्चों को मानव तथा प्रकृति प्रेम-संबंधी ही रचनाएँ दी जानी चाहिए।

बाल साहित्य में ऐसे विषयों का प्रतिपादन हो, जो सामाजिक मूल्यों की रक्षा करने वाले हों, जैसे अपराधी को दंड अवश्य मिलना चाहिए। उसमें विविधताओं का होना भी अनिवार्य है, क्योंकि बच्चों की सूचियों में विविधताओं का समावेश रहता है। बच्चों के लिए लेखन में भाषा-शैली का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि बोझिल भाषा और उबाऊ शैली बच्चों को कभी भी रास नहीं आती है। सहज और सरल भाषा से वे कठिन विषयों को भी आसानी से आत्मसात् कर लेते हैं।

बच्चों की बातों को उनकी भाषा में कहना एक कला है। इस कला में यह समाहित है कि कौन सा बच्चा कब, क्या सोचता है, उसके मन में क्या चल रहा है, इस मनोविज्ञान को पकड़ना बालसाहित्यकार के लेखन की कसौटी होती है। अगर बच्चों को उनके बदलाव, अभिरुचि, परिवेश तथा सोच से जुड़ी हुई रचनाएँ दी जाएँगी तो बच्चे उन्हें रुचि से मन लगाकर तो पढ़ेंगे ही, उनसे स्वयमेव जुड़ते भी चले जाएँगे।

बच्चों के लिए उनकी सबसे प्रिय विधा कविता लिखते समय तो इस बात पर ध्यान अवश्य देना चाहिए कि उसकी अभिव्यक्ति मौलिक होनी चाहिए। तुक मिलाने के चक्कर में गलत शब्द या अपशब्द का प्रयोग बिल्कुल नहीं होना चाहिए। कविताओं में वैज्ञानिक विषयों को भी सहज और सरल भाषा में तथा अच्छे ढंग से समझाकर प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे बच्चे आसानी से उसे समझते चलें। आज का बालक वैज्ञानिक युग में जी रहा है, जिसमें यांत्रिकता पूरी तरह से हावी है।

आधुनिक युग के बच्चे अपने मन में भाँति-भाँति तथा नए-नए सपने सँजोए हुए हैं। उनकी नजर में अंतरिक्ष में विस्फोट हो रहा है, वह एक ओर रोबोट की बात करता है, तो दूसरी ओर कंप्यूटर, लैपटॉप और पूरी टेक्नोलॉजी उसके जीवन में जगह बनाए हुए है, ऐसे माहौल में चूहा-बिल्ली, बंदर-भालू, तोता-मैना तथा मौसमी कविताएँ, कपोलकल्पित परीकथाएँ, बासी और उबाऊ कथानक की भूत-प्रेत की कहानियाँ बच्चों को कितनी पसंद आएँगी, यह विचारणीय विषय है।

बच्चों की बातों को उनकी भाषा में कहना एक कला है। इस कला में यह समाहित है कि कौन सा बच्चा कब, क्या सोचता है, उसके मन में क्या चल रहा है, इस मनोविज्ञान को पकड़ना बालसाहित्यकार के लेखन की कसौटी होती है। अगर बच्चों को उनके बदलाव, अभिरुचि, परिवेश तथा सोच से जुड़ी हुई रचनाएँ दी जाएँगी तो बच्चे उन्हें रुचि से मन लगाकर तो पढ़ेंगे ही, उनसे स्वयमेव जुड़ते भी चले जाएँगे।

बालसाहित्य लेखन की लंबी परंपरा को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उसका भविष्य उज्ज्वल है। आज उसकी विकास यात्रा एक शताब्दी को पार कर दूसरी शताब्दी की ओर अग्रसर हो रही है। साहित्य की विभिन्न विधाओं-कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, संस्मरण आदि से बालसाहित्य भंडार भरा पड़ा है, इसके बावजूद और बालसाहित्य की आवश्यकता इसलिए महसूस की जा रही है, क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह बालसाहित्य के माध्यम से भी सामने आना ही चाहिए। बालसाहित्य के उज्ज्वल भविष्य को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है—

१. आज का बालसाहित्य आपसी बोलचाल, सहज तथा मनोहारी भाषा में लिखा जाना चाहिए।

२. बालसाहित्य की विषयवस्तु ऐसी होनी चाहिए, जिसका बच्चों के कोमल मन पर अनुकूल प्रभाव पड़े।
३. विशेष रूप से बाल-उपन्यासों की कथावस्तु में अनावश्यक विस्तार का निषेध होना चाहिए, क्योंकि अनावश्यक विस्तार से बच्चे ऊब जाते हैं।
४. बालसाहित्य का प्रारंभ बच्चों के परिचित जगत् से होना चाहिए। उसकी कथावस्तु तथा पात्रों का चयन ऐसा हो, जिसे जानने में बच्चों को अधिक मशक्कत न करनी पड़े।
५. बच्चों की कहानियों में जिज्ञासा का होना अनिवार्य है, क्योंकि उनमें कौतूहल का स्वाभाविक गुण विद्यमान रहता है।
६. बच्चे वर्तमान परिवेश में जीते हैं, इसलिए उनके लिए बालसाहित्य का वातावरण उसी परिवेश से लिया जाना चाहिए।
७. बाल-रचनाओ में पात्र अगर बच्चे हों तो वे उन्हें अधिक पसंद करते हैं।
८. बालरचनाओं का समापन हमेशा सुखद होना चाहिए तथा उसका कोई-न-कोई उद्देश्य भी होना चाहिए।

अंत में मैं इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि बालसाहित्य की अनेकानेक चुनौतियों के बीच उसकी संभावनाएँ क्षीण नहीं हुई हैं। बालसाहित्यकारों की कई पीढ़ियाँ इसके विकास की साक्षी रही हैं। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे का कहना बिल्कुल सही है—

"आज के बालसाहित्यकार के सामने जो चुनौतियाँ हैं, उनका सामना करने के लिए उसे सक्षम बनना ही पड़ेगा अन्यथा उसके बालसाहित्य लेखन का कोई औचित्य नहीं रह जाएगा। वास्तव में आज के बालसाहित्यकार से जो अपेक्षाएँ हैं, वे भविष्य की वे चुनौतियाँ हैं, जिनका बच्चे सामना करेंगे और हमें उनके उत्तर प्रस्तुत कर, बच्चों को सक्षम और समर्थ बनाना है। यह काम बालसाहित्य लेखकों के साथ उन लोगों का भी है, जो बच्चों के सरोकारों से जुड़े हुए हैं।"

सी-१२४५, एम.आई.जी.
राजाजीपुरम्, लखनऊ-२२६०१७ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०८९६०२८५४७०

पीड़ा की आयु

कविता

● रेणु राजवंशी गुप्ता

सुपरिचित लेखिका। अभी तक दो कविता संग्रह, तीन कहानी-संग्रह, उपन्यास तथा स्तन कैंसर पर एक शोध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। साहित्य के अतिरिक्त समाज-सेवा में पूरी तरह संलग्न।

क्या पीड़ा की भी आयु होती है?
मैंने पूछा रोगी
क्या पीड़ा की भी आयु होती है?
रोगी पीड़ा में भी हँस दिया
क्या पूछते हो भाई?
सिर से पाँव तक पीड़ा-ही-पीड़ा है…
पीड़ा ने पूरे शरीर में

सेंध लगाकर सुरंग बना डाली है।
यह पीड़ा तो मेरे प्राणों
के साथ ही जाएगी।

मैंने पूछा भोगी से…
क्या पीड़ा की भी आयु होती है?
क्या पूछते हो भाई?
पीड़ा तो शरीर का आभूषण है।
प्रेयसी जब छोड़ जाती है,
तो हृदय में शूल दे जाती है।
मदिरा जब उतर जाती है
तो जिगर में पीड़ा देती है।

एक भोग से दूसरे भोग,
की ओर भागता हूँ।
भाई, मैं तो पीड़ा से
पीड़ा का उपचार करता हूँ।

मैंने पूछा योगी से…
क्या पीड़ा की भी आयु होती है?
योगी ने आँखें खोलीं,
तन का तो पीड़ा से पुराना नाता है।
भाई मैं तो इस ओर
ध्यान देता ही नहीं हूँ।
परमात्मा से आत्मा का नाता
जुड़ गया तो
तन से नाता टूट जाता है।

क्या है पीड़ा? कहाँ है पीड़ा?
तो पीड़ा की आयु क्या?

मैंने पूछा प्रभु से…
क्या पीड़ा की भी आयु होती है?
प्रभु थे चपल…उनका अट्टहास
संपूर्ण ब्रह्मांड में गूँज उठा—
भाई, पीड़ा मानव की संरचना है…
पृथ्वी पर उसका वास है।
मैंने तो पीड़ा बनाई ही नहीं…
तो पीड़ा की आयु कैसी?

6070 Eaglet Drive
West Chester, OH-45069 (USA)
renurajvanshigupta@gmail.com

बाल-कथा

दो बालकथाएँ

● कोमल वाधवानी 'प्रेरणा'

मुझे तो चाहिए ही

"आपको जब भी कोई काम पड़ता है तो कामवाली जीजी से या फिर पड़ोस के सनी भइया को बुलाकर करवाती हैं, मुझसे क्यों नहीं करवातीं?" निशू ने कारण पूछा।

"तुम अभी छोटे हो, तुम्हें मार्केट कैसे भेज सकती हूँ।" माँ ने समझाया।

"कभी कहती हो···तू बड़ा हो गया है···कभी कहती हो छोटा।" निशू ने अपनी नाराजगी व्यक्त की।

"तू जब छोटी बहन उन्नू से लड़ता है, तो बोलती हूँ न, तू बड़ा है, मान जा।" सफाई देते माँ ने कहा।

कुछ दिन बीते। पड़ोसी बच्चों को तिपहिया साइकिल चलाते देख निशू ने भी जिद पकड़ ली, "छोटा हूँ तो दिलवा दो साइकिल, जो छोटे बच्चे चलाते हैं···रक्षाबंधन पर या फिर जन्मदिन पर।"

"ठीक है! दिलवा देंगे।" कहकर माँ अपने काम में व्यस्त हो गई।

कुछ महीने भी नहीं बीते कि निशू की टाँगें तिपहिया साइकिल में फँसने लगीं। इस पर उसने साइकिल सीढ़ियों के नीचे पटक दी, "इसे किसी छोटे बच्चे को दे दो, खुश हो जाएगा। मुझे तो दो पहिये की साइकिल चाहिए।"

उसने दादी को भी फुसलाने की कोशिश की, "आपका काम भी बड़ी साइकिल पर करके आ जाऊँगा, दूसरों से मिन्नत नहीं करनी पड़ेगी।"

दो पहिया साइकिल के आने पर पढ़ाई को छोड़कर निशू का शेष समय साइकिल चलाने में और माँ का हिदायतें देने में बीतने लगा।

निशू के पड़ोसी साथी कुछ महीनों बाद ही रंग-बिरंगी और कीमती साइकिलें ले आए। निशू को यह बिल्कुल भी गवारा नहीं था कि वह मीडियम क्वालिटी की साइकिल चलाए और उसने मित्र चमचमाती रंगीन और महँगीवाली। दोस्त भी जानबूझकर उसके सामने अपनी-अपनी नई साइकिलों की तारीफ के पुल बाँधते। अब निशू भी रुआँसा होकर माँ से उनके जैसी नई साइकिल की जिद करने लगा।

सुपरिचित लेखिका। लघुकथा, कहानी, संस्मरण, कविता, साक्षात्कार, विचारोत्तेजक आलेख, बालकथा, स्तंभ-लेखन, व्यंग्य आदि का लेखन। अब तक छह सौ से अधिक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। साहित्य मंडल, श्रीनाथद्वारा 'श्रीमती केसरदेवी जानी स्मृति सम्मान' सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

"तुम इतनी जल्दी-जल्दी साइकिल बदलोगे, तो पुरानी का क्या करें? जंग्रडंसाइकिल को कम-से-कम इतना तो चलाओ कि उसकी कीमत वसूल हो जाए।" माँ उसे समझाते हुए बोली।

इसका सामाधान भी निशू ने पलभर में ही पेश कर दिया, "जैसे पुरानी तिपहिया साइकिल उन्नू ने चलाई, वैसे ही ये वाली भी उसे ही दे देना।"

उन्नू बीच में चिल्लाते हुए बोली, "मैं क्या हमेशा पुरानी साइकिल ही चलाया करूँगी? नई क्यों नहीं?" उन्नू ने गुस्से में निशू की साइकिल को लात मारकर गिरा दिया और इस बात पर दोनों गुत्थमगुत्था हो गए।

माँ ने इस बार हाथ झटक दिए, "अब तुम्हें कुछ चाहिए तो पापा की अदालत में अरजी दो, मुझसे इस विषय में कोई बात करोगे, तो देख लेना।"

स्कूल से रिजल्ट लेकर जब अपने पापा के साथ निशू लौट रहा था, तो उसे लगा इससे बेहतर मौका नहीं हो सकता पापा को पटाने का।

"पापा, आपको लगता था न मैं फेल हो जाऊँगा, पर मैं तो अच्छे नंबरों से पास हो गया!"

पापा ने खुशी जाहिर करते कहा, "तभी तो हम मिठाई की दुकान पर चल रहे हैं, जो तुम्हें पसंद हो, ले लेना।"

"मुझे मिठाई नहीं चाहिए। मुझे तो वैसी वाली साइकिल चाहिए, जैसी मेरे दोस्तों के पास है।"

पापा अपने दायित्व से यह कहकर मुकर गए, "पहले दादी से परमिशन तो लो, मुझे उनकी डाँट थोड़े ही खानी है।"

दादी को चलती गाड़ी से ही मोबाइल लगाया गया। दादी ने भी परमिशन दे दी। दादी की स्वीकृति पाते ही हिप-हिप हुर्रे करते हुए वह वैन में ही नाच उठा।

नई साइकिल आते ही निशू उसे वक्त-बेवक्त चलाने लगा, किंतु जब उसे कोई काम बताया जाता, तो वह थकने का बहाना बनाता। उसने साइकिल पाने के लिए माँ को जो लालच दिए थे कि वह बाजार के काम भी कर दिया करेगा, वे सारे वादे भी निशू भूल गया। किसी को कॉपी चाहिए होती तो किसी को प्रोजेक्ट का सामान, पर वह सबकी बात अनसुनी कर देता।

"चाची, इसने तो आपको बेवकूफ बना दिया। झूठ बोलकर साइकिल भी ले ली और आपका कोई काम भी नहीं करता।" निशू की चचेरी बहन ने चाची को भड़काना चाहा।

पता ही नहीं चला और समय साइकिल के पहिए की तरह आगे बढ़ गया। निशू अब किशोर हो चुका था। वह अपनी साइकिल को घूरता और कहता, "अब तो बड़ा हो गया हूँ। साइकिल चलाते-चलाते थक जाता हूँ, इसलिए मुझे अब एक्टिवा चाहिए। चलाते-चलाते थकूँगा भी नहीं और आप लोगों के दूर के काम कर दिया करूँगा।"

इतना सुनते ही दादी ने कहा, "एक्टिवा ला देने से क्या फायदा? इसे लाकर देंगे, तो कहेगा—बरसात में भीग जाता हूँ और धूप में तपना पड़ता है। इससे तो अच्छा है, इसे फोरव्हीलर लाकर दे देते हैं, कम-से-कम एक एक्टिवा का खर्चा तो बचेगा।"

निशू की गाड़ी बदलने की रफ्तार तो बढ़ती जा रही थी, पर काम की रफ्तार धीमी होकर थम गई थी।

दस कितने बजे बजेंगे

पड़ोसी बिट्टू की डॉक्टर मम्मी ठीक आठ बजे ड्यूटी पर निकल जाती थीं और मैं ठीक दस बजे स्कूल के लिए। तबीयत ठीक न होने के कारण उस दिन मैं घर पर थीं।

बिट्टू ने मुझे देखा तो सवाल किया, "आंटी! दस कितने बजे बजेंगे?"

यह कैसा अटपटा सवाल! क्या जवाब दूँ, अभी सोच ही रही थी कि इतने में बिट्टू ने फिर सवाल किया, "आंटी! दस कितने बजे बजेंगे?"

मैं असमंजस पड़ गई, "दस? दस दस बजे बजेंगे।" अटपटे सवाल का मैंने भी अटपटा जवाब दे डाला।

सुनकर वह थोड़ी देर तो चुप रहा। फिर वही प्रश्न, "नहीं आंटी! 'दस' कितने बजे बजेंगे?" अबके 'दस' शब्द पर उसने कुछ ज्यादा ही जोर दिया।

जीवन में आज पहली बार मुझ बी.एड. डिग्रीधारक को एक बच्चा निरुत्तर किए हुए था।

इतने में उसके पास खेलने आए चार वर्षीय उसके मित्र ने बड़ी सरलता से बिट्टू को समझाया, "जब आंटी स्कूल जाएँगी न, दस तब बजेंगे।"

साअ
शिवनंदन, ५९५, वैशाली नगर (सेठीनगर),
उज्जैन-४५६०१० (म.प्र)
दूरभाष : ०७३४२५२५२७७
komalwadhwani.prerna@gmail.com

चर्चा का विषय

लघुकथा

• बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु'

वह गाँव की लड़की थी। स्कूली बोर्ड और कॉलेज की परीक्षाओं में हमेशा अच्छे अंक लाती। लेकिन गाँव में कभी कोई चर्चा नहीं हुई।

कॉलेज पूरा कर लेने के बाद भी उसकी शादी नहीं हुई थी। गाँववालों की नजर में वह 'बूढ़ी' हो रही थी। शादी न होने के कारणों को लेकर कानाफूसी होती, लोग चटखारे ले-लेकर चर्चा करते।

एक दिन खबर आई कि उसने अपनी पसंद के लड़के से शादी कर ली है। अब चर्चाओं की संख्या बढ़ गई और तीव्रता भी। लोग उसके पति को लेकर अनुमान लगाने लगे, कई तो भावी जीवन को लेकर भविष्यवाणियाँ भी करने लगे।

कुछ दिनों बाद वह अपने पति के साथ गाँव आई। उसे पूरा गाँव घुमाया। बालिकाओं के विद्यालय भी ले गई। गाँव में कानाफूसी होती रही—'आ गई, आ गई!' अगले दिन वे चले गए।

अब वे हर रविवार को आने लगे। लड़की बच्चों को अलग-अलग समय में नि:शुल्क पढ़ाने लगी। उसके डॉक्टर पति भी गरीबों की बहुतायत वाले गाँव में मुफ्त इलाज करने लगे।

अब गाँव में उन्हें लेकर कोई कानाफूसी, कोई चर्चा नहीं होती।

साअ
डॉ. बख्शी मार्ग, खैरागढ़,
जिला-राजनांदगाँव-४९१८८१ (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ९४२४१११४५४

हिंदी प्रदेश की भाषिक चिंतन-परंपरा

• खेमसिंह डहेरिया

'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भष' धातु से निश्पन्न है, इसका कोशीय अर्थ है—कहना या प्रकट करना। अत: भाषा को मनुष्य के भावों या विचारों को प्रकट करने का साधन कहा जा सकता है। मनुष्य अपने भावों या विचारों के आदान-प्रदान के लिए ज्ञानेंद्रियों को माध्यम बनाता है। ऐसे सभी माध्यमों को भाषा के अंतर्गत समाहित नहीं किया जा सकता, भाषा से तात्पर्य स्पष्ट वाणी से है। महर्षि पतंजलि ने लिखा—व्यक्ता वाचि वर्णा येशां त इमे व्यक्त वाच:, अर्थात् जो वाणी वर्णों में व्यक्त होती है, उसे भाषा कहते हैं। भाषा को ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था भी माना गया है। ब्लॉक तथा ट्रेगर के अनुसार भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिससे एक सामाजिक समूह परस्पर सहयोग करता है। भाषा को ध्वनि चिन्हों द्वारा विचार विनिमम का माध्यम भी माना जाता है। जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा परस्पर विचार विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं। डॉ. मंगलदेव शास्त्री के अनुसार—"भाषा मनुष्य की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किए गए वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचार को प्रकट करते हैं।" उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा, उच्चारण अवयवों से नि:सृत विश्लेषण योग्य, सार्थक यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से समाज के एक विशेष वर्ग के लोग परस्पर विचार विनिमम करते हैं।

भाषा का इतिहास अति प्राचीन है। आदिम ग्रंथों की रचना के पूर्व भाषा का जन्म हो चुका था। मानव की विकास यात्रा के साथ अभिव्यक्ति की भावना बलवती हुई और उसके साथ भाषा का विकास भी प्रारंभ हुआ। 'कामायनी' में प्रसादजी ने मनु के संदर्भ एक बात कही है—

निकल रही थी मर्म वेदना, करुणा विकल कहानी सी।
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हँसती सी पहचानी सी।

प्रसाद की यह उक्ति भाषा की उत्पत्ति का संकेत करती है। मनुष्य मूलत: भावप्रधान सृष्टि है, विचार बाद में आए। किन्ही क्षणों ने उसकी संवेदना पर आघात किया और उसकी विगलित वाणी फूट पड़ी। 'आह से उपजा होगा गान, से उपजा होगा' गान भी गान का नहीं अभिव्यक्ति का संकेत है। आदि कवि का अनुष्टुप भी ऐसी ही उद्‌भुत हुआ था। संवेदनशील कवियों ने काव्य-सृजन किया तो ऐसे ही सामान्य संवेदनशील व्यक्तियों की पीड़ा भी आह-कराह के रूप में भाषा के रूप में प्रकट हुई। इन सबके बावजूद भाषा के अध्ययन की या भाषिक चिंतन की परंपरा परवर्ती है। सामान्यत: साहित्य-सृजन के बाद भाषा वैज्ञानिक अध्ययन या भाषीय चिंतन की बात आती है। भारत में साहित्य की परंपरा

सुपरिचित लेखक। अब तक ८१ शोध-पत्र पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। १४ पुस्तकों का प्रकाशन। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर की ९४ शोध संगोष्ठियों में शोध पत्रों का वाचन। अनेक सम्मानों से सम्मानित।

ऋग्वेद से प्रारंभ होती है। आगे चलकर जब वैदिक भाषा विकृत होने लगी, तब उसके व्यवस्थापन की बात चली और वेदांग के रूप में ध्वनि एवं व्याकरण पर बल दिया गया।

भारत की राजभाषा हिंदी है, हिंदी ही भारत की मुख्य भाषा है। भारत की मूल भाषा संस्कृत की ही परवर्ती हिंदी भाषा है। हिंदी का जन्म वेद भाषा संस्कृत से हुआ है। प्राचीनकाल में संस्कृत का जो क्षेत्र रहा है, वर्तमान में वही क्षेत्र हिंदी प्रदेश के नाम से जाना जाता है। अतएव हिंदी प्रदेश की भाषिक चिंतन परंपरा से तात्पर्य भाषिक चिंतन की भारतीय परंपरा से ही है। भाषिक चिंतन की भारतीय परंपरा वैदिक काल से प्रारंभ होती है। भाषिक चिंतन की भारतीय परंपरा में प्रातिशाख्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जनभाषा से धीरे-धीरे वैदिक भाषा के दूर हो जाने के कारण उसका जनसंपर्क कम होने लगा, फलस्वरूप वैदिक भाषा जनसाधारण के लिए अपरिचित होने लगी, परंतु वेदपाठ प्रथानुसार होना ही आवश्यक था। अत: पाठ करते समय ध्वनि संबंधी अशुद्धियों से बचाने के लिए ध्वनि की दृष्टि से वेदों का अध्ययन आवश्यक था। यह महत् कार्य संपादित किया, प्रातिशाख्यों ने इसमें उच्चारण संबंधी विशेष पक्षों की दृष्टि से वेद की प्रातिशाख्य का अध्ययन होने के कारण इसका नाम प्रातिशाख्य पड़ा।

प्रातिशाख्यों के बाद भाषिक चिंतन में शिक्षा ग्रंथों का विषेश महत्त्व है। इनमें ध्वनि का सैद्धांतिक अध्ययन किया गया है। इनमें ध्वनि के स्वरूप विवेचन वर्गीकरण आदि पर विचार किया गया है। भाषा संबंधी अध्ययन में निघंटु का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। निघंटु एक प्रकार से वैदिक कोश कहे जा सकते हैं।

हिंदी प्रदेश में प्राचीन काल से ही भाषिक चिंतन का कार्य प्रभावशाली ढंग से होता आ रहा है। यास्क, पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि, हेमचंद, वररूचि आदि विद्वानों ने प्राचीन युग में भाषिक चिंतन के सभी अंगों पर पर्याप्त विचार किया है। रूप वाक्य अर्थ ध्वनि प्रत्येक क्षेत्र में कार्य की दृष्टि से प्राचीन काल में भारत अन्य देशों से उन्नत था।

महान् संस्कृत वैयाकरण पाणिनि से लगभग सौ वर्ष पूर्व प्रतिभाशाली

वैयाकरण यास्क ने निरूक्त की रचना की थी। अर्थ विचार की दृष्टि से यह विश्व का प्रथम ग्रंथ है, जिसमें अर्थ का प्राचीनतम विवेचन मिलता है। इसमें निघंटु के प्रत्येक शब्द की पृथक-पृथक व्युत्पत्ति दी गई है तथा उनके अर्थ पर विचार किया गया है। इसमें शब्दों की ऐतिहासिक गतिविधि के साथ ही समाज तथा इतिहास पर भी लेखक ने दृष्टि डाली है।

भाषिक चिंतन के प्राचीन भारतीय इतिहास के ऋशि पुरुष महानतम वैयाकरण पाणिनि हैं, इन्होंने अपने ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' में सभी शब्दों को धातुओं पर आधारित किया है, जिनमें उपसर्ग या प्रत्यय जोड़कर अनेकानेक शब्द बनाए जाते हैं। इस ग्रंथ में पहली बार यह उल्लेख हुआ है कि भाषा का आरंभ वाक्यों से होता है। इसमें स्थान तथा प्रत्यय के आधार पर ध्वनियों का जो वर्गीकरण किया गया है, वह बहुत ही वैज्ञानिक है तथा ध्वनि विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अष्टाध्यायी में ध्वनि अर्थ, तथा तुलनात्मक व्याकरण की दृष्टि से ऐसी सामग्री दी गई है, जो न केवल भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी है, वरन् आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए सहायक भी है।

पाणिनी के पश्चात् भाषा-विवेचन की दृष्टि से कात्यायन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाणिनी के समय तक भाषा का यथेष्ट विकास हो चुका था। पाणिनि के कुछ सूत्र समय के प्रतिकूल हो गए थे, जिन्हें ठीक करने के लिए कात्यायन ने 'वार्तिक' की रचना की। 'वार्तिक' की सहायता से 'अष्टाध्यायी' का अध्ययन तथा उसके कुछ प्रश्नों का समाधान आसान हो जाता है।

भाष्य की अनूठी शैली के जन्मदाता पतंजलि का भी भाषा के विवेचन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'महाभाष्य' है, जिसकी रचना दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की गई थी (१) कात्यायन द्वारा पाणिनि की आलोचना का समुचित उत्तर देने के लिए तथा (२) पाणिनि के उन सूत्रों की व्याख्या करने के लिए जो समय बीत जाने के कारण जटिल हो गए थे। पतंजलि को अपने दोनों उद्देश्यों में सफलता मिली।

प्राचीन भाषिक चिंतकों में जयादित्य, भर्तृहरि, मम्मट, भट्टोजी दीक्षित, वरदराज, हेमचंद्र, बररुचि आदि का भी भाषिक चिंतन की भारतीय परंपरा में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

आधुनिक युग में भारत में भाषा विज्ञान संबंधी पर्याप्त कार्य हुए हैं और हो रहे हैं। इस कार्य से संबंधित विद्वानों में पाश्चात्य तथा भारतीय दोनों शामिल हैं। भारतीय भाषाएँ तथा हिंदी भाषा पर भाषिक चिंतन की दृष्टि से कार्य करनेवाले पाश्चात्य विद्वानों में विषप काडवैल, जान बीम्स, डॉ. ट्रंप, पादरी के लाग, डॉ. हार्नले, जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, जूल ब्लाक के नाम उल्लेखनीय हैं तो इस दिशा में कार्य करनेवाले भारतीय विद्वानों में डॉ. सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ. बाबूराम सक्सेना, डॉ. धीरेंद्र वर्मा, बी.के. राजवाडे, डॉ. सिद्धेवर वर्मा, डॉ. भोलाशंकर व्यास, मनमोहन घोष, एस.एस. कत्रे, भिक्षु जगदीश, हीरालाल जैन, प्रबोधचंद्र बागची, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. उदयनारायण तिवारी, डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. माताबदल जायसवाल, डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव आदि का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

भाषिक चिंतन परंपरा में हिंदी प्रदेश के भाषाविदों का महत्त्वपूर्ण योगदान प्राचीन काल से रहा है। इस दिशा में आज भी अनेक विद्वान् कार्यरत हैं। भाषिक चिंतन में हिंदी प्रदेश की भूमिका और उनमें डॉ. उदयनारायण तिवारी का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

भाषिक चिंतन परंपरा का समीक्षात्मक रूप यहाँ प्रस्तुत है—

१. भाषा मानव-समाज का अनिवार्य और अविभाज्य अंग है। भाषा के विकास से ही मानव समाज का विकास संभव है। भाषिक चिंतन की परंपरा वैदिक कालीन यास्क से प्रारंभ हुई है और वर्तमान में भी सतत गति से प्रवाहित हो रही है।

२. भाषा के क्षेत्र में वर्तनीगत, लिपिगत व शब्दगत मानकीकरण आवश्यक है, जिससे सामाजिक संपर्क में व्यवधान न हो।

३. भाषिक चिंतन परंपरा में हिंदी प्रदेशों की भूमिका अहम रही है और भविष्य में भी रहेगी।

४. भाषाविज्ञान के अध्ययन में आधुनिक उपकरणों का उपयोग किया जाना आवश्यक है।

५. सूचना व तकनीकी विकास के कारण भाषाविज्ञान के क्षेत्र में किए जा रहे कार्यों में द्रुतता, सुग्राहिता व सूक्ष्मान्वेषण की क्षमता का विकास हुआ है।

६. पं. उदयनारायण तिवारी, डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. बाबूराम सक्सेना आदि भाषाविदों के कार्यों पर एक साथ प्रकाश पड़ने से उनका तुलनात्मक अध्ययन हो सका।

७. भाषाविज्ञान के घटक तत्त्वों अर्थ, पद, लिंग क्रिया रूप आदि पर प्रकाश पड़ा।

८. भाषाविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में भाषाविदों की पर्याप्त संख्या न होना, निराशाजनक है।

९. भाषिक चिंतन में प्रमाणिक शोध कार्यों की आवश्यकता है।

भाषिक चिंतन संबंधी सुझाव

१. भाषिक चिंतन के क्षेत्र में महाविद्यालयीन स्तर पर शोधकार्यों की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे इस दिशा में पर्याप्त कार्य हो सकें।

२. भाषा के वर्तनीगत, लिपिगत व शब्दगत मानकीकरण के लिए मानक व्याकरणों व मानक प्रस्तकों की रचना की जानी चाहिए। इस दिशा में संस्थागत व व्यक्तिगत दोनों प्रकार के प्रयास किए जाने चाहिए।

३. विभिन्न विश्वविद्यालयों में भाषाविज्ञान के अध्ययन की व्यवस्था स्नातक व स्नातकोत्तर दोनों पर की जानी चाहिए।

४. प्रत्येक महाविद्यालय में आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों से सुसज्जित भाषाविज्ञान प्रयोगशाला की व्यवस्था होनी चाहिए।

५. राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास के लिए व सरकारी काम-काज में अंग्रेजी के स्थान पर राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रयोग अनिवार्य किया जाना चाहिए। साथ ही भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होना चाहिए कि जहाँ तक संभव हो सके, आपसी बोल-चाल में हिंदी का ही प्रयोग करे।

सा अ

अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय,
ग्राम मुगालिया कोट, सूखी सेवनिया,
विदिशा रोड, भोपाल-४६२०३८ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२४६८४६०८

रूपांतर

मूल : **भरत सोलंकी**

अनुवाद : **प्रजापति मेहुलकुमार सोमाभाई**

दोपहर का सूरज अपना प्रभाव पूरी ताकत से दिखा रहा था। गरमियों के मौसम में चमड़ी को जला देने वाली प्रखर गरमी के बीच अहमदाबाद के गीता मंदिर के एस.टी. बस डिपो पर लोगों की भीड़ जमी हुई थी। कोई बैठा हुआ था, कोई सो रहा था, कोई बैठने की जगह न मिलने के कारण जमीन पर लोट रहा था तो कोई भाग-दौड़ कर रहा था। फेरीवाले बासी समाचारों को नए रंगरूप में ढालकर अपनी रोजी कमा रहे थे। कोई नई-नवेली दुलहन चार-पाँच वृद्ध पुरुषों और पाँच-सात थैलों के साथ लंबा सा घूँघट निकाले हुए पानेतर में बहुत सुंदर दिख रही थी। पास में ही कोई कॉलेज कन्या नेरोकट जींस तथा बिना बाँह के सफेद टी-शर्ट से अपनी काया को सुंदर बनाकर अपने पास खड़े पुरुष प्रेमी को ललचा-नचा रही थी। पानी के पाउच, गन्ने का रस, कुल्फी आदि चीजें बेचनेवाले लोगों की आवाजें एक-दूसरे को छेद रही थी। गरमी ज्यादा लगने के कारण मैं हवा खाने की तलाश में पंखे के नीचे जाकर खड़ा हुआ, लेकिन पंखा तो मात्र दिखावे के लिए ही अपने पंख घुमा रहा था। मैंने वहाँ से खिसकने का विचार किया तभी एक फटी हुई चड्डी और बिना बटन वाला शर्ट पहने एक आठ-दस साल के लड़के ने मेरे पैरों को छुआ। मैं एकदम से चौंक गया। मैंने उसकी ओर देखा। वह बोला, 'साहब बूटपॉलिश?' पहले तो मैंने मना कर दिया। फिर वह अपने पेट की तरफ इशारा करके प्रार्थना करने लगा। मुझे उस पर दया आई। मैंने हाँ कहा। अपने जूते निकालकर उसको दिए। उसने एक काँच की बोतल में से थोड़ा सा काला पानी निकालकर एक कपड़े में लेकर कपड़ा जूते पर घुमाया और ब्रश घिसकर जूते चमकाए। मैं मन-ही-मन हँसने लगा। वह पाँच रुपए लेकर आगे की तरफ चला फिर दौड़ने लगा। मुझे फिर हँसी आई और फिर उसके लिए मन में दया उत्पन्न हुई।

घड़ी में देखा तो दो बजने वाले थे। अब बस लगाई जाए तो अच्छा है। बस का समय हो चुका था। तभी लाउडस्पीकर में भारी और खोखरी सी आवाज सुनाई दी, "अहमदाबाद से सुदामडा लोकल बस चलने की तैयारी में है।" यह सुनकर मैं तुरंत दौड़ा। बस जानी पहचानी सी लगी। धक्का-मुक्की करते-करते मैं बस में चढ़ा और बैठने की जगह मिलते ही राहत की साँस ली। बस चली तो और ज्यादा राहत महसूस हुई। खिड़की में से थोड़ी-थोड़ी देर में आने वाली हलकी ठंडी हवा से शरीर को और भी राहत मिली।

वतन में बुजुर्गों ने गाँव के साधु, ब्राह्मण तथा पुजारियों को भोजन तथा दान-दक्षिणा देने का उत्सव रखा था। कल ही कोल आया था, उत्सव की सभी तैयारियाँ हो चुकी है, मुझे मात्र वहाँ उपस्थित होना है।

सुपरिचित लेखक। गुजराती साहित्य में हाइकु, गजल, कहानी, लेख, लोक-साहित्य का संपादन। शब्दसृष्टि, एतद, परिवेश, दलित चेतना, साहित्यसेतु इ-जर्नल, शांति इ-जरनल आदि विविध सामयिकों में लेख प्रकाशित।

मैं तुरंत ही वहाँ जाने के लिए निकल पड़ा। तेरह-चौदह साल तक वतन में बिताए हुए अपने बचपन के समय के चार-पाँच पक्के साथी कहे जा सके, ऐसे मित्र भी वहाँ थे। मन में उन सभी की अलग-अलग प्रकार की छवियाँ स्मरण होने लगी। वह गाँव, वह मुहल्ला, वह हनुमानजी का छोटा सा मंदिर, विद्यालय, बरामदा, खेत-बाड़ी, पनघट, दरवाजे, रास्ते, गोला, कुल्फी, पान-मसाला, इमली-पीपल, छुपम-छुपाई, खो-खो, मारपीट, रूठना-मनाना और न जाने ऐसी कितनी सारी यादें मेरे मन में दृश्य होकर चलने लगी और तभी रुकी, जब मेरी बगल वाली सीट पर कोई आकर बैठा। उनका शरीर भारी और चेहरा अरुची पैदा करें ऐसा था। हालाँकि उन्होंने जरा सा मुसकराकर मित्रता बनाने का प्रयत्न किया, लेकिन मैं अपने मनोरम्य आनंद को गुमाना नहीं चाहता था। इसी कारण उनकी तरफ मंद मुसकान दिखाने के बाद खिड़की खोलने के बहाने मैंने खिड़की की ओर देखा और बाहर की दुनिया को निहारने लगा।

सूरज एकदम सिंदूर के लाल रंग जैसा बना हुआ अस्तशिखर की तरफ आगे बढ़ रहा था। घड़ी छह बजे का समय दिखा रही थी। "अब तक तो सुदामड़ा आ जाना चाहिए था।" जरा सा खड़ा होकर देखा कि तभी बस की ब्रेक लगी। काले बोर्ड पर सुदामड़ा नाम पढ़ते ही मैं जरा सी धक्का-मुक्की के साथ नीचे उतरा और घर तरफ चलने लगा। एक-एक पल के साथ बचपन की यादें ताल से ताल मिला रही थी। कुछ जाने पहचाने लोग स्मित देते तो मैं भी उनके सामने उनको पहचानने का भाव दिखाते हुए सहज स्मित करता। अंत में अपने गली की तरफ मुड़ा तो सामने से कालिया आ रहा था। वह अपने नाम के हिसाब से जन्म से ही काला था। इसलिए नाम ढूँढ़ने की जरूरत ही नहीं पड़ी। जन्म के बाद ही नाम रख दिया गया 'कालिया'। मुझे अपने बारे में भी दादी की कही हुई बात याद आई, "तुम पूनम के दिन पैदा हुए थे, इसलिए तुम्हारा नाम पूनम ही रखने का विचार था, लेकिन उसी समय और उसी दिन पैदा हुई एक लड़की का नाम पूनम रख दिया गया, इसलिए हमने तुम्हारा नाम हर्षद रख दिया।"

मैं कालिया की तरफ ही देखता रहा। वह था उससे भी ज्यादा काला हो गया था। आधी उम्र में भी वह पूरा-पूरा वृद्ध व्यक्ति जैसा दिखता था। आँखें अंदर चली गई थीं और रूखी-सूखी और नीरस लग रही थीं। उसके एक हाथ में घी का खाली कटोरा था और दूसरे हाथ में माचिस की डिबिया थी। गंदे-गंदे कपड़ों में वह था। उसने मुझे पहचाना और गले मिलने के लिए आगे बढ़ा और तुरंत अटक गया। शायद शर्म-संकोच के कारण। लेकिन मैं खुद को रोक ही नहीं पाया और तुरंत ही उसे गले से लगा लिया। दोनों की आँखों में से अश्रुधाराएँ बहने लगीं। बरसो-बरस बीत जाने के बाद का मिलन कृष्ण-सुदामा के मिलन जैसा लग रहा था। वह मेरे बचपन का साथी। उस वक्त भगवान् को नहीं जानते थे, लेकिन भगवान् से भी ज्यादा उसी के नाम का रटन होता रहता था और उसकी उपस्थिति से स्वर्ग जैसा सुख प्राप्त होता था। आलिंगन से छूटने के बाद वह रुकते अटकते हुए बोला, "हर्षद, तूने तो गाँव की माया ही छोड़ दी? इतने सालों के बाद फिर से गाँव की याद कैसे आई?" मैं रुदन भरे कंठ से थोड़ा स्वस्थ होकर बोला, "कालिया, यह तो हम कालक्रम के चक्करों मैं गोल-गोल घूम रहे हैं, मिलना-जुलना और दूर होना यह सब तो कुदरत के खेल है, लेकिन कालिया तेरी हालत तो एकदम बिगड़ी हुई सी, ऐसा तो क्या···" मेरी बात बीच में ही रोकते हुए वह बोला, "यहाँ माता सुन लेंगी, यहाँ रुकने का इरादा हो तो शाम को या फिर कल चाय-पानी करने आना। नए मुहल्ले में मकान बनाया है।" और वह चलने लगा।

गली में दो पंथ पड़ते थे। बाईं तरफ मेरा घर था और दाहिने तरफ उसका घर था। हालाँकि अब यह वाला घर उसके लिए पुराना घर था। मुझे इस तरफ जाकर देखने की इच्छा हुई और मैं जरा सा उस तरफ मुड़ा। वहाँ सबकुछ एकदम वीरान और सुनसान लग रहा था। चार-चार लंबे-लंबे कमरे और बरामदे के एक भी छत पर नरिये नहीं थे और सब लकड़ियाँ ऊँची-नीची, उल्टी-पूल्टी और बस गिरने की तैयारी में ही थीं। दीवारों पर से पपड़ी उखड़ गई थी और लिंपन की जगह पर गड्ढे बन गए थे और उन गड्ढों में कुत्ते पैर सिकोड़े सो रहे थे। कहीं-कहीं पर बबूल, बेर और मदार जैसे पौधे उगे हुए थे। सब देखते-देखते अंत में मेरी नजर माता रानी के मंदिर तरफ पहुँची। वह पूरी तरह सही सलामत और एकदम मजबूत था। लाल-लाल मशरू के कपड़े में सुशोभित आसमान के तोरन और नारियल के हार से मंदिर सुशोभित लग रहा था। भीतर मुलायम से रेशमी वस्त्रों में सजी हुई माताएँ सुशोभित लगती हुई मुसकरा रही थीं। कालिया जो दीया जलाकर गया था, वह अभी बस बुझने की तैयारी में ही हो, उस प्रकार भभूक-भभूक लबझब हो रहा था। मैंने बगल थैला जमीन पर रखा और दो हाथ जोड़कर आँखें बंद करके जरा झुककर दर्शन किए और फिर अपने घर की तरफ चल पड़ा।

शाम का खाना पीना खत्म करके कालू का घर ढूँढ़ने निकल पड़ा। इस तरफ घूमो, उस तरफ घूमो, सीधे जाओ, वो···वो रहा कालू का घर और घर दिखते ही बाहर खड़ा हुआ कालू भी दिखा। मेरा हाथ खींचकर इशारा करके घर में ले जाते हुए बोला, "हर्षद! यह है हमारी झोंपड़ी, तुम्हारी तरह बँगला तो हमारे पास···" और वाक्य को बीच में ही अटकाकर मैं बोला, "बँगला तो हमारे पास भी कहाँ है, मैं भी सोसाइटी में···" बाद में दोनों चारपाई पर बैठे। उसकी पत्नी शर्म का लंबा सा घूँघट निकाले पानी का लोटा दे गई। चमकते हुए पीतल के लोटे में से गाँव के कुएँ का अमृत समान पानी पीते-पीते मेरी आँखें उसकी आँखों की तरफ गई। घर का कोना-कोना गरीबी का सूचन कर रहा था। मैंने लोटा नीचे रखा और पूछा, "यह घर नया और वहाँ कोई···सभी···" कालू पैर के अँगूठे से जमीन को कुरेदता हुआ चुपचाप बैठा था। वह गहरी आह भरकर करीब मासूम होकर बोलने लगा।

"वहाँ माता को सिकुड़न पड़ती थी, उन्हें हमें वहाँ से निकालना था तो सभी घरों में से एक-एक को उठाने लगी। शुरुआत में रमन काका, फिर परभु, फिर जगादादा, फिर समजु माँ और फिर···" यह सभी एक-एक नाम सुनते-सुनते मानो जैसे मेरे ऊपर बिजली सी गिर रही हो, ऐसा लगने लगा। कालिया के जितना ही लाड़, प्यार, स्नेह देने वाले वे सभी लोग समय के साथ चले गए? उतने में ही कालू की पत्नी एक हाथ में चाय की केतली और दूसरे हाथ में दो पीतल की रकाबी लेकर आई, मैंने रकाबी पकड़ी, कालू ने उसमें चाय डाली, एक रकाबी उसने भी पकड़ी, मैंने चाय मुँह को लगाई, वही उसने बात आगे बढ़ाई—"हम सभी के घरों में से एक-एक व्यक्ति चला गया तो हमारे मन में शंका हुई कि पक्का कोई बाधा अड़चन रूप बनी हुई है। माता हमसे रूठ गई है। और कहीं हमें भी···पंच के आगे प्रार्थना करने लगे और उन्होंने गाँव के बाहर हमें मकान बनाने के लिए जगह दी और यहाँ हमने अपने मकान बनाएँ।" मेरी आँखों में से टप-टप बहते आँसू चाय में घुल गए और जैसे-तैसे करके मैंने चाय पेट में उतारी। वह अभी भी सन्निपात हुआ हो, उस प्रकार बात आगे बढ़ रहा था, "अब कुछ समय से किसी की मृत्यु हुई नहीं है और दीया-बाती तो करनी ही पड़ती है न। हम खाते-पीते हैं तो माँ को भी···हम चारों घरों ने बारी-बारी से माँ के मंदिर में दीया-बाती करने का फैसला किया। अभी मेरी बारी चल रही है, माता है, आज रूठी है तो कल मान भी जाएगी, और सबकुछ सही करेंगी, दीया करने के लिए घी न हो तो उधारी करके भी···बाकी हम सब तो सूखी रोटियाँ ही···" वह अपने आप को मेरे सामने पूरा-पूरा उगल देता, अगर उसकी पत्नी ने उसे रोका न होता तो। वह चाय की पत्तियाँ छलनी में से दीवार तरफ फैंकते हुए बोली, "छोड़ो भी अब माँ की बातें, आपके मित्र इतने सालों बाद आए हैं तो कोई अच्छी बात कीजिए न।" उसके बाद कुछ गाँव-परगाँव, खेती, बरसात, तालाब, विद्यालय और ऐसी-ऐसी बातें करके मैंने उसके घर से बिदा ली।

घर आकर पानी पीकर चारपाई में लेटा, घड़ी में बारह बजने की घंटियाँ सुनाई दीं। आँखें बंद करके सोने का प्रयत्न किया, लेकिन अंदर की तड़फड़ाहट सोने नहीं दे रही थी। कालू की वेदना से भारोभार छलनी हुआ मैं झपकियाँ ले-लेकर जग जाता था। कालू और मैं दो जिस्म एक जान। घर के बीच दीवार मात्र कहने के लिए ही थी। उसका घर-मेरा घर, मेरा घर-उसका घर। बचपन के उस स्वर्ग समान समय में विद्यालय से

घर आकर माता का मंदिर साफ-सुथरा करते। माताओं की मूर्तियाँ हाथ में ले के नहलाते, कपड़े पहनाते, हाथ में त्रिशूल लगाते, उनके स्थान पर सजाते, कभी-कभार उनके साथ बातें भी करते। कभी-कभार गृहकार्य बाकी रह जाने पर मास्टरजी की मार खाने से बच जाते तो आधे-आधे पैसे निकालकर नारियल चढ़ाते। धूप-दीया पूरे मुहल्ले में घुमाते। छुपम-छुपाई खेलते-खेलते माता के मंदिर में छिप जाते और माँ की तरफ देखकर मुसकराते। कभी-कभार उसी माँ की कसम भी खाते, लेकिन सच्ची कसम। उस समय माँ से डर नहीं लगता था, बल्कि माँ प्यारी लगती थी।

कभी-कभार माता की पूजा भी होती, वह तीन-तीन दिन तक चलती, लोगों की भारी भीड़ जमा होती और तांत्रिक जब हाजिर होते, तब माता का मंदिर और माँ डरावनी सी लगती। रात को छत पर खिड़की के पास सोता और कालिया बार-बार बुलाया करता, लेकिन उन तीन दिनों तक मैं उस तरफ बिल्कुल भी नहीं जाता। आधी रात को कालू कसम देकर ले जाता। मैं उसके पास ऊँचे पैर रखकर ही बैठता, ताकि भागने में ज्यादा समय न लगे। चारों तरफ एकदम लाल-लाल मंडप बँधा होता, मंदिर के अंदर तांत्रिक बैठे होते और लंबे से घूँघट में अलक-मलक की बातें होती रहती। धूप की और तीस नंबर खाखी वीडियो के धुएँ की गंध एक-दूसरे में घुल-मिलकर चारों तरफ अपना प्रभाव दिखाती। बीच-बीच में चुस्कियाँ लेते हुए चाय भी पी जाती। विविध वाद्य बजने शुरू होते और थोड़ी ही देर में आँखें बंद करके बैठे हुए तांत्रिक के शरीर में कंपन शुरू होते ही आँधी में जैसे पेड़ डोलने लगते, उस प्रकार वह डोलते। वह हु··· हा···हीईई···हीईई की चीखे निकालते, जुबान बाहर निकालते, तलवार बिंधते, जंजीर घुमाते और भी ज्यादा डरावने लगते। छोटे बच्चे अपनी माँ के आँचल मैं और भी ज्यादा अंदर छिप जाते। कोई रोने लगता, एक के बाद एक स्त्री-पुरुष खड़े होकर उनके सामने अपना दुख व्यक्त करते। कोई घर, कोई पति, कोई संतान माँगते। तांत्रिक खम्मा-खम्मा कहकर वचन देते और लेते। अजब गजब की उलझने और उपाय उस समय भी मुझे समझ में नहीं आते थे और आज भी वह सब मेरी समझशक्ति की पहुँच से बाहर ही हैं। अंत में तकिया आँखों पर दबाकर करवट बदली और न जाने कब नींद आ गई, पता ही नहीं चला।

पूरा दिन उसी उत्सव में खत्म हो गया। कालू सुबह से ही मेरे साथ ही रहा था। उसकी पत्नी भी घर के कामों में बिना कहे ही लग गई थी। बहुत आग्रह करने के बाद बड़ी मुश्किल से दोनों ने खाना खाया और फिर चले गए। कालू ने यह मुहल्ला छोड़ा तो यह बात उससे ज्यादा मुझे सता रही थी। यही विचारतंतु टूटता-बँधता हुआ मेरे मन में बारबार घूम रहा था। "दीया-बाती करे उसे ही दुःख? घर में तेल की बूँद भी दुर्लभ और माँ झिलमिल! मनुष्य का घर, आँगन, छत, सब खुला और मनुष्य भी जीते जी मर जाए, फिर भी माता का मंदिर तेजोमय चमक-धमक! इनसान दुःख के मारे रो-रोकर रोना भी भूल जाए, पर माता का तेजोमय प्रकाश वैसा-का-वैसा ही! कालू की श्रद्धा को बेशक सलाम करने का मन हो जाए, लेकिन श्रद्धा की भी कोई-न-कोई तो सीमा होगी न!" अलग-अलग कार्य खत्म करते-करते मन समक्ष कालू का रुदन भरा चेहरा और माता का हास्य स्मित भरा चेहरा बार-बार आर-पार एक-दूसरे को बींध रहे थे। शाम तक तो माता का मंदिर कोई संग्रहस्थान और माँ की मूर्ति किसी शिल्पी ने पत्थर में से बनाई हुई शिल्प की प्रतिमा में परिवर्तित हो गई। इसी कारण शहर तरफ वापस जाते वक्त उस तरफ मेरे पैर जरा से घूमे, फिर तुरंत वापस घूम गए और उल्टा घूमकर मैं वहाँ से चलने लगा!

गाँव-भलाणा, तालुका-हारीज,
जिला-पाटण-३८४२५५ (गुजरात)
दूरभाष : ९५३७८९७७९५

कविता

मेरी माँ

● सविता चावला

कितना आसान था अपना दुःख भुलाना,
जब तेरी गोदी में छुपकर रो लेते थे।

कितना मुश्किल था तुझसे कोई गम छुपाना,
मेरी माँ जब हम बहुत छोटे थे।

क्या करें अब रो भी नहीं सकते तेरे आगे माँ,
तुझसे नजर मिलाने से अब हम भागे माँ।

आँखें चार होंगी तो तू जान लेगी मेरा दर्द क्या है?
मेरे दुःख से दुःखी हुई तो मेरा फर्ज क्या है?

आज कुछ न बोलूँ मैं, न तू कुछ पूछे कहे,
गले लगा ले और सारे दुःख मेरे जा बहें।

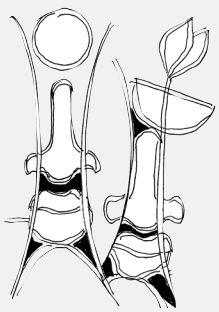

अब बहुत कुछ एक-दूसरे से छिपाकर जी रहे हैं,
खुद ही अपने फटे गिरेबान सी रहे हैं।

बस एक दिन हमें ईश्वर दे दे वैसा बचपन के जैसा,
जहाँ माँ की गोद प्यारी थी, न कि पैसा।

प्रेम तो पहले से भी ज्यादा है शायद अब,
पहले तू जान जाती थी, अब कुछ पहचाने न दें हम।

कोई मौका ऐसा भी आ जाए एक बार,
जिंदगी बचपन जैसी हो जाए गुलजार।

न तेरा घर न मेरा घर, न कोई किसी की परवाह,
बस फिर से बचपन जीने की चाह है एक बार।

गीता कॉलोनी
दिल्ली

बचपन पुष्प समान

• शारदा मित्तल

शूल मिले हर राह पर, मीलों रेगिस्तान।
फिर भी होंठों पर खिली, फूलों सी मुसकान॥

सबकुछ है मिथ्या यहाँ, बस माटी को जान।
मिल जाएँगे एक दिन, माटी में ही प्रान॥

चिंता चिता समान है, कर देती है राख।
मुरझाने मत दो कभी, ये जीवन की शाख॥

गहन अँधेरा कह गया, इस जीवन का सार।
नन्हा दीपक बाँटता, दुनिया में उजियार॥

जीवन क्षण-भंगुर यहाँ, हर पल रखना ध्यान।
इस धरती पर आए हैं, हम बनकर मेहमान॥

जग में ऐसे काम कर, रह जाए तू याद।
अनुसरण सब लोग करें, तुझको तेरे बाद॥

वक्त बहाकर ले चला आखिर बाँहें थाम।
साँसों पर लगने लगा, जैसे पूर्ण विराम॥

फूल हैं और शूल भी, ये जीवन की राह।
दुख को भी मत भूलना, जब हो सुख की चाह॥

पथिक हैं हम सभी यहाँ, रहते कुछ पल साथ।
ले उड़ता है काल ही, सबको अपने हाथ॥

इस दुनिया से एक दिन, जाना खाली हाथ।
नेक कमाई कर सदा, जो जाएगी साथ॥

मोहमाया सब छोड़कर, तजकर सकल जहान।
बरगद जैसे लोग भी, करते हैं प्रस्थान॥

प्रेम और विश्वास से, हैं जीवन में रंग।
दिल में सच्चे भाव ही, मन में भरे उमंग॥

जाएँगे सब एक दिन, कर लो यह स्वीकार।
ओरों हित जो जी सके, उसका हो उद्धार॥

बहती धारा न रुके, कितने हों अवरोध।
चलते रहना कर्म है, है जीवन का बोध॥

जीवन के इस गणित का, गहरा खूब हिसाब।
पल पल घटती है उम्र, बढ़ते जाते ख्वाब॥

कैसी जीवन राह है, मत कर सोच-विचार।
कभी शूल मिलते यहाँ, कभी हैं पुष्प हजार॥

साँस साध जीवन सधे, रक्खे जीवन थाम।
इससे ही प्रारंभ है, ये ही पूर्ण विराम॥

व्यर्थ गँवा मत जिंदगी, तू अपनी अनमोल।
संतति का कल्याण कर, मन के द्वारे खोल॥

तन कोमल मन पावना, बचपन पुष्प समान।
सुवसित करे समाज, लाए नया विहान॥

जीवनभर पूरे किए, हँसकर सारे फर्ज।
मिट जाएगी साँस पर, नहीं मिटेंगे कर्ज॥

चिंता चिता समान है, कहते दास फकीर।
सबके हिस्से सुख यहाँ, सबके हिस्से पीर॥

दौलत हो तहजीब की, खुद पर हो विश्वास।
छोटी सी भी जिंदगी, रच देती इतिहास॥

सादा जीवन जब जिया, तज सारे अभिमान।
निस दिन ही बढ़ता गया, दुनिया में सम्मान॥

सद्गुण रूपी प्यास रख, अवगुण से संन्यास।
जीवन स्वर्ग समान हो, हर पल हो मधुमास॥

जो बोये सो ही मिले, जीवन का दस्तूर।
सत्य, निष्ठा, स्नेह से, मुख पर उपजे नूर॥

सब खोना पाना यहाँ, कर्मों के अनुसार।
साथ समय के चल रही, जीवन की रफ्तार॥

सुपरिचित लेखिका एवं समाज-सेविका। 'चार साँझें' संकलन के साथ-साथ अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। दूरदर्शन व मंचों पर काव्य पाठ। संस्कृति के सारथी द्वारा हिंदी रत्न सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

भाग-दौड़ की जिंदगी, बन गई इक जनून।
घाट-घाट चाहे भटक, मिलता नहीं सकून॥

दुर्गम पथ है जिंदगी, होना नहीं अधीर।
तूफाँ के थमते यहाँ, बहती सुखद समीर॥

सीधी सच्ची बात है, जीवन मिला उधार।
सुनकर भी अनसुनी क्यों, अंतस की पुकार॥

कल की चिंता छोड़कर, जीवन जी ले आज।
औरों की मत फिकर कर, खुद का बन हमराज॥

झूठ कभी ना बोल रे, मन में रख विश्वास।
चाहत निश्छल हो अगर, जीवन हो मधुमास॥

भाषा कहते नेह की, ये नैनों के द्वार।
जो पढ़ता है प्रेम से, जाने जीवन सार॥

इस दुनिया से एक दिन, जाना खाली हाथ।
नेक कमाई कर सदा, जो जाएगी साथ॥

सबकी अपनी जिंदगी, सबके हैं संग्राम।
मुझको लड़ना स्वयं ही, तेरे साथ अवाम॥

साअ
जे-११०१ बेस्टेक पार्कव्यू स्पा नेक्स्ट,
सेक्टर-६७, गुरुग्राम-१२२१०१
दूरभाष : ९७१७०६५९०७

अमृतलाल नागर का बाल-साहित्यिक अवदान

• जी. नीलावती

व्यक्ति को बूँद के रूप में तथा समाज को समुद्र के रूप में परिभाषित करनेवाले अमृतलाल नागर ने अपनी पैनी दृष्टि से दोनों का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है। पौराणिक परंपरा को ध्यान में रखते हुए अपनी लेखनी चलानेवाले इस कथाकार ने अपनी रचनाओं में आधुनिकता को भी समेटा है। इस कारण उनके सृजनात्मक अवदान ने अपने समय की दोनों पीढ़ियों में ख्याति प्राप्त की।

'बूँद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' अमृतलाल नागर के वर्तमान परिवेश के उत्कृष्ट उपन्यास हैं। पौराणिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास की विधा में उच्चकोटि का माना जाता है। अपने साहित्य-कर्म द्वारा अतीत को वर्तमान से जोड़ने का उनका प्रयास अद्वितीय है। उनकी प्रत्येक रचना पाठकों को एक नई राह दिखाती है, हर रचना में उनकी अलग-अलग छवि निखरकर आती है।

प्रौढ़ साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर अमृतलाल नागर ने अपने बाल-साहित्य में सीधे-सीधे उपदेश नहीं दिया है। उन्होंने हर बार एक नई युक्ति अपनाकर बच्चों की भाषा में बच्चों को समझाया है। उन्होंने अपने विलक्षण व्यक्तित्व एवं अपनी कालजयी कृतियों द्वारा बाल-साहित्य के जिस रचना-संसार का सृजन किया है, वह भावी पीढ़ी के रचनाकारों के लिए प्रेरणा-स्रोत बनने में पूर्ण रूप से सक्षम है।

बाल्यावस्था से ही विकसित होते मूल्यों में उचित-अनुचित, सत्यवादिता, आत्म-नियंत्रण, दया, करुणा, उत्तरदायित्व की भावना आदि से ही भविष्य में व्यक्ति के नैतिक पक्ष का निर्माण होता है। ये मूल्य अमृतलाल नागर ने अपनी बाल-रचनाओं द्वारा बाल-मन के धरातल तक उतरकर प्रेषित किए हैं। 'साझा', 'गुंडों के बच्चे', 'एक पत्ता जो जासूस नहीं था' तथा 'बलिया के बाबा' आदि रचनाओं द्वारा दिशाहीन बच्चों को सही पथ का बोध करवाया है, उनको दूसरों के

नवोदित लेखिका। अब तक कई कविताएँ, यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित। संगीत, साहित्य एवं भ्रमण में विशेष रुचि। संप्रति संस्कृति प्रतिष्ठान के माध्यम से पुस्तकों के प्रचार-प्रसार और व्यापार में संलग्न।

सुख-दु:ख के प्रति संवेदनशील होने की प्रेरणा दी है तथा उनमें समाज और राष्ट्र के सुसंस्कृत नागरिक बनने की भावना जाग्रत् की है।

विषय-वैविध्य की दृष्टि से अमृतलाल नागर की प्रत्येक रचना अपने आप में अनूठी है। बाल-कविताएँ, बाल-कहानियाँ, बाल-उपन्यास, बाल-जीवनियाँ, बाल-नाटक आदि विधा की उनकी कृतियाँ बाल-साहित्य के लक्षण से ओत-प्रोत हैं। भाव-पक्ष और कला-पक्ष के सुंदर सम्मिश्रण का उल्लेखनीय उदाहरण है—अमृतलाल नागर का समग्र बाल-साहित्य।

अमृतलाल नागर ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में एक ओर कल्पना की उड़ानें भरी हैं तो दूसरी ओर अपनी सृजनशीलता द्वारा बालकों के मन में जिज्ञासा भी उत्पन्न की है। 'नटखट खरगोश', 'रानी मक्खी की चतुराई', 'घमंड की सजा', 'तीन लफंगे' आदि रचनाओं में पशु-पक्षी-पेड़-युक्त जंगल आदि को घटना-स्थल बनाकर कहानियों में रोचकता के तत्त्व में वृद्धि करते हुए मनोरंजन भी प्रदान किया है।

बाल-साहित्य के सृजन द्वारा अमृतलाल नागर का यह उद्देश्य स्पष्ट रूप से देखा जा रहा है कि यह केवल मनोरंजन प्रदान करनेवाला न हो अपितु इसके माध्यम से बच्चे समाज तथा राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व निभाने के लिए भी सजग हों । अत: उन्होंने नाटक 'बाल-दिवस की रेल', कविता 'विकलांगों की सच्ची सेवा', जीवनी 'अगस्त्य मुनि', कहानी 'बलिया के बाबा' तथा 'इकलौता लाल' जैसी सांस्कृतिक एवं

राष्ट्रीय चेतना से भरपूर रचनाएँ लिखीं।

गंभीर विषय-वस्तु के साथ-साथ अमृतलाल नागर ने 'अमृतलाल नागर बैंक लिमिटेड', 'लिटिल रेड इजिप्शिया', 'सुअर की कहानी', 'नटखट चाची' आदि हास्य-विनोदपूर्ण कहानियाँ भी लिखी हैं। ऐसी रचनाएँ न केवल बालकों को अपितु बड़ों को भी गुदगुदाती हैं।

आधुनिक पीढ़ी के हृदय में अतीत के प्रति गौरव जाग्रत् करना सरल कार्य नहीं है। इस भगीरथ प्रयास में अमृतलाल नागर ने पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं को नए कलेवर में प्रस्तुत किया है। उन्होंने बाल-महाभारत का कथन नीमसार-मिश्रिख के क्रीड़ामय वातावरण में पेड़ों द्वारा कहानी सुनाते हुए किया है।

देश-विदेश के महापुरुषों के चरित्र को उजागर करनेवाली शृंखला 'इतिहास-झरोखे' का वर्णन एक जादुई दर्पण द्वारा करवाना अमृतलाल नागर की सृजनात्मकता का एक विशिष्ट अंग है। 'भारतीय समाज के निर्माता ऋषभदेव', 'तीर्थंकर महावीर', 'गौतम बुद्ध', 'महात्मा ईसा', 'महात्मा जरथुष्ट्र अथवा जोरास्टर', 'महात्मा कन्फूशियस अथवा कन्फूत्से', 'रवींद्रनाथ ठाकुर का बचपन' आदि जीवनी का पठन बाल-पाठकों को तिलस्मी कथा पढ़ने जैसा अनुभव होता है।

आधुनिक संदर्भ की रचनाओं में उन्होंने अंतरिक्ष सूट, हेलिकॉप्टर, रूपांतरित करनेवाला रसायन आदि का प्रयोग करके बालमन को आकर्षित किया है। कहानी 'अंतरिक्ष सूट में बंदर', 'फूलों की घाटी', कविता 'परी देश की सैर', उपन्यास 'बजरंगी स्मगलरों के फंदे में', 'बजरंगी पहलवान', 'बजरंगी-नौरंगी' आदि रचनाओं में प्रासंगिकता के साथ-साथ कौतुकपूर्ण स्वरूप भी परिलक्षित होते हैं।

निष्कर्षत: नागरजी ने विषय-वैविध्य के विभिन्न रंगों से अपनी बाल-रचनाओं को सजाया है और अपनी अनोखी रचनाओं द्वारा बाल-मानस-पटल पर अमिट छाप अंकित की है।

४५/८३ कस्तूरी एवेन्यू, एम.आर.सी. नगर,
आर.ए. पुरम, चेन्नई-६०००२८
दूरभाष : ९०८००८८२१८

घर की ऊर्जा

लघुकथा

• समीर उपाध्याय

भोगीलाल बहुत बड़े व्यापारी थे। कारोबार अच्छा-खासा चल रहा था। आलीशान मकान था। एक बहुत बड़ी बैठक और पाँच शयनकक्ष।

परिवार में अस्सी वर्ष की वृद्ध माँ, पत्नी, दो जवान बेटे और एक बेटी। माँ गैरेज में पड़ी खटिया पर लेटी अपनी जिंदगी के बाकी दिन गिन रही थी।

समय के बीतते कारोबार में मुनाफा कम होता गया। पत्नी की बीमारी के पीछे बहुत पैसा खर्च होने लगा। बीमारी पकड़ी नहीं जा रही थी। जवान बेटों की शादी की बात बन नहीं पा रही थी। कभी-कभी बाप-बेटे के बीच छोटे-मोटे झगड़े हो जाते थे।

भोगीलाल ने अपनी व्यथा मित्र चमनलाल को सुनाई। चमनलाल ने सलाह दी कि किसी अच्छे वास्तुशास्त्री को बताओ। शायद घर में कोई वास्तुदोष हो। चमनलाल की सलाह मानकर उसने एक बहुत बड़े वास्तुशास्त्री को बुलाया। वास्तुशास्त्री ने पूरे घर के भीतर-बाहर चक्कर लगाया और बताया कि वैसे तो आपके मकान का प्लान वास्तु के अनुसार ही है। आपके मकान में सिर्फ एक ही दोष है। भोगीलाल ने पूछा, "पंडितजी! बताइए कि इस दोष का निवारण कैसे किया जाए?"

वास्तुशास्त्री ने कहा, "आपके घर में ऊर्जा की कमी है।"

भोगीलाल ने पूछा, "ऊर्जा लाने के लिए क्या किया जाए?" वास्तुशास्त्री ने कहा, "ईश्वर सभी जगह नहीं पहुँच पाते। इसलिए उसने बनाई है माँ। माँ ईश्वर का साक्षात् सदेह रूप है। आपने पत्थर की मूर्ति को पूजा-स्थान में स्थापित किया है, किंतु साक्षात् सदेह रूप ईश्वर को गैरेज में स्थान दिया है। माँ घर की ऊर्जा होती है। घर की ऊर्जा को आपने घर के बाहर रखा है। माँ घर की रोशनी होती है। अब आप ही बताइए कि माँ के बिना घर में उजाला कैसे होगा? आपको घर के प्लान को बदलने की या किसी विधि-विधान करने की जरूरत नहीं है। बस, घर की ऊर्जा को घर के भीतर स्थान दे दो। उनके आशीर्वाद से सारी आपदाएँ अपने आप हल हो जाएगी।"

वास्तुशास्त्री को सुनकर भोगीलाल अवाक् रह गए।

मनहर पार्क ९६/ए, चोटीला,
सुरेंद्रनगर-३६३५२० (गुजरात)
दूरभाष : ९२६५७१७३९८

दिन भर का इंतजार

मूल : **अर्नेस्ट हेमिंग्वे**

अनुवाद : **सुशांत सुप्रिय**

जब वह खिड़कियाँ बंद करने के लिए कमरे में आया, तो हम सब बिस्तर पर ही लेटे थे और मैंने देखा कि वह बीमार लग रहा था। वह काँप रहा था, उसका चेहरा सफेद था और वह धीरे-धीरे चल रहा था, जैसे चलने से दर्द होता हो।

"क्या बात है, शैट्ज?"

"मुझे सिरदर्द है।"

"बेहतर होगा, तुम वापस बिस्तर पर चले जाओ।"

"नहीं, मैं ठीक हूँ।"

"तुम बिस्तर पर जाओ। मैं कपड़े पहनकर तुम्हें देखता हूँ।"

पर जब मैं सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आया, तो वह अलाव के पास कपड़े पहनकर तैयार बैठा था। वह नौ वर्ष का एक बेहद बीमार और दुखी लड़का लग रहा था।

जब मैंने अपना हाथ उसके माथे पर रखा, तो मुझे पता चल गया कि उसे बुखार था।

"तुम बिस्तर पर जाओ", मैंने कहा, "तुम बीमार हो।"

"मैं ठीक हूँ।" उसने कहा।

जब डॉक्टर आया, तो उसने लड़के का बुखार जाँचा।

"कितना बुखार है?" मैंने उससे पूछा।

"एक सौ दो।"

डॉक्टर अलग-अलग रंग के कैप्सूलों में तीन अलग-अलग तरह की दवाइयाँ और उन्हें देने के बारे में हिदायतें भी दे गया। एक दवा बुखार उतारने के लिए थी, दूसरी एक रेचक थी और तीसरी अम्लीय स्थिति पर काबू पाने के लिए थी। इन्फ्लुएंजा के कीटाणु केवल अम्लीय स्थिति में ही जीवित रह सकते हैं, उसने बताया। लगता था, उसे इन्फ्लुएंजा के बारे में सब कुछ मालूम था और उसने कहा कि यदि बुखार एक सौ चार डिग्री से ऊपर नहीं गया, तो डरने की कोई बात नहीं।

यह फ्लू का एक हलका हमला है और यदि आप निमोनिया से बचकर रहें, तो खतरे की कोई बात नहीं थी।

कमरे में वापस जाकर मैंने लड़के का बुखार लिखा और अलग-अलग तरह के कैप्सूलों को देने का समय नोट किया।

सुपरिचित लेखक-अनुवादक। हिंदी के प्रतिष्ठित कथाकार, कवि तथा साहित्यिक अनुवादक। सात कथा-संग्रह, तीन काव्य-संग्रह तथा विश्व की अनूदित कहानियों के छह संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

"क्या तुम चाहते हो कि मैं तुम्हें कुछ पढ़कर सुनाऊँ?"

"ठीक है, अगर आप पढ़ना चाहते हैं तो।" लड़के ने कहा।

उसका चेहरा बेहद सफेद था और उसकी आँखों के नीचे काले घेरे थे। वह बिस्तर पर चुपचाप लेटा था और जो कुछ हो रहा था, उससे बेहद निर्लिप्त लग रहा था।

मैं उसे हॉर्वर्ड पाइल की 'समुद्री डाकुओं की किताब' जोर से पढ़कर सुनाने लगा, लेकिन मैं देख सकता था कि मैं जो पढ़ रहा था, उसमें वह दिलचस्पी नहीं ले रहा था।

"अब कैसा महसूस कर रहे हो, शैट्ज?" मैंने उससे पूछा।

"अब तक ठीक वैसा ही।" उसने कहा।

मैं बिस्तर के एक कोने पर बैठकर अपने लिए पढ़ता रहा और उसे दूसरा कैप्सूल देने के समय का इंतजार करता रहा। उसका सो जाना स्वाभाविक होता, लेकिन जब मैंने निगाह ऊपर उठाई, तो वह बड़े अजीब ढंग से बिस्तर के पैताने को घूर रहा था।

"तुम सोने की कोशिश क्यों नहीं करते? मैं तुम्हें दवा देने के लिए उठा दूँगा।"

"मुझे जगे रहना अधिक पसंद है।"

थोड़ी देर बाद उसने मुझसे कहा, "अगर आपको परेशानी हो रही है पापा, तो आपका यहाँ मेरे पास रहना जरूरी नहीं।"

"मुझे तो कोई परेशानी नहीं हो रही।"

"नहीं, मेरा मतलब है, अगर आपको परेशानी हो, तो आप यहाँ मत रुकिए।"

मैंने सोचा, शायद बुखार के कारण वह थोड़ा व्याकुल हो गया था और ग्यारह बजे उसे निर्दिष्ट कैप्सूलों को देने के बाद मैं थोड़ी देर के लिए बाहर चला गया।

वह एक चमकीला, ठंडा दिन था और जमीन बर्फ से ढकी हुई थी। बर्फ जम गई थी, जिससे लगता था कि बिना पत्तों वाले सभी पेड़ों, झाड़ियों, सारी घास और खाली जमीन को बर्फ से रोगन कर दिया गया हो। मैंने आइरिश नस्ल के छोटे कुत्ते को सड़क पर कुछ दूर तक सैर करा लाने के लिए अपने साथ ले लिया। मैं उसे एक जमी हुई सँकरी खाड़ी के बगल से ले गया, पर काँच जैसी सतह पर खड़ा होना या चलना मुश्किल था और वह लाल कुत्ता बार-बार फिसलता और गिर जाता था और मैं भी दो बार जोर से गिरा। एक बार तो मेरी बंदूक भी हाथ से छूटकर गिर गई और बर्फ पर फिसलते हुए दूर तक चली गई।

हमने मिट्टी के एक ऊँचे टीले पर लटके झाड़-झंखाड़ में छिपे बटेरों के एक झुंड को उत्तेजित करके उड़ा दिया और जब वे टीले के ऊपर से उस पार ओझल हो रही थीं, मैंने उनमें से दो को मार गिराया। झुंड में से कुछ बटेरें पेड़ों पर जा बैठीं, पर उनमें से ज्यादातर झाड़-झंखाड़ के ढेर में तितर-बितर हो गईं और झाड़-झंखाड़ के बर्फ से लदे टीलों पर कई बार उछलना जरूरी हो गया, तब जा कर वे उड़ीं। जब आप बर्फीले, लचीले झाड़-झंखाड़ पर अस्थिर ढंग से संतुलन बनाए हों, तब उन्हें निशाना साधकर गोली मारना मुश्किल रहता है और मैंने दो बटेरें मारीं, पाँच का निशाना चूका और घर के इतने पास एक झुंड को पाने पर प्रसन्न होकर वापस लौट चला। मैं इसलिए भी खुश था कि किसी और दिन शिकार करने के लिए इतनी सारी बटेरें बची रह गई थीं।

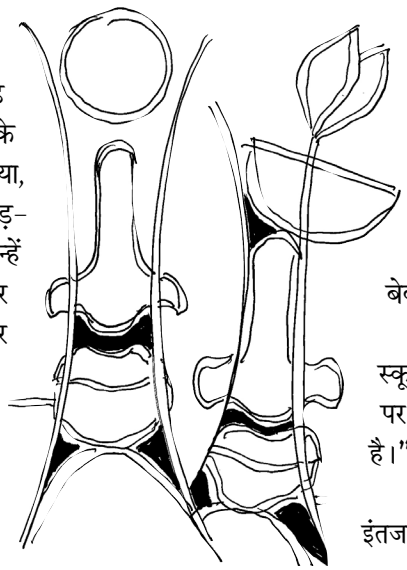

घर पहुँचने पर लोगों ने बताया कि लड़के ने किसी को भी कमरे में आने से मना कर दिया था।

"तुम लोग अंदर नहीं आ सकते," उसने सबसे कहा, "तुम्हें इस बीमारी से दूर रहना चाहिए, जो मुझे हो गई है।"

मैं उसके पास भीतर गया और उसे ठीक उसी अवस्था में पाया, जिसमें उसे छोड़कर गया था। उसका चेहरा सफेद था, पर उसके गालों का ऊपरी हिस्सा बुखार के कारण लाल हो गया था। वह सुबह की तरह बिना हिले-डुले बिस्तर के पैताने को घूर रहा था। मैंने उसका बुखार जाँचा।

"कितना है?"

"सौ के आस-पास।" मैंने कहा। बुखार एक सौ दो से थोड़ा ज्यादा था।

"बुखार एक सौ दो था।" उसने कहा।

"यह किसने बताया?"

"डॉक्टर ने।"

"तुम्हारा बुखार ठीक-ठाक है," मैंने कहा, "चिंतित होने की कोई बात नहीं।"

"मैं चिंता नहीं करता," उसने कहा, "लेकिन मैं खुद को सोचने से नहीं रोक सकता।"

"सोचो मत," मैंने कहा, "तुम केवल आराम करो।"

"मैं तो आराम ही कर रहा हूँ।" उसने कहा और ठीक सामने देखने लगा। साफ लग रहा था कि वह किसी चीज के बारे में सोच-सोचकर बेहद चिंतित हो रहा था।

"यह दवा पानी के साथ ले लो।"

"क्या आप सोचते हैं कि इससे कोई फायदा होगा?"

"हाँ, जरूर होगा।"

मैं बैठ गया और समुद्री डाकुओं वाली किताब खोलकर पढ़ने लगा, लेकिन मैं देख सकता था कि उसका ध्यान कहीं और था, इसलिए मैंने किताब बंद कर दी।

"आप क्या सोचते हैं, मैं किस समय मरने वाला हूँ?"

"क्या?"

"मेरे मरने में अभी और कितनी देर लगेगी?"

"तुम कोई मरने-वरने नहीं जा रहे हो। ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहे हो?"

"हाँ, मैं मरने जा रहा हूँ। मैंने डॉक्टर को एक सौ दो कहते हुए सुना।"

"लोग एक सौ दो बुखार में नहीं मरते। बेवकूफी भरी बात नहीं करो।"

"मैं जानता हूँ, वे मरते हैं। फ्रांस में लड़कों ने मुझे स्कूल में बताया था कि तुम चौवालीस डिग्री बुखार होने पर जीवित नहीं बच सकते। मुझे तो एक सौ दो बुखार है।"

तो वह सुबह नौ बजे से लेकर दिन भर मरने का इंतजार करता रहा था।

"ओ मेरे बेचारे शैट्ज!" मैंने कहा, "मेरे बेचारे बच्चे शैट्ज। यह मीलों और किलोमीटरों की तरह है। तुम कोई मरने-वरने नहीं जा रहे। वह एक दूसरा थर्मामीटर है। उस थर्मामीटर में सैंतीस सामान्य होता है, जबकि इस थर्मामीटर में अट्ठानबे सामान्य होता है।"

"क्या आपको पक्का पता है?"

"बेशक," मैंने कहा, "यह मीलों और किलोमीटरों की तरह है। जैसे कि जब हम कार से सत्तर मील की यात्रा करते हैं, तो हम कितने किलोमीटर की यात्रा करते हैं, समझे?"

"ओह!" उसने कहा।

लेकिन बिस्तर के पैताने पर टिकी हुई उसकी निगाह धीरे-धीरे शिथिल हुई। अपने ऊपर उसकी पकड़ भी अंत में ढीली हो गई और अगले दिन वह बेहद सुस्त और धीमा था; वह बड़ी आसानी से उन छोटी-छोटी चीजों पर रोया, जिनका कोई महत्त्व नहीं था।

ए-५००१, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड,
इंदिरापुरम्, गाजियाबाद-२०१०१४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८५१२०७००८६
sushant1968@gmail.com

समकालीन आधुनिक काव्य में सांस्कृतिक स्वर

● जया आनंद

संस्कृति शब्द को परिभाषित करना कुछ कठिन अवश्य है, पर गहराई से विश्लेषण करने पर संस्कृति का स्वरूप समझ आने लगता है। कोई भी समाज संस्कृति और सभ्यता के आधार पर टिका होता है। संस्कृति अनुभूति है, भाव है और सभ्यता उसका बाहरी कलेवर। रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है, "जिस प्रकार फूलों के अंदर सुगंध छिपा रहता है, उसी प्रकार संस्कृति का स्वरूप है।"

संस्कृति पर्व-त्योहारों में समाहित मूल भाव है, जहाँ प्रकृति के प्रति आदर भाव परिलक्षित होता है। संस्कृति पूजापाठ में निहित वो संवेदना है, जो समाज को विनम्र होना सिखाती है। संस्कृति परिवार का वह तत्त्व है, जहाँ लोग एक-दूसरे के लिए त्याग की भावना से अनुप्राणित होते हैं। संस्कृति साहित्य का वह मर्म है, जहाँ सबके हित की भावना का अनुशीलन होता है।

संस्कृति अपने बाह्य कलेवरों से समाज को सुवासित करती रहती है। प्रकृति का आदर, बड़ों के प्रति सम्मान, छोटों के प्रति स्नेह, क्षमा का भाव, कर्तव्य बोध आदि हमारी संस्कृति के अंग हैं। इन्हें अक्षुण्ण रखने की महती इच्छा समकालीन आधुनिक कविता के स्वर में भी प्रस्फुटित होती है। वहीं तथाकथित संस्कृति के नाम पर रुग्ण परंपराओं के विरोध का स्वर भी दिखता है।

भारतीय समाज में पेड़-पौधे, पर्वत-नदी के महत्त्व को स्थापित करने के लिए उन्हें पूजनीय बनाया गया है और उन्हें विभिन्न आदर सूचक शब्दों से संबोधित किया है। नदी को माँ कहना भारतीय संस्कृति में ही मिलता है। कुमार विकल की कविता में नदी को माँ कहकर संबोधित किया गया है। नदी और मनुष्य के बीच माता और पुत्र का संबंध होता है। प्रस्तुत कविता इसी संबंध से समाज को परिचित कराती है।

पहाड़ पर आकर
कभी का तप हो गया है
किंतु हर्षित नहीं
कोई लोक गीत गा रही है
जैसे पर्व मना रही

नवोदित लेखिका। विविध भारती, मुंबई आकाशवाणी, दिल्ली आकाशवाणी, ब्लॉग, पुरवाई, साहित्यिकी. कॉम, अटूट बंधन, लेखनी. कॉम, अरुणोदय, परिवर्तन आदि पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

कवि गीत को समझ नहीं पा रहा
केवल तप में बड़बड़ा रहा है
माँ नदी माँ मुझे थोड़ा सा बल दो
मेरी सूख रही जिजीविषा को जल दो

भारत में प्रत्येक ऋतु का सौंदर्य विद्यमान है, किंतु बसंत ऋतु का आकर्षण विशेष होता है और उसका स्वागत भी विशेष रूप से किया जाता है। बसंत ऋतु में प्रकृति मुसकराती हुई प्रतीत होती है। सारा वातावरण हर्ष-उल्लास में डूब जाता है। विद्या की देवी माँ सरस्वती का इस अवसर पर पूजन होता है। चाहे कोई आस्तिक हो या नास्तिक, सभी माँ सरस्वती के आगे नतमस्तक रहते हैं। आज की कविता इसके महत्त्व को भलीभाँति व्यक्त करती है—

दूर कहीं पर अमराई में कोयल बोली
लगी परत चढ़ने झींगुर की शहनाई पर
वृक्ष वनस्पतियों की ठूँठ शाखाओं में
पोर-पोर टहनी का लगा दहकने —*नागार्जुन*

भारत गाँवों का देश कहलाता है और यहाँ की संस्कृति में देसीपन की महक बिखरी पड़ी मिलती है। गाँव खुले-खुले मकानों को बनाने की परंपरा रही है। उन खुले मकानों में चिपकी हुई धूप, जो सुबह खपरैल से सरकती हुई पूरे आँगन में फैल जाया करती है, महानगरीय सभ्यता में वह नहीं दिखता। यह पीड़ा कविता के माध्यम से व्यक्त हुई है—

धूप कहाँ गई तू
जो सुबह-सुबह मेरे खपरैल पर उतरती
कबूतर की तरह

और दीवार पर धीरे से सरकती हुई
आँगन में फैल जाती। —*रामदरश मिश्र*

इस देश में माता-पिता को ईश्वर से भी बढ़कर मानने की संस्कृति है। पिता बिना कुछ चाहे निश्छल भाव से बच्चों के लिए आजीवन करता रहता है।

ऐसी अनूठी संस्कृति है इस देश की। प्रस्तुत कविता इस बात की ओर इंगित करती है—

पिता की छोटी-छोटी बहुत सी तस्वीर
पूरे घर में बिखरी है
उनकी आँखों में
कोई पारदर्शी चीज साफ चमकती है
वह अच्छाई है या साहस! —*मंगलेश डबराल*

भारत की संस्कृति में मर्यादा, एक दूसरे के प्रति आदर भाव, परमार्थ, परोपकार की भावना, त्याग की भावना, एक दूसरे के प्रति मित्रता और स्नेह की भावना का समावेश पाया जाता है, परंतु आज भारत की संस्कृति में सारी उच्च भावनाएँ धूमिल होती हुई दिखती हैं। दिल्ली भारत का केंद्र है और वहाँ की संस्कृति का चित्रण प्रस्तुत कविता में हुआ है, जो संवेदनशील हृदय को प्रेरित कर देता है।

भारतीय संस्कृति का अपना शांति दायक शास्त्रीय संगीत है, परंतु आज पाश्चात्य संस्कृति में उसका महत्त्व कम हो रहा है, उसकी जगह पॉप संगीत ने ले ली है। इस सांस्कृतिक दुर्दशा का चित्रण प्रस्तुत कविता में हुआ है।

पानी बहने और तारे चमकने की तरह
एक कठिन संगीत हीन संसार में
वह कमरे के बीचो बीच रखा था
उजाले में उसके कारण जानी गई है जगह
लोग आते और उसके चारों और बैठते
अब वह पड़ा है बाकी सामान के बीच
पीतल लोहे और लकड़ी के साथ
उसे बजाने पर अब राग दुर्गा पहाड़ी के
स्वर नहीं आते सिर्फ एक उसाँस सुनाई देती है
कभी-कभी वह छिप जाता है एक पुश्तैनी बक्से में
मिजाजपुर्सी के लिए आए लोगों से
बचने की कोशिश करता हुआ

पारिवारिक एकता और सामाजिक एकता के अंतर्गत एक साथ फोटो खिंचवाने की संस्कृति बहुत समय से चली आ रही है। इसी परंपरा को रेखांकित करती है, विनोद कुमार शुक्ल की कविता घरवालों के साथ—

घरवालों के साथ तस्वीरें
मुसकराते हुए दोस्तों के साथ होंगी फोटो
यह भी हो सकता है
कि पहले मित्र रहा हूँ जब तसवीर खींची थी
पिता के साथ मेरी फोटो खींची थी

भारतीय संस्कृति में नारी का पूजनीय स्थान माना गया है। किंतु वर्तमान में नारी की दुर्दशा हो गई है। कहीं तो समाज उसकी दुर्दशा के लिए दोषी है कहीं स्वयं भी इसके लिए उत्तरदायी है। धूमिल की कविता 'स्त्री' नारी की स्थिति को दरशाते हुए उद्वेलित करती है—

मुझे पता है
स्त्री
देह के अँधेरे में
बिस्तर की अराजकता है
स्त्री पूँजी है
बीड़ी से लेकर
बिस्तर तक विज्ञापन में फैली हुई।

भारतीय संस्कृति में कुछ परंपराएँ विशिष्ट हैं, जैसे किसी विशेष अवसर पर हल्दी चावल के ऐपन, चौक लगाना, अल्पना बनाना। प्रस्तुत कविता में भोर का चित्रण करते हुए इन्हीं परंपराओं को पाठक के समक्ष रखा गया है—

आकाश का धुला हुआ चौक
हरसिंगार के फूलों की डंडियों से
रगड़-रगड़कर चिकना बनाया हुआ
चाँदी के ऐपन में
घोर-घोर हल्दी
रुई से बनाए गए उड़े उड़े बादल
सुनहरी रेशमी के मारी गई अल्पना·· —*सुमन राजे*

भारत की संस्कृति त्याग परोपकार की संस्कृति रही है। सादा जीवन उच्च विचार यहाँ का ध्येय वाक्य रहा है।

दया, प्रेम, विश्वास भारतीय संस्कृति की भावात्मक पहचान माने गए पर विडंबना है कि आज के संदर्भ में इन सब के अर्थ विपरीत हो गए हैं, परिवर्तित हो गए हैं। त्याग परोपकार के स्थान पर भोग स्वार्थ, सरल जीवन के स्थान पर भौतिकता और विलासिता का जीवन आ गया है। कुमार अंबुज की कविता 'एक दिन' में भारतीय संस्कृति के प्रति व्यवस्था का वर्णन है।

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि समकालीन आधुनिक कविता देश की संस्कृति के प्रति सजग है। संस्कृति का चित्रण कर जहाँ आज की कविताएँ समाज को प्रेरित करती हैं, वही समाज में हो रही संस्कृति का पतन दरशाकर समाज को इसके प्रति सचेत भी करती हैं। वस्तुत: आज की कविता में सांस्कृतिक स्वर सघन रूप से विद्यमान दिखता है।

सा अ
सी-२०४, इसटाप हाइट्स, सेक्टर-१९,
एरोली, नवी मुंबई-४००७०८ (महा.)
दूरभाष : ९७६९६४३९८४
maipanchami@gmail.com

बाल-कहानी

कबीर, नविका और सेब

● **मधु काँकरिया**

नविका और कबीर दोस्त थे। दोनों आस-पास ही रहते थे और प्राय: एक-दूसरे के घर आया-जाया करते थे। एक बार कबीर नविका के घर आया। नविका उस समय पढ़ रही थी। उसने कहा—कबीर, मैं अपना होमवर्क खत्म कर लूँ, तब तक बैठो तुम! इस बीच नविका की दादी नविका के पास आई और उसकी मेज पर सेब रख गई और नविका को बोल गईं कि वह सेब खा ले। दादी ने कबीर को देखा तो उसे भी सेब दिया खाने के लिए। कबीर ने गपागप अपना सेब खा लिया, फिर उसने नविका के सेब को देखा, फिर उसने इधर-उधर देखा, कोई भी उसे नहीं देख रहा था। उसका मन ललचा गया और वह नविका का सेब भी खाने लगा। थोड़ी देर बाद कबीर ने देखा कि नविका अब अपना होमवर्क खत्म कर उठ रही है। उसने सोचा, अब नविका अपने सेब के बारे में पूछेगी तो मैं क्या जवाब दूँगा। उसने जल्दी से अधखाया सेब खिड़की से बाहर फेंक दिया और लंबे-लंबे डग भरता हुआ अपने घर को चल दिया।

बहुत दिनों तक कबीर नविका के घर नहीं आया। उसे डर लगा कि कहीं कोई उससे सेब के बारे में न पूछ ले। इसी बीच नविका का जन्मदिन आया। नविका ने अपने बाकी दोस्तों मल्लिका और किरण को अपने जन्मदिन पर बुलाया तो उसने कबीर को भी फोन किया और अपने घर आने का निमंत्रण दिया। कबीर को लगा कि सेब वाली बात सब भूल गए हैं तो वह भी आ गया। सबने धूमधाम से नविका का जन्मदिन मनाया, किसी ने सेब की घटना का जिक्र तक नहीं किया तो कबीर के मन का डर निकल गया।

अब वह फिर पहले की तरह लगभग हर शाम नविका के घर आने लगा। नविका के पास एक से बढ़कर एक खिलौने रहते, उसके पापा हर सप्ताह उसके लिए नए-से-नए खिलौने और पजल्स लाते। उसके नाना दिल्ली से उसके लिए कहानी की किताबें भेजते। नविका के पास अपने खिलौने के लिए अलग से एक कमरा भी था। कबीर को नविका के खिलौने से खेलना बहुत अच्छा लगता। नविका उसे बेहद पसंद थी। नविका न सिर्फ पढ़ने में अच्छी थी, वरन् वह हरेक के साथ अपनी चीजें भी बाँटती रहती थी। नविका की माँ और पापा भी कबीर को बहुत अच्छे लगते, कभी-कभी वे कबीर के लिए भी खिलौने ले आते।

सुपरिचित लेखिका एवं अनुवादक। अभी तक छह उपन्यास एवं दस कहानी-संग्रह एवं अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। भारतीय भाषा परिषद् द्वारा 'कर्तृत्व समग्र सम्मान', 'प्रेमचंद स्मृति कथा सम्मान' सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

दिन बीतते जा रहे थे, करीब साल भर बाद एक शाम कबीर फिर रोज की तरह आया नविका के पास। नविका उस समय अपने कमरे की खिड़की के पास रखी कुरसी पर बैठी बाहर उगे हुए सेब के पेड़ को देख रही थी। कबीर और नविका पजल-पजल खेलने लगे कि तभी नविका की दादी ने नविका को प्लेट में एक सेब लाकर दिया। नविका ने दादी से कहा—दादी एक प्लेट में सेब काटकर कबीर को भी दे दो। थोड़ी देर में दादी ने सेब काटकर कबीर को भी दे दिया। तब तक कबीर ने अपनी पजल भी पूरी कर ली। उसने कहा नविका से—देखो नविका, मैं जीत गया, मैंने अपनी पजल पूरी कर ली।

तब नविका ने मजाक में कहा—कबीर एक पजल और सॉल्व करो।

कबीर ने कहा—बताओ।

नविका ने कहा—कबीर ये जो सेब तुम खा रहे हो न, वह उस पेड़ का है···कहते हुए नविका ने उसे खिड़की के पास उगे पेड़ को दिखाया।

फिर नविका ने कहा—यह पेड़ पहले यहाँ नहीं था, याद है, एक दिन तुमने आधा खाकर इसी खिड़की से मेरे एक सेब को बाहर फेंक दिया था, फिर मारे डर के बहुत दिनों तक हमारे घर भी नहीं आए थे। मैंने

उस दिन तुम्हें खिड़की से आधा खाए सेब को फेंकते देख लिया था। पर मैं चुप रही। थोड़े दिन में कच्ची माटी में बीज फूटा और फिर आसमान ने पानी और धूप दी तथा धीरे-धीरे वहाँ एक पेड़ उग गया, अब वह पेड़ फल भी देने लगा है। अब तुम बताओ, सेब के इस पेड़ का मालिक कौन हुआ—तुम या मैं?

स्वभाव से ही झगड़ालू और लालची कबीर चिल्लाया—अरे इसका मालिक तो मैं हुआ, मैं सेब नहीं फेंकता तो पेड़ कैसे उगता?

नविका—पर सेब तो मेरा था, और जहाँ पेड़ उगा, वह जमीन भी मेरे पापा की है।

कबीर—पर यदि मैं सेब नहीं फेंकता तो तुम्हारी जमीन और तुम्हारा सेब क्या कर लेता?

नविका—पर तुमने तो सेब मेरे हिस्से का खाया था और उसे भी मेरी दादी से डरकर फेंका था, पेड़ लगाने के लिए तुमने थोड़े ही फेंका था और मैं तुम्हें नहीं बताती तो तुम्हें तो पता भी नहीं चलता।

कबीर—तो नहीं बताती, पर अब जब मुझे पता चल गया है तो मुझे सारे सेब दो, क्योंकि अधखाया सेब फेंका तो मैंने ही था।

दोनों झगड़ने लगे। दोनों की दोस्ती फिर खटाई में पड़ गई। लालची कबीर को लगा कि पेड़ के सारे सेब उसे मिलने चाहिए। कबीर ने फिर आना बंद कर दिया और सबसे कहने लगा कि नाविका बेईमान है, उसके हिस्से का सेब नहीं दे रही है। स्वभाव से ही उदार और सबसे प्रेम रखनेवाली नाविका को हर शाम कबीर की याद आती। दोनों मिलकर खेलते थे और पजल बनाते थे। नाविका ने सोचा, उसे बुलाया जाए। एक दिन नविका उसके घर गई और उसे अपने घर बुलाया। कबीर भी अकेले-अकेले उकता गया था, लेकिन उसमें बहुत अहंकार था। अब जब नाविका ने उसे आगे बढ़कर बुला लिया तो उसका मान बढ़ गया। उसी शाम वह बन-ठनकर गद्‌गद हो गया नाविका के घर। नाविका ने कहा—मुझे पता है कि तुम मुझसे क्यों नाराज हो। अच्छा बाबा! अब यह झगड़ा खत्म करते हैं।

कबीर बोला, 'जबतक मेरा हिस्सा मुझे नहीं मिलेगा, झगड़ा कैसे खत्म होगा?'

नाविका ने कहा, 'देखो, इस सेब के पेड़ को उगाने में तीन लोगों का हाथ है। तुमने सेब फेंका तो चलो एक तिहाई सेब तुम ले लो और चूँकि फेंका गया सेब मेरा था, इसलिए एक-तिहाई मैं लूँगी और जमीन मेरे पापा की थी, इसलिए एक-तिहाई सेब मेरे पापा लेंगे। हो गया सबका बराबर का हिस्सा!'

कबीर मान गया। दोनों फिर दोस्त बन गए।

कृष्ण धाम, तीसरा तल,
फ्लैट-३ सी, ७२ ए, बिधान सरानी
कोलकाता-७०००००६
दूरभाष : ९१६७७३५९५०

उसूल

लघुकथा

• बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु'

मेरा घर दुर्गा मंदिर के बगल में है। दिन के ग्यारह बज रहे थे। छोटा मंदिर था, श्रद्धालु कम होने लगे थे, लेकिन मंदिर के सामने एक भिखारी अब भी बैठा हुआ था।

मैंने देखा कि सड़क पार के घर के सामने एक बड़ी सी कार आकर रुकी और उसमें से चार लोग बाहर निकले। एक बुजुर्ग दंपती और एक युवक और युवती। उनकी चाल-ढाल से लग रहा था कि लड़की देखने आए हैं। सामने वाला पूरा परिवार उनके स्वागत में हाथ जोड़े खड़ा था।

एकाध घंटे बाद वे बाहर निकले। मैं अपने दरवाजे पर कुरसी डालकर अखबार पढ़ रहा था। आगंतुक परिवार के चेहरों पर मुसकान नाच रही थी, जबकि उन्हें छोड़ने आए लड़की के परिवार वाले जबरदस्ती मुसकरा रहे थे।

तभी बुजुर्ग महिला ने मंदिर की ओर इशारा करते हुए कहा कि चलो, दर्शन कर लेते हैं। पड़ोसियों को उत्सुकता रहती ही है, सो मैं भी उनकी गतिविधियाँ बड़े ध्यान से देख रहा था। मंदिर से निकलने के बाद महिला बोली, "आज बड़ा अच्छा दिन है, हमें उम्मीद से ज्यादा मिलने वाला है। कुछ दान-पुण्य भी कर लें।"

चारों ने अपने-अपने पर्स से छोटे नोट निकाले और भिखारी के कटोरे में डाल दिए। भिखारी ने एक पल को लड़कीवालों के चेहरे देखे, जो अब तक अपने घर के दरवाजे पर खड़े थे। फिर वह बोला, "मैं भिखमंगों से भीख नहीं लेता।" और ऐसा करते हुए उसने अपना कटोरा उलटकर मुँह फेर लिया।

डॉ. बख्शी मार्ग, खैरागढ़,
जिला-राजनांदगाँव-४९१८८१ (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ९४२४१११४५४

मिथिला का लोक-पर्व 'सामा-चकेवा'

• ध्रुव कुमार

धर्म और संस्कृति के इंद्रधनुषी रंग बिखेरती मिथिला की सुभाषित और पावन भूमि अपने विभिन्न सांस्कृतिक अनुष्ठान, लोकरंजन और सामाजिक महोत्सव के लिए सुविख्यात है।

जट-जटिन, रमखालया, किर्तिनियाँ, डाक-डाकिनी, करमा-धरमा, बिदापत नाच, हिरना-हिरनी जैसे सांस्कृतिक लोक विरासत में सामा-चकेवा अद्वितीय है। गीतों की स्वर सुधा में बेसुध हो शरद चाँदनी की दूधिया रात, गीत-सरिता में गुलजार करती ग्रामबालाएँ, कार्तिक मास का मनभावन मौसम चारों दिशाओं को जैसे अपनी ओर आकर्षित करता है। आसमान में बनहांस, खंजन फिल्ला, सिल्ली मुर्गाबी, बनमुर्गी दहियक, लालसर, हरदा ललमुनिया आदि अनेक किस्म के पक्षी झुंड में आकाश में उछालें भर रहे हों, तब सामा-चकेवा के आगमन का संदेश लेकर उतरते हैं और देखते ही देखते ग्रामबालाएँ पक्षियों के स्वागत में गाए जाने वाले गीत 'औरियवन' गाने लगती हैं। इसके बाद उतरती हैं सामा-चकेवा की मनभावन जोड़ी, तब ग्राम बालाएँ और बहुएँ हुलस कर गा उठती हैं—

देखे में जो आवे सखियाँ,
बाग रे बगइचा कि पोखरी,
मंडिलव कि नदिया रामा ऊँची रे महालिया,
से देखु-देखु ना कहाँ बाग के रखवरवा से पूछि लेहु ना,
कहाँ भैया रे माहलवा से पूछि लेहु ना
हमरा सामा के पिरितिया से न्योत देहु ना।

महिलाएँ बाग के रखवारे को फल फूल देकर मनाती है, ताकि वे सुख पूर्वक निर्विघ्न अपने सामा-चकेवा और अन्य पक्षियों को उनके बाग में चरने दे। नदी के मल्लाहों का पान-सुपारी, दूब, धान, फल-फूल से मनुहार कर स्त्रियाँ सामा-चकेवा को आदर से न्योत लेती हैं और तब शुरू हो जाता है महोत्सव का आयोजन।

यह महोत्सव लोक मूर्ति-कला और संस्कृति का जीवंत रूप है।

भाई-बहन के स्नेहिल रिश्ते के प्रति नमन करती स्त्रियाँ सामा-चकेवा को न्योता देकर अत्यंत खुश होती हैं। मिट्टी का सामा, मिट्टी का चकेवा और छोटे-छोटे अनेक किस्म के पक्षियों के पुतले-सतभैया (सप्त ऋषि), जुगल (चउक), खिड़लिच, पौती, पिटारी, डोली, कजरौटा, धूप-दीप, वृंदावन बनाने में स्त्रियाँ लीन हो जाती हैं। अंदी धान के चावल का पिठार घोलकर प्रत्येक पुतले को पोता जाता है और उस पर रंग-बिरंगे, लाल, हरे, नीले-पीले, गुलाबी, जामुनी, बैगनी, सुगापंखी आदि

सुपरिचित लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ के साथ बिहार शताब्दी के सौ नायक, बौद्ध धर्म और पर्यावरण, पं. दीनदयाल उपाध्याय का शिक्षा दर्शन, जैनधर्म की कहानियाँ आदि पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, नालंदा कॉलेज (पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय)।

रंगों की सुंदर नक्काशी की जाती है। इतना ही नहीं इन डालियों में खंजन चिरैया रंगीन पूंछ वाली ललमुनिया, सामा-चकेवा चराई करने वाले स्थल वृंदावन को छोटे-छोटे मिट्टी के कीट-पतंगे से करीने से सजाए जाते हैं।

मिट्टी के स्तंभ में नय सहरी की मूठ रोप कर वृंदावन का प्रतीकात्मक रूप तैयार किया जाता है। इन सभी पुतलों में चुगला का पुतला सर्वाधिक दर्शनीय होता है। डेढ़ हाथ लंबे मिट्टी के पुतले में एक शरीर दो चेहरे बनाए जाते हैं। एक चेहरा सफेद और आँख काली और दूसरा चेहरा काला और आँखें सफेद। जीभ लंबी सी होठ के बाहर लटकी हुई, जो उसके शिकायतें प्रवृत्ति का परिचायक होता है। दंत पंक्ति में एक दाँत लंबा सफेद तो दूसरा काला। सिर पर पटसन की लंबी से चुटिया और पटसन की ही कमर तक लटकती लंबी दाढ़ी-मूँछ। कुल मिलाकर हास्यास्पद रूप होता है, जो गहरे चटक रंगों की नक्काशी के बाद और भी हास्यास्पद बन जाता है।

इस पर्व से जुड़े कई कहानियाँ, कई किस्से मशहूर हैं। कुछ लोग इसे उत्तर बिहार के कृषि-कर्म से रिश्ता जोड़ते हैं तो कुछ धर्म से। अधिकांश लोक-नाटकों की तरह सामा-चकेवा भी उल्लिखित है।

पुराणों में कई स्थानों पर इस महोत्सव से संबंधित जिस कथा सूत्र का उल्लेख हुआ है, वस्तुत: वहीं इस पर्व-महोत्सव का मूल आधार है। सामा-चकेवा लोक पर्व है, जिसमें कोई भी धार्मिक अनुष्ठान नहीं होता। पद्मपुराण में इसकी कथा का वर्णन है। पद्मपुराण में चकेवा की बहन खिड़लिच का कहीं भी जिक्र नहीं है, जबकि कथा-गायन के समय स्त्रियाँ बहन के नाम पर खिड़लिच का ही नाम लेती हैं। मिथिला की महिलाएँ आज भी इसे महापर्व मानकर संपन्न करती हैं। कार्तिक शुक्ल पक्ष की पंचमी को रात्रि के प्रथम पहर से आरंभ होकर पूर्णिमा के अंतिम प्रहर तक यह महोत्सव चलता है। गीत प्राय: दो प्रकार के होते हैं—शुरुआत और अंत 'सामा झूमर' से होता है और दूसरा 'सामा-गीत', जो कथानक से संबंद्ध होते हैं, बीच में गाए जाते हैं। रात्रि का प्रथम पहर शुरू हुआ नहीं

कि 'सामा झूमर' सबों को बेसुध करने लगती है—

डाला ले बहार भेली बहिनी से खिड़लिच बहिनी,
चकवा भैया लेल डाला छीन सुनु राम सजनी।

सिर पर डाला लिए मिथिला की प्रत्येक देहरी से स्त्रियाँ झुंड बाँधकर ग्राम परिक्रमा को निकल पड़ती है। गाँव की प्रदक्षिणा करने के उपरांत वे किसी उपवन, तालाब, नदी, खलिहान, खेत कहीं भी गोलाकार में बैठ जाती हैं। अपना-अपना डाला बीच में रखती हैं। इसके पश्चात् धान की हरी दूध भरी बालियों और फल-फूल का भोग लगाकर काजल पारती (बनाती) हैं। सामा और खिड़लिच को काजल लगाने के बाद वह स्वयं लगाती हैं। फिर चुगला का गाल उसी कालिख से पोतती हुई विविध अपशब्द के साथ उसे कोसती हैं। इसके पश्चात् सामा-चकेवा के जीवन से संबंधित विभिन्न घटनाओं के आधार पर गीत गाती हैं—

सामा चरावे गेल हम सभे भैया के बगिया हे,
सामा हैराय गेल हो भैया वही बगिया है,
पैया तोरा पड़ू हो भैया पैरों पखारब हे,
छोड़ी देहूं सामा मोरा रामा छोड़ी देहूं हे।

एक गीत समाप्त हुआ नहीं कि दूसरा शुरू हो जाता है। सभी गीत भाई-बहन के जीवन के कथांश और पक्षियों के आगमन की खुशी में, खेतों की हरियाली के उल्लास में गाए जाने वाले गीत होते हैं। गाथा-गायन के पश्चात् वह वृंदावन में आग लगाती हैं। आग लगाते और बुझाते समय स्त्रियाँ स्वर में गा उठती हैं—

वृंदावन में आग लागल केयो ना बुझावे हे,
हमरा के सामू भैया घोड़ा चढ़ी आवे से,
हमरा से सभे भैया दूध से बुझावे हे।

इसके बाद वह चुगला की दाढ़ी और मूँछ में आग लगाती हुई उसका उपहास उड़ाती हैं और तरह-तरह से उसे कोसती है—

तोरे करनवा रे चुगला तोरे करनवा ना,
जरल हमरो बिनरा वनवां रे तोरे करनवां ना।

चुगला की शिकायती प्रवृत्ति और उसके कुटिल स्वभाव के कारण स्त्रियाँ उसे जला-जलाकर दंड देती हुई खुशी से ताली बजा-बजाकर नाचती हैं और सामा-चकेवा की शाप मुक्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती हैं। तब सामा फेरने की बारी आती है और स्त्रियाँ कितने आगे की डलियाँ अपनी दाईं ओर बैठी स्त्रियों की ओर बढ़ाती हैं और बाईं ओर से आती हुई डलिया वे स्वयं ले लेती हैं। डाला फेरने के समय सामा-चकेवा और अन्य पक्षियों को अगले वर्ष पुनः आमंत्रित करती हुई वे उनसे अनुनय विनय करती हैं—

साम चको-साम चको अइह हे-अइह हे
कूड़ खेत में बसिह हे-बसिह हे।

कार्तिक पूर्णिमा की रात सामा विसर्जन की रात होती है। पूर्णिमा की शांत स्निग्ध, दुग्ध-धवल रजनी, इधर स्त्रियाँ उदास हैं, आज सामा अपनी ससुराल चली जाएगी। पर वह ऐसे नहीं जाएगी, जाएगी भाई के दीर्घ और स्वस्थ सुखी जीवन की प्रार्थना करती हुई। भाई, सामा-चकेवा का डाला अपने सिर पर रखकर नदी की ओर बढ़ता है और पीछे-पीछे समदौनी यानी विदाई गीत की करुण धारा में भींगती स्त्रियाँ। सभी की आँखों में विदाई की पीड़ा के भरे जल कण हैं—

बाबा मोरे आ रे सामा, आ-आ नदिया बहाई गिले,
नदिया में फूले पुरइन फूल आ रे सामा नदिया भरायब दूध,
घुरी जाऊ फिरी जाऊ आरे हंसा रे चकेवा,
हमसे आंगन भेल सून।

अधजले चुगला व वृंदावन को स्त्रियाँ राह में कहीं फेंक देती हैं। नदी या तलाब तट पर पहुँचकर वह पाँच-छह विदाई गीत और गाती हैं। फिर केले के थम से बनी सँजी-सँवरी सुंदर डोली चारों कोने पर दीप जलाकर रखा जाता है। भाई इस डोली को अपने सिर पर रख पानी में थोड़ी दूर तक जाता है, फिर उसे जल में प्रवाहित कर देता है। प्रवाहित करते हुए पानी में जोर-जोर से हिलकोरा देते हुए कहता है—

जहाँ के पंछी तही उड़ि जा अगला बरस फिर से आ।

नदी घाट पर सामा प्रवाहित करने वालों का मेला सा लग जाता है। शरद चाँदनी की ललाम धारा में तैरती डोलियाँ, उसमें झिलमिलाती दीपमालाएँ एक मनोहारी दृश्य उपस्थित करती है। जल प्रवाह देने का अर्थ उन्हें सादर ससुराल भेजना है। सामा ससुराल जा रही है। स्त्रियों का हृदय वियोग-वेदना से फटा जा रहा है। लहराती, हहराती नदी धार में दूर जाती डगमगाती डोली को देख वे विकल हो उठती हैं—

गहरा ई-ई नदिया या-या अगम बहे धारा अकिरा,
मारे कि सामा रे चकेवा मोरा डूबियो न जाए,
धीरे-धीरे जाऊँ आहे भईया रे मलाहवा,
कि सामा रे चकेवा मोरा भसियो न जाए,
रोई रोई मरली ई-ई मिथिला के सखी सब,
कि अआरे रामा सामा मोरा घुरि फिरी आऊ।

डोली जब तक आँखों से ओझल नहीं हो जाती तब तक वे उन्हें अगले वर्ष के लिए आमंत्रित करती हुई उसके सकुशल यात्रा के लिए शुभकामनाएँ देती हुई गाती रहती हैं।

वरिष्ठ रंगकर्मी डॉ. उषा वर्मा कहती हैं, मिथिलांचल में लोक पर्व सामा-चकेवा भाई-बहन के प्यार और प्रेम के प्रतीक के रूप में मनाया जाता हैं और यह भाई-बहन के अटूट प्रेम को दरशाता है।

इस संबंध में एक कथा यह है कि सामा भगवान् श्रीकृष्ण की बेटी थीं। किसी कारणवश भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे शाप दे दिया। फलस्वरूप वह चिड़िया बन गई। तत्पश्चात् सत्यभामा के अनुरोध पर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि पृथ्वी पर उनकी पूजा होगी, जिससे भाई की आयु बढ़ेगी।

वस्तुतः यह एक सामाजिक पर्व है। इस अवसर पर गाँव की महिलाएँ एकत्र होकर आपस में मिलती-जुलती हैं और आनंद मनाती हैं।

साअ
व्योम, पी.डी. लेन,
महेंद्रू, पटना-८००००६ (बिहार)
दूरभाष : ९३०४४५५५१५

हिंदी साहित्य : आशय एवं स्वरूप

● अरविंद कुमार 'कबीरपंथी'

किसी भी भाषा के साहित्य को समझने से पूर्व हमें उस भाषा के बारे में यह जानना अति आवश्यक होता है कि देश, काल एवं परिस्थिति के अनुरूप समाज में उसकी अवस्थिति क्या है ? वही उस भाषा की परिभाषा तय करती है। जहाँ तक हिंदी भाषा का सवाल है तो यह एक भारतीय आर्य भाषा है, जिसका सफर लगभग १५०० ईसा पूर्व से शुरू होकर आज भी अनवरत जारी है। 'हिंदी' स्वयं में एक समुदाय है, जो कई उपभाषाओं या बोलियों का नेतृत्व करती है। यहाँ पर बड़ा सवाल यह है कि इसकी उत्पत्ति कैसे हुई और इसका विकास-क्रम क्या है ? यह जानने के लिए आइए एक नजर डालते हैं, भारतीय आर्यभाषाओं के विकास क्रम पर—

1. **प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (१५०० ईसा पूर्व से ५०० ईसा पूर्व तक)**
   (क) वैदिक संस्कृत (१५०० ई. पूर्व-१००० ई. पूर्व)
   (ख) लौकिक संस्कृत (१००० ई. पूर्व-५०० ई. पूर्व)
2. **मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (५०० ई. पूर्व से १००० ईसवी तक)**
   (क) पाली (५०० ई. पूर्व-१ ई.)
   (ख) प्राकृत (१ ई. से-५०० ई.)
   (ग) अपभ्रंश (५०० ई.-१००० ई.)
3. **आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (१००० ई. से अब तक)**
   (क) पश्चिमी हिंदी—
   (खड़ी बोली, ब्रजभाषा, बुंदेलखंडी, हरियाणवी अथवा बाँगरू और कन्नौजी)
   (ख) पूर्वी हिंदी—
   (अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी)
   (ग) बिहारी हिंदी—
   (मगही, मैथिली और भोजपुरी)
   (घ) राजस्थानी हिंदी—
   (ढूँढाणी अथवा पूर्वी राजस्थानी, मारवाड़ी अथवा पश्चिमी राजस्थानी, मेवाती अथवा उत्तरी राजस्थानी और मालवी अथवा दक्षिणी राजस्थानी)
   (ङ) पहाड़ी हिंदी—

लेखक। कमलेश्वर कृत 'कितने पाकिस्तान' का समीक्षात्मक अध्ययन पुस्तक के साथ-साथ राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में अनेक कविताएँ एवं निबंध प्रकाशित। विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सेमिनारों में प्रतिभाग करने हेतु लिखे गए आलेखों का प्रकाशन।

(मध्यवर्ती पहाड़ी : कुमाऊँनी एवं गढ़वाली और पश्चिमी पहाड़ी)

उपर्युक्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अतिरिक्त भी भाषाएँ हैं, जो आधुनिक आर्यभाषाएँ कहलाती हैं, लेकिन उनका हिंदी से संबंध नहीं है। वे भाषाएँ हैं—

(च) गुजराती
(छ) पंजाबी
(ज) मराठी
(ञ) बांग्ला
(ट) उड़िया
(ठ) असमिया आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी लगभग १७-१८ उपभाषाओं अथवा बोलियों का एक समूह है, जो वर्तमान भारत में मुख्यत: उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली आदि प्रांतों में बोली जाती है, किंतु भारत की राजभाषा होने के कारण यह भाषा पूरे देश में बोली जाती है।

हिंदी के बारे में जानने के उपरांत अब बात करते हैं साहित्य की, तो साहित्य किसी भाषा का संचित कोश माना जाता है, जिसकी उत्पत्ति 'स'+'हित' के परस्पर मेल से हुई है। 'स' का अर्थ है साथ और 'हित' का मतलब है कल्याण अर्थात् सामाजिक मंगल या लोक मंगल। इस प्रकार "साहित्य किसी भाषा का संचित कोश होता है, जिसमें लोकमंगल की भावना निहित होती है।"

साहित्य लोक मांगलिक इसलिए है, क्योंकि यह एक तरफ समाज की कमियों को उद्घाटित करता है। वहीं यह उन कमियों को दूर करने के लिए समाधान भी प्रस्तुत करता है, अर्थात् "साहित्य समाज का दर्पण है

और दीपक भी।" दर्पण प्रतिबिंब को दरशाता है और साहित्य समाज के प्रतिबिंब को दिखाता है, इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। वहीं दीपक का कार्य होता है 'राह दिखाना या प्रकाश करना'। साहित्य समाज की अच्छाइयों और बुराइयों को दिखाता है, इसलिए साहित्य को समाज का दीपक भी कहते हैं।

कहने का आशय यह है कि साहित्य और समाज एक-दूसरे के पूरक हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे साहित्यकारों ने साहित्य को समाज का प्रतिबिंब कहा है अर्थात् यदि समाज बिंब है, तो साहित्य उसका प्रतिबिंब है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को समाज का दर्पण और दीपक दोनों कहा है अर्थात् जैसा समाज होगा, वैसा ही साहित्य होगा और साहित्य के अनुरूप समाज बदलता रहता है। साहित्य में समाज का चिंतन और राष्ट्रहित की भावना निहित होती है।

हिंदी साहित्य : आशय

"हिंदी भाषा में संचित कोश को हिंदी साहित्य की संज्ञा दी जाती है, जिसमें हिंदी की समस्त बोलियों के साहित्य का संग्रह पाया जाता है।" अर्थात् यदि हिंदी विभिन्न बोलियों का समुदाय है, तो उन बोलियों में सृजित साहित्य ही 'हिंदी साहित्य' है।

हिंदी साहित्य का स्वरूप अथवा रूपरेखा

हिंदी साहित्य की दो प्रमुख विधाएँ मानी गई हैं—गद्य एवं पद्य। हालाँकि इन दोनों विधाओं के भी अनेक रूप होते हैं। पद्य के अंतर्गत छंदबद्ध एवं छंदमुक्त रचनाएँ, खंडकाव्य, प्रबंधकाव्य आदि और गद्य के अंतर्गत कहानी, नाटक, उपन्यास, रेखाचित्र, आलोचना, समीक्षा, निबंध आदि विधाएँ आती हैं।

हिंदी साहित्य में एक बात मुख्य रूप से दिखाई पड़ती है कि आरंभ में साहित्य का लिखित रूप पद्यात्मक ही मिलता है। इसका मुख्य कारण यह है कि पद्य में भावनाओं एवं अनुभूतियों को व्यक्त करने में सुविधा होती है। साथ ही इस विधा के माध्यम से कम-से-कम शब्दों में बड़ी बात को भी सरस ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। अनेक शोधों से यह पाया गया कि आरंभ में मनुष्य भावनात्मक अधिक रहता है, तब उसकी अभिव्यक्ति पद्य में अधिक होती है। धीरे-धीरे जब उसकी विचार-बुद्धि विकसित होती है, तब लगता है कि समाज सिर्फ भावनाओं पर नहीं चल सकता। उसके लिए चिंतन की भी आवश्यकता पड़ती है, उसे यथार्थ की कठोर भूमि पर भी उतरना पड़ता है, तभी उसकी भाषा गद्य की ओर उन्मुख होने लगती है।

भारतीय साहित्य की मूल रागिनी समूहमुखी है। इस तथ्य को सदैव स्मरण रखना होगा। देशकाल की स्थिति के अनुरूप जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिबिंब हिंदी साहित्य में मिलता है। समूह की ध्वनि जब बदलती है, तब साहित्य में भी परिवर्तन होता है। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य को प्रारंभ से अब तक चार कालों में विभक्त किया जा सकता है—

१. आदिकाल
२. भक्तिकाल
३. रीतिकाल
४. आधुनिक काल

हिंदी साहित्य का आदिकाल विविधताओं एवं अंतर्विरोधों से भरा पड़ा है। एक तरफ परंपरागत धार्मिक रूढ़ियों के विरोध में तमाम धार्मिक आंदोलन किए जा रहे थे, जिनके तहत सिद्ध, नाथ एवं जैन साहित्य की रचना हुई। वहीं राजनीतिक दृष्टि से यह काल घोर अशांत एवं हलचल भरा था। ८०० ई. के आसपास सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् भारतवर्ष में केंद्रीय सत्ता विखंडित हुई और देश छोटी-छोटी रियासतों में बँट गया और फिर उन रियासतों के मध्य उत्पन्न हुई आपसी कलह एवं वैमनस्य की भावना। सामंतों के अंदर विलासिता की भावना अधिक तीव्र हुई, साथ ही राज्य विस्तार पाने के लिए वे सामंत दूसरे प्रांतों या रियासतों में चढ़ाई करने में कोई भी मौका नहीं छोड़ते थे। परिणामस्वरूप उन सामंतों के आश्रय में रहने वाले दरबारी कवियों ने श्रृंगारपरक एवं वीरगाथात्मक रचनाएँ लिखनी शुरू कर दीं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग की वीरगाथात्मक रचनाओं को ही आधार बनाकर इस काल को 'वीरगाथा काल' नाम दिया है। चंदबरदाई का 'पृथ्वीराजरासो' इस काल की महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है। इसमें छंदों का विस्तार और भाषा का सौंदर्य दोनों ही मिलते हैं। आचार्य शुक्ल ने 'पृथ्वीराजरासो' को ही हिंदी का प्रथम महाकाव्य माना है, जोकि वीर एवं श्रृंगार रस प्रधान रचना है। इसमें चंदबरदाई ने पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का उल्लेख किया है।

उस समय देश में युद्ध की ध्वनि अत्यंत प्रबल थी। ऐसे में दरबारों में रहने वाले कवि अपने राजा की प्रशंसा में वीररस प्रधान रचनाएँ लिखकर उन्हें सभा में प्रस्तुत करते थे। कवि विशेष रूप से अपने राजा की प्रशंसा में लगे रहते और आवश्यकता पड़ने पर युद्धक्षेत्र में भी कूद पड़ते, जिससे उनकी कलम और तलवार दोनों को चलाने की कुशलता का परिचय प्राप्त होता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग की वीरगाथात्मक रचनाओं को ही आधार बनाकर इस काल को 'वीरगाथा काल' नाम दिया है। चंदबरदाई का 'पृथ्वीराजरासो' इस काल की महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है। इसमें छंदों का विस्तार और भाषा का सौंदर्य दोनों ही मिलते हैं। आचार्य शुक्ल ने 'पृथ्वीराजरासो' को ही हिंदी का प्रथम महाकाव्य माना है, जोकि वीर एवं श्रृंगार रस प्रधान रचना है। इसमें चंदबरदाई ने पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का उल्लेख किया है। प्रस्तुत है 'पृथ्वीराजरासो' महाकाव्य का एक अंश—

प्रिय प्रिथिराज नरेस जोग, लिखि कग्गर दिन्नौ।
लगन बरब रचि सरव दिन्न, दादस ससिलिन्नौ॥
सै ग्यारह अरु तीस, साष संवत परमानह।
जो पित्रीकुल सुद्ध बरन, बरि रक्खहु प्रानह॥

जगनिक कवि का 'आल्हाखंड' या 'परमाल रासो' भी बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसमें 'आल्हा और ऊदल' नामक दो वीर सरदारों की वीरतापूर्ण लड़ाई का वर्णन है। 'आल्हाखंड' एक वीररस प्रधान काव्य है, जिसे सर्वप्रथम सन् १८६५ ई. में फर्रुखाबाद के तत्कालीन जिलाधीश 'चार्ल्स इलियट' ने प्रकाशित करवाया था। आल्हाखंड वर्षा ऋतु में उत्तर प्रदेश के बैंसवाड़ा पूर्वांचल और बुंदेलखंड क्षेत्र में गाया जाया जाने वाला प्रमुख लोक काव्य है, जिसकी दो पंक्तियाँ तो आज भी अल्हैत के ढोल के गंभीर घोष के साथ सुनाई दे जाती हैं—

बारह बरिस लै कूकर जिएँ, औ तेरह लै जिएँ सियार।
बरिस अट्ठारह छत्री जिएँ, आगे जीवन को धिक्कार॥

अमीर खुसरो भी इसी काल में हुए। उनकी पहेलियों एवं मसनवियों का हिंदी साहित्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। खुसरो की कविताओं में युग-परिवर्तन का आभास मिलता है। उन्होंने अपना 'खलिकबारी' कोश तैयार करके भाषा के आदान-प्रदान में बहुत बड़ी सहायता पहुँचाई। उत्तर प्रदेश के एटा जिले के पटियाली नामक गाँव में जनमे 'अमीर खुसरो' ने सर्वप्रथम खड़ी बोली का प्रयोग काव्य भाषा के रूप में किया। इसी कारण इन्हें खड़ी बोली का पहला हिंदी कवि माना जाता है।

भारतेंदु की नई कविता हिंदी में नई प्रगति तथा साहित्यिक क्षेत्रों में हलचल हुई। परिणामस्वरूप जनता में शिक्षा के प्रति रुचि जागी। अभी तक ब्रजभाषा ही कविता का माध्यम थी। कवित्त, सवैया आदि छंदों का ही प्रयोग होता था, किंतु अब खड़ी-बोली का भी प्रयोग होने लगा। खड़ी बोली उस समय कर्कश थी, किंतु अब उसमें कोमलता लाने की चेष्टा आरंभ हो गई थी।

भक्तिकाल को दो मुख्य शाखाओं में विभाजित किया गया है—निर्गुण भक्तिशाखा और सगुण भक्तिशाखा। निर्गुण भक्तिशाखा को भी दो उपशाखाओं में विभाजित किया गया, जिनके नाम हैं—ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा। वहीं सगुण भक्तिशाखा को भी दो उपशाखाओं में बाँट दिया गया, जिनके नाम हैं—रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा के अंतर्गत वे संत कवि हुए, जिन्होंने धोषणा की—

जाति-पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै, सो हरि का होई॥

इनमें प्रमुख कवि हैं—कबीर। नानक, पीपा, दादू, रविदास, मलूकदास इत्यादि इसी समय में हुए। प्रेमाश्रयी शाखा के कवि सांसारिक प्रेम के मार्ग से परमात्मा के प्रति अनंत प्रेम व्यक्त करते थे। इन कवियों को सूफी कवि की संज्ञा दी गई है, जिनके यहाँ ईश्वर का विरह भक्त की प्रधान संपत्ति है। सूफी संसार में अपने प्रियतम परमात्मा की ही छवि सर्वत्र देखता है। जायसी, कुतुबन, मंझन, उस्मान, शेखनबी इत्यादि सूफियों में प्रमुख माने गए हैं। इनकी रचनाएँ पद्मावत, मृगावती, मधुमालती, चित्रावली आदि हैं, जिनमें दोहा-चौपाई वाली शैली (कड़वक) प्रयुक्त हुई है। इसके साथ ही राम भक्ति शाखा का उदय हुआ, जिसमें तुलसीदास प्रमुख हैं। नाभादास, प्राणचंद्र, हृदयराम आदि भी इसी काल में हुए। भक्तिकाल में एक ओर ज्ञानी संत कबीर, सूफी जायसी आदि हुए, वहीं रामभक्त तुलसी और कृष्णभक्त सूरदास भी हुए। यही वजह है कि इस काल को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा गया है। रामभक्ति से अधिक कृष्णभक्ति में जनता की रुचि हुई। परिणामस्वरूप रामभक्ति शाखा से अधिक इस शाखा के कवि अधिक हुए। सूरदास के अतिरिक्त रहीम, स्वामी हरिदास, हित हरिवंश, गंग, मीरा, रसखान, नरोत्तमदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं; हालाँकि तुलसीदास ने अनमोल साहित्य की रचना की। उनके अमर काव्यों में नैतिकता एवं मानवता के आदर्श भरे पड़े हैं।

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक लोगों का ध्यान रस, अलंकार, शब्द शक्ति और रीति निरूपण की ओर बढ़ा, इसलिए भक्तिकाल के बाद की रचनाओं का नाम रीतिकालीन कविता पड़ गया। डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रंथ के अनुसार—"व्युत्पत्ति, प्रयोग और परंपरा के आधार पर कहा जा सकता है कि 'रीति' शब्द संस्कृत के समान हिंदी में भी बहुत पहले से काव्य रचना-पद्धति के लिए रूढ़ है। रीति शब्द को इसी रूढ़ अर्थ में ग्रहण करते हुए कह सकते हैं कि 'रीतिकाव्य' वह काव्य है, जिसकी रचना विशिष्ट पद्धति अथवा नियमों को दृष्टि में रखकर की गई है। हिंदी भाषा-साहित्य के उत्तर-मध्यकाल में अनेक कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के नियमों की बँधी-बँधाई परिपाटी पर अपने काव्य की रचना की। इसलिए आज उन्हें 'रीतिकवि' और उनके काव्य को 'रीतिकाव्य' संज्ञा से अभिहित किया जाता है।"

रीतिकाल में साहित्य के शास्त्रीय ज्ञान को विशेष महत्त्व दिया गया। काव्यग्रंथ चमत्कार प्रधान हो गए। इस काल के प्रमुख कवि हैं—केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, बिहारीलाल, देव, पद्माकर, भूषण, घनानंद आदि। इन कवियों की भाषा साहित्यिक थी, बिहारी की विशेष रूप से। बिहारी के दोहों के लिए तो कहा भी जाता है—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नानक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करैं गंभीर।।

हिंदी की श्रृंगारिक कविता के विरुद्ध आंदोलन का श्रीगणेश उसी दिन से समझना चाहिए, जिस दिन भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपना 'भारत दुर्दशा' नाटक प्रस्तुत किया और कहा—

रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग की शुरुआत भारतेंदु युग से ही मानी जाती है। भारतेंदु युगीन कवियों ने अपने प्रतिपाद्य को कहीं व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया, तो कहीं उन्होंने अतीत के प्रेरणादायी प्रसंगों की चर्चा करके नवयुवकों को पुनर्जागरण का मंत्र दिया। अंग्रेजों की शोषण-नीति का प्रतिबिंब भारतेंदु हरीश्चंद्र की इन काव्य पंक्तियों में स्पष्ट दिखाई देता है—

भीतर-भीतर सब रस चूसै।
हँसि-हँसि के तन-मन-धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन! नहिं अँगरेज॥

भारतेंदु की नई कविता हिंदी में नई प्रगति तथा साहित्यिक क्षेत्रों में हलचल हुई। परिणामस्वरूप जनता में शिक्षा के प्रति रुचि जागी। अभी तक ब्रजभाषा ही कविता का माध्यम थी। कवित्त, सवैया आदि छंदों का ही प्रयोग होता था, किंतु अब खड़ी-बोली का भी प्रयोग होने लगा। खड़ी बोली उस समय कर्कश थी, किंतु अब उसमें कोमलता लाने की चेष्टा आरंभ हो गई थी।

देश के उत्कर्ष-अपकर्ष के लिए जिम्मेदार परिस्थितियों को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करके इस युग के कवियों ने जनमानस में राष्ट्रीय भावना के बीजवपन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जो द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त जैसे राष्ट्रभक्त कवियों के काव्य में खूब पोषित हुई। द्विवेदी युग का नामकरण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर किया गया।

खड़ी बोली को परिष्कृत एवं स्थिरता प्रदान करने वाले कवि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी खड़ी बोली कविता के प्रमुख कवि आचार्य बन गए, किंतु पंडित श्रीधर पाठक ने इनके द्वारा १९०३ ई. में 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन सँभालने से पूर्व ही 'खड़ी बोली' में कविता लिखकर अपनी स्वच्छंद वृत्ति का परिचय दे दिया था। द्विवेदी युग में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शंकर शर्मा, रामनेरश त्रिपाठी आदि विलक्षण शब्द निर्माता हुए। इस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे—राष्ट्रकवि के रूप में विख्यात मैथिलीशरण गुप्त, जिन्होंने १९१२ ई. में 'भारत-भारती' की रचना करके हिंदी-भाषियों में देश के प्रति गर्व और गौरव की भावनाएँ जाग्रत् कीं। जयद्रथ वध (१९१०), पंचवटी (१९२५), साकेत (१९३१), यशोधरा (१९३२), द्वापर (१९३६) आदि इनकी अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं। आधुनिक राष्ट्रीय कवियों में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि भी उल्लेखनीय हैं। माखनलाल 'चतुर्वेदी' की कविता 'चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ' अत्यंत प्रसिद्ध है और नवीन की पंक्तियाँ—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आए,
एक हिलोर उधर से आए,
त्राहि-त्राहि रव छाए॥

आधुनिक हिंदी कविता के तीसरे चरण का आरंभ छायावादी काव्य शैली से होता है। छायावाद का युग मोटे तौर पर सन् १९१८ ई. से १९३६ ई. तक माना जाता है। इस युग के चार प्रमुख कवि सदैव अविस्मरणीय रहेंगे—जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा। ये चारों कवि छायावाद के चार स्तंभ माने जाते हैं। इनकी विशेषताएँ हैं—व्यापक मानवीय चेतना, सौंदर्य बोध और संवेदनशीलता। सुभद्राकुमारी चौहान भी इसी समय हुईं, जिनकी 'खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झाँसी वाली रानी थी' कविता तो बच्चों के मुख पर आज भी ज्यों की त्यों किलकती रहती है। इसी युग में कवि हरिवंशराय बच्चन भी हुए, जिनकी 'मधुशाला' किसी परिचय की मोहताज नहीं है।

सन् १९३६ के बाद जिस धारा में कविता बही, उसका नाम 'प्रगतिवाद' है। कविता को जनता की संपत्ति कहा जाता है। इस युग में कवि व्यक्तिगत सुख-दुःख से हटकर समाज का सुख-दुःख चित्रित करने लगा। इस युग के प्रमुख कवि हैं—नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह सुमन, त्रिलोचन और गजानन माधव 'मुक्तिबोध'।

सन् १९४३ से जिस नई काव्यधारा ने जन्म लिया, उसे 'प्रयोगवाद' कहा गया। इसके प्रवर्तक थे—सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'। अज्ञेय के संपादन में 'तारसप्तक' नामक एक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें सात कवियों की रचनाएँ संकलित थीं। ये कवि थे—सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचंद जैन, प्रभाकर माचवे और रामविलास शर्मा।

सन् १९४३ से जिस नई काव्यधारा ने जन्म लिया, उसे 'प्रयोगवाद' कहा गया। इसके प्रवर्तक थे—सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'। अज्ञेय के संपादन में 'तारसप्तक' नामक एक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें सात कवियों की रचनाएँ संकलित थीं। ये कवि थे—सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचंद जैन, प्रभाकर माचवे और रामविलास शर्मा।

अज्ञेय के संपादकत्व में चार सप्तक प्रकाशित हुए। पहला 'तारसप्तक' नाम से सन् १९४३ में प्रकाशित हुआ, जिसका उल्लेख किया जा चुका है। दूसरा सप्तक सन् १९५१ में, तीसरा सप्तक सन् १९५९ में और चौथा सप्तक सन् १९७९ में प्रकाशित हुआ। अज्ञेय ने 'तारसप्तक' की भूमिका में प्रयोगवादी कवियों को 'राहों का अन्वेषी' कहा है। वहीं नंद दुलारे वाजपेयी ने प्रयोगवाद को 'बैठे ठाले का धंधा' कहा है।

सन् १९५५ के लगभग 'नई कविता का उदय हुआ। 'नई कविता' में पिछली काव्य धाराओं की अनेक प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। उसमें छायावाद का रोमांस भी है, प्रगतिवाद की सामाजिक चेतना और प्रयोगवाद का वैयक्तिक भावबोध भी नजर आता है। 'नई कविता' के प्रमुख कवि हैं—सर्वेश्वर दयाल सक्सेना दुष्यंत कुमार, कुँवर नारायण, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह आदि। नई कविता प्रवहमान है और इसका भविष्य उज्ज्वल है। नई कविता युग के अन्य प्रमुख कवि हैं—कैलाश वाजपेयी, नरेश मेहता, धूमिल, मणि मधुकर, ऋतुराज, चंद्रकांत देवताले, राजेश जोशी, मलयज, मंगलेश डबराल, रामदरश मिश्र, इंदु जैन, सुनीता जैन, अमृता भारती, स्नेहमयी चौधरी, कुसुम अंसल, आलोक धन्वा आदि।

आधुनिक युग की सबसे बड़ी विशेषता है—खड़ी बोली में गद्य का विकास। इसका इतिहास बड़ा रोचक है। आरंभ में खड़ी बोली मेरठ-दिल्ली व आसपास के क्षेत्रों में बोली जाती थी। अरब, फारस और

तुर्किस्तान से आए लोगों को बड़ी कठिनाई होती थी। दोनों ने एक-दूसरे की भाषा के कुछ शब्द सीखकर बातचीत का मार्ग निकाला, इस प्रकार सिपाहियों की छावनी में एक खिचड़ी भाषा पकी, जिसके दाल-चावल खड़ी भाषा के थे और नमक आगंतुकों ने मिलाया।

धीरे-धीरे खड़ी बोली के तीन रूप हुए—प्रथम शुद्ध हिंदी, जो साहित्यिक भाषा कही गई; द्वितीय उर्दू, जो मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र एवं कुछ हिंदुओं के घर-बाहर की बोलचाल की भाषा बनी। तृतीय हिंदुस्तानी, जिसमें हिंदी-उर्दू दोनों के ही शब्द प्रयुक्त होते थे। गद्य बहुत पहले से लिखा जाना प्रारंभ हो गया था, पर अधिक लिखा नहीं गया। बादशाह अकबर के यहाँ गंग भाट था। उसने 'चंद छंद बरनन की महिमा' खड़ी बोली गद्य में ही लिखी थी। हिंदी गद्य की प्रतिष्ठा चार प्रमुख लेखकों ने की, इनमें मुंशी सदासुखलाल और सदलमिश्र पहले उल्लेखनीय हैं, फिर लल्लूलाल और इंशाउल्ला खाँ का महत्त्व है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के इस क्षेत्र में आते ही हिंदी में उन्नति का युग आया। बांग्ला नाटकों का अनुवाद हुआ। मौलिक नाटकों की रचना हुई, उपन्यास लिखे गए और निबंध रचना का प्रारंभ हुआ। पंडित प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त इत्यादि ने गद्य साहित्य को भरपूर समृद्ध किया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना (९ जुलाई, १८९३ ई.) और 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के प्रकाशन से हिंदी को उन्नति और प्रोत्साहन का मार्ग मिला। समालोचनाएँ लिखी जाने लगीं। कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद के बाद जैनेंद्र, भगवतीचरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी इत्यादि ने अपूर्व योगदान दिया।

हिंदी साहित्य के विकासक्रम की यह एक झलक मात्र है, जिससे हिंदी की सशक्त परंपरा का पता लगता है। इतने कम समय में हिंदी साहित्य ने इतनी अद्भुत प्रगति की है कि आज विश्व साहित्य में उसका निजी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना, नाटक और कविता के क्षेत्र में वह विश्व की किसी भी भाषा के या तो समकक्ष या उससे बढ़कर है।

म.सं.-८ ए, ओम नगर कॉलोनी
(चामुंडा मंदिर के निकट)
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८५३२०५८३०९

लघुकथा

कुएँ में डाल

• अशोक गुजराती

अभिलाष ने सिक्यूरिटी गार्ड की नौकरी से प्रारंभ कर धीरे-धीरे पढ़-लिखकर जर्मनी की एंबैसी में दुभाषिए के पद तक अपना सफर तय किया था। उसका छोटा सा परिवार है। पूरी तरह व्यवस्थित। किसी की भी मदद करने को हमेशा तत्पर।

उसके सामने के फ्लैट में एक बुजुर्ग दंपती रहते हैं। वे हरदम अपने छोटे-मोटे काम अभिलाष और उसके परिजनों से करवाते रहते हैं। जब भी कोई कठिनाई आई—अभिलाष, उसकी पत्नी, बेटा या बेटी निस्स्वार्थ भाव से उनकी सहायता करने में पीछे नहीं हटते। इस प्रकार उनके बीच एक सुहृद पारिवारिक रिश्ता बन गया है। उस दंपती के बेटा-बहू साथ ही रहते हैं। दोनों नौकरी करते हैं। यह कारण हो अथवा जो भी, उनमें से कभी कोई अभिलाष या उसके परिजनों के काम नहीं आता।

उस दिन बुजुर्ग शाम को घूमने निकले। पास की बिल्डिंग का एक बूढ़ा उनके सामने पड़ गया। नमस्ते हुई तो बातचीत शुरू हो गई।

बूढ़ा बोला, "आप खुशकिस्मत हैं, जो आपको अभिलाष जैसा नेक पड़ोसी मिला है। वह और उसके घर के सदस्य सदा इसके-उसके काम में आते रहते हैं। गाँव के हैं और अपने संस्कार अभी भी सँजोए हुए हैं।"

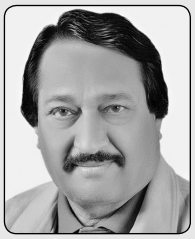

सुपरिचित लेखक एवं व्यंग्यकार। 'तुम क्या जानो', 'व्यंग्य के रंग', 'अंगुलिहीन हथेली', 'सौर जगत् का एक बंजारा', 'जंगल में चुनाव', 'विज्ञान : हँसते-हँसाते', 'कालू का कमाल', 'लालची भालू', 'खुशी के दीये' आदि कृतियाँ चर्चित और पत्र-पत्रिकाओं में ४५० से ज्यादा रचनाएँ प्रकाशित। कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।

बुजुर्ग ने नाक-भौं सिकोड़ी—"अरे! आप नहीं जानते उनको। वे सारे बहुत मतलबी हैं। मीठा-मीठा बोलकर प्रसिद्धि के लिए ऐसा दिखावा करते हैं कि उनसे बड़ा परोपकारी कोई नहीं। असल में लोगों को मूरख बनाकर अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं।"

ई-१३१७, भैरों रेजीडेंसी कनाटिया रोड,
मीरा रोड (पूर्व), जिला थाणे-४०११०७ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ०९९७१७४४१६४
ashokgujarati07@gmail.com

हूरों के देश का सफर

● अंजु रंजन

मेरा विदेश सेवा में आने का एक और कारण था—विभिन्न देशों की यात्रा करना। इसलिए जब दिल्ली में ट्रेनिंग के दौरान पता चला कि हमारी अफगानिस्तान यात्रा होने वाली है तो रोमांच हो आया। तुरंत घर पर नहीं बताया कि सब डर जाएँगे और व्यर्थ यात्रा में विघ्न डालेंगे। खासकर मैया, दादी और बाबूजी। पर विघ्न कैसे डालते—अभी हमारी बातचीत बंद थी। वे सब मुझसे अभी तक नाराज थे, क्योंकि मैंने लव मैरिज जो की थी!

मेरी नई-नई शादी हुई ही थी। यानी साल २००३ की गरमियाँ थीं। दोनों ओर तनातनी का माहौल था। फिर भी यह जानकर कि मैं अफगानिस्तान जा रही हूँ, मैया ने फोन किया था और ठीक से रहने की हिदायत दी थी। मेरे पति ने कहा था कि कुपथ्य (यानी नॉन-वेज) न खा लेना! उन दिनों हमारा प्यार जवाँ था और हम असंभव सपने देखा करते थे और कसमे-वादे किया करते थे। मैंने पति-प्रेम में वादा किया था कि मैं भी उनकी तरह शाकाहारी बनूँगी। मांस-मछली का सेवन वर्जित कर लूँगी। मेरे पति को मुझ पर और मेरे वादे पर बिल्कुल विश्वास न था।

खैर, विश्वास हमारे टीम में से किसी को भी न था कि हमारी यात्रा हो भी पाएगी। अभी दो साल पहले ही यह देश तालिबानों के कब्जे में था और राष्ट्रपति को जिंदा इलेक्ट्रिक पोल पर लटका दिया था। यह सब सुनकर हमारे होश फाख्ता हो गए। हमारे टीम लीडर थे—डीन, विदेश सेवा संस्थान, श्री संतोष कुमार, जो भारत सरकार में सेक्रेटरी थे, विदेश मंत्रालय में सबसे वरिष्ठ अधिकारी! आपत्ति अफगानी साइड से भी थी। वे हमारी सुरक्षा को लेकर आश्वस्त नहीं थे, इसलिए बार-बार हमारे मंत्रालय का वीजा निवेदन ठुकराया जा रहा था। फिर ऐसी खबर आई कि अफगानिस्तान में पुरुष अधिकारी तो जा सकते हैं, परंतु महिला अधिकारियों को प्रवेश नहीं दिया जाएगा। हम दो लड़कियाँ थीं—दोनों मायूस हो गईं। हम मरे मन से कक्षा में लड़कों की तैयारियाँ देखतीं। लड़के वहाँ से लाने के लिए शॉपिंग लिस्ट बना रहे थे—अफगानी कॉर्पेट, कंबल, ड्राई-फ्रूट, लेदर बैग, लैपिस-लपिस पत्थर की सिल्वर जवेलरी! और भी प्लान थे उनके कि सलमा डैम, जो भारत सरकार का प्रोजेक्ट है—देखेंगे। श्री निवास का प्लान था कि पूरे अफगानिस्तान में वह वीडियो शूटिंग करेगा। उसके पास सोनी का हैंडी कैम जो था! यह यात्रा चार-पाँच शहरों में दस दिनों के लिए हो रही थी, इसलिए सब बेहद उत्साहित थे। थोड़े डरे तो थे, पर रोमांचित थे। पर उससे क्या! हम लड़कियाँ उस रोमांच से वंचित थीं। पहली बार लड़की होने से बैरीयर का आभास हुआ। काश! हम पुरुष होते तो यह वीजा बैन न होता।

सुपरिचित लेखिका। कविता-संग्रह 'प्रेम के विभिन्न रंग', 'विस्थापन और यादें' के साथ इनका बाल्य-काल का संस्मरण 'वो कागज की कश्ती' आदि पुस्तकें प्रकाशित। हाल में ही 'मेरी कोरोना डायरी' के लिए 'नयी धारा' रचना सम्मान से सम्मानित किया गया।

पर भला हो हमारे डीन का, जिन्होंने हमारी मनोकामना पूरी कर दी। बड़ी मशक्कत के बाद अफगान अधिकारियों ने महिला प्रशिक्षु अधिकारियों का भ्रमण अनुमोदित किया।

हाँ छूटा गाँव है
बादल पे पाँव है
अपनी तो चल पड़ी
देखो ये नाव है!

हम दोनों लड़कियों ने अलग-अलग बैठना कुबूल किया कि हम खिड़की से काराकोरम रेंज देखते हुए जाएँगे।

अद्‌भुत दृश्य था! पहली बार हमने पाकिस्तान को हवाई मार्ग से क्रॉस किया और हमारा विमान अफगानी आकाश में उड़ चला। हमारे दाहिने तरफ काराकोरम अपने पूरे शान-शौकत वे खड़ा था! बादल बार-बार चोटियों से लिपट रहे थे। पर यह क्या! इन पहाड़ों और रास्ते में एक भी पेड़ नहीं था! पूछने पर पता चला कि रशिया के द्वारा जैविक रासायनिक हथियार से सारे पेड़-पौधे मर गए हैं, जमीन विषाक्त और बंजर हो चुकी है, जिस पर कोई पौधा नहीं पनपता। हवाई जहाज में हम तीन घंटे खिड़की से चिपककर बैठे रहे। तभी हमारी ब्रीफिंग हुई कि हमें सिर पर हमेशा दुपट्टा ढककर रखना है। मुझे बड़ा अटपटा लगा। पर डेमॉक्रेसी आने के बावजूद अफगानिस्तान में लड़कियों को दुपट्टा रखना अनिवार्य था।

जैसे ही हमने काबुल हवाई अड्डे पर कदम रखा—अफगानी विदेश मंत्रालय से बहुत से सिक्योरिटी स्टाफ और प्रोटोकॉल के लोग आए हुए थे। डीन एफ.एस.आई. संतोष सर के आभामंडल और सीन्यॉरिटी का हमें

अहसास होने लगा था। सब उन्हें 'एक्सेलेंसी' कहकर संबोधित कर रहे थे। सुखद आश्चर्य यह हुआ कि अधिकांश लोग हिंदी-उर्दू बोल रहे थे और अंग्रेजी भी। थोड़ी देर में हमारा सामान आ गया और हम एयरपोर्ट से बाहर आ गए। बाहर हमारे दूतावास के ब्लू नंबर प्लेट वाली बुलेट प्रूफ माज्डा मिनी बस खड़ी थी। बस की दीवारों और छत में ढेर से छेद थे। मुख्यत: डेंट पूछने पर ड्राइवर ने बताया कि इसमें अकसर गोलियाँ चलती हैं। वहाँ कभी भी मार्केट में या रिहायशी इलाकों में अचानक गोलीबारी होने लगती है। बाप रे! हम सब अंदर-ही-अंदर सहम गए। श्रीनिवास ने हैंडी कैम ऑन कर लिया।

अभी शाम के चार बज रहे थे। बाहर धूप ढल रही थी, पर अभी भी सूरज में तपिश थी। हम सब लपककर बस में सवार हो गए। हमारे दूतावास के प्रोटोकॉल ऑफिसर हमें रास्तों के बारे में और शहर के बारे में बताते जा रहे थे। होटल पहुँचते-पहुँचते हमने काबुल को विहंगम दृष्टि से नाप लिया। बाजार बिल्कुल भारत के बी-टाउन मार्केट की याद दिला रहे थे, लग रहा था, जैसे मैं लखनऊ का अमीनाबाद पहुँच गई हूँ। सारे घरों में बहुत ऊँची चहारदीवारी थी, सो अंदर से घर कैसे थे, यह तो न दिखा, पर कुछ चहारदीवारियाँ कच्ची थीं और दरकी व टूटी हुई भी, सो दिखा कि घर मुख्य गेट से बहुत दूर बनाए गए थे। ढीले सलवार-कुरते में बच्चे खेल रहे थे। किसी भी देश में चाहे कितनी भी क्राइसिस क्यों न हो, बच्चे मासूम बचे ही रहते हैं। हमारे प्रोटोकॉल ऑफिसर ने ममता से कहा। सड़कों के बीच में कटान थी, जैसे किसी ने एक निश्चित अंतराल पर सड़क पर कंकरीट की क्यारियाँ बनाई हों पूछने पर पता चला कि शहर में टैंकर और भारी वाहन की वजह से सड़क काट दी गई थी। तो सड़क भी युद्ध की विभीषिका झेलती हैं! मैंने दु:ख से सोचा। एयरपोर्ट से काबुल होटल पहुँचने में करीब आधा घंटा लगा होगा। काबुल होटल किसी समय बेहद जवाँ और हैपनिंग रहा होगा, इसलिए बेहद खूबसूरती से बनाया गया था। छत से बड़े-बड़े झाड़-फानूस और दीवारों पर नीली लापिस लजूली की कलाकृतियाँ लटक रही थीं।

रिसेप्शन के पीछे काबुल का नक्शा था। काबुल अफगानिस्तान की राजधानी और सबसे बड़ा शहर है—देश का पूर्वी भाग। यह नगर पालिका भी है, जो २२ जिलों में विभाजित है। २०२१ में अनुमान के अनुसार काबुल की जनसंख्या ४.६ मिलियन है और यह अफगानिस्तान के राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक केंद्र के रूप में कार्य करता है। तेजी से होते शहरीकरण ने काबुल को दुनिया का ७५वाँ सबसे बड़ा शहर बना दिया है।

काबुल हिंदू कुश पहाड़ों के बीच एक सँकरी घाटी में स्थित है और काबुल नदी से घिरा है, जिसकी ऊँचाई १,७९० मीटर (५,८७३ फीट) है, जो इसे दुनिया की सबसे ऊँची राजधानियों में से एक बनाती है। कहा जाता है कि यह शहर ३,५०० साल से अधिक पुराना है, एशिया के चौराहे पर स्थित। पश्चिम में इस्तांबुल और पूर्व में हनोई के बीच लगभग आधा, यह दक्षिण और मध्य एशिया के व्यापार मार्गों के साथ एक रणनीतिक स्थान पर है, और प्राचीन सिल्क रोड का एक प्रमुख माइलस्टोन है।

काबुल भारतीय मौर्य कुषाण, खिलजी तथा मुगल साम्राज्य का हिस्सा रहा है। कई विदेशी ताकतों द्वारा शासित, आखिरकार अफगान दुर्रानी साम्राज्य का हिस्सा बन गए। अहमद शाह दुर्रानी के पुत्र तैमूर शाह दुर्रानी के शासनकाल के दौरान १७७६ में काबुल अफगानिस्तान की राजधानी बना। १९वीं शताब्दी के प्रारंभ में अंग्रेजों ने शहर पर कब्जा कर लिया, लेकिन विदेशी संबंध स्थापित करने के बाद उन्हें अफगानिस्तान से सभी बलों को वापस लेने के लिए मजबूर होना पड़ा।

काबुल में शांति काल १९९७ में सोवियत संघ के काबुल पर कब्जा के बाद समाप्त हो गई, जबकि १९९० के दशक में विभिन्न विद्रोही समूहों के बीच गृहयुद्ध ने शहर के अधिकांश हिस्से को तबाह कर दिया। २००१ से शहर पर अमेरिका के नेतृत्व में नाटो सहित बलों के एक गठबंधन का कब्जा था। शायद इसलिए हमारे काबुल भ्रमण अपेक्षाकृत सुरक्षित था।

हमारा चेक-इन तुरंत हो गया और हमें नए सेट ऑफ इंस्ट्रक्शन मिले, जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण था कि हम कभी भी होटल छोड़कर अकेले बाहर नहीं जाएँगे और हम सब ग्रुप में ट्रैवल करेंगे। दूसरी बात यह कि ब्रेकफॉस्ट के लिए छह डॉलर अलग से देने होंगे। हाय! अभी तो मेरे पास एक भी डॉलर नहीं है, शायद भूखे रहना पड़ेगा।

रात को एक और ट्रैजेडी मेरा इंतजार कर रही थी। काबुल होटल काबुल का एकमात्र ठीक-ठाक सुरक्षित होटल था, इसलिए बुकिंग फुल थी। हम लोग चूँकि अफगान विदेश मंत्रालय के मेहमान थे, इसलिए बड़ी मुश्किल से कुछ कमरे हमारे डेलीगेशन के लिए अलॉट किए गए थे। जाहिर है, हमें कमरा शेयर करना था। हम दो लड़कियाँ थीं, इसलिए हम दोनों को एक कमरा मिला। अल्पना भागकर कमरे में पहुँची और बेड पर अपना पोटला गाड़ दिया। मुझे संतोष सर की कुछ मदद करनी थी, तो मैं उनके साथ खड़ी रह गई। जब मैं कमरे में पहुँची तो अल्पना कपड़े बदलकर घर से लाया हुआ ठेकुआ और पेड़किया (गुझिया) खा रही थी। उसने मुझे ऑफर नहीं किया, इसलिए माँगना मुझे बुरा लगा। शाम के छह बज रहे थे और मुझे भूख लग रही थी। भारत में मैंने सोचा नहीं था कि काबुल में खाने के लाले पड़ जाएँगे और बाहर निकलना दूभर होगा, वरना मैं भी कुछ ले आती। खैर, सो जाना भूख का सबसे अच्छा इलाज है। सो मैं भी कपड़े बदलकर कमरे में आई और बेड के एक किनारे बैठना चाहा कि अल्पना चिल्ला पड़ी, "अंजु, यहाँ मत बैठो। तुमको सोफे पर सोना पड़ेगा।"

"क्यों?" मैं चौंक गई।

"क्योंकि तुम्हें टीबी है।"

"क्या बोल रही हो तुम?"

"तुमने छुट्टी लिया था न कि तुम्हें टीबी है और तुम उसका डायग्नोसिस और इलाज करवाना चाहती हो। इसलिए मेरे पति ने मुझे मना किया है कि मैं तुम्हारे करीब रहूँ। इसलिए तुम अलग सोओ।"

"ओह नो!"

"ओह एस।"

"अल्पना, यार वह तो मेरे आँख में टीबी हुआ था, कटेनियोयस टीबी, यह फेफड़े वाला पल्मनेरी टीबी नहीं है, तुम गलत समझ रही हो। यह बिल्कुल भी कंटेजस नहीं है।" मैं गिड़गिड़ाई।

"फिर भी तुम सोफे पर ही सोओगी।"

"यार, सोफा कितना गंदा और झूला सा है, ऊपर से दो सीटर है।"

"प्लीज अल्पना, मुझे ठंड लगेगी और सचमुच अस्थमा हो जाएगा। मुझे याद है कि मैं रुआँसी हो गई थी, तुम मेरा और अपना समय बरबाद कर रही हो।" कहकर अल्पना ने करवट बदली और बेड स्विच ऑफ कर दिया। हताश और बेहद आहत मैं टटोलते हुए सोफे पर जा गिरी।

ऐसा क्यों होता है। इतना अपमान और लांछन! अल्पना इतनी क्रूर और अजीब सी क्यों है? शायद वह मेरे देहाती आउटलुक की वजह से मुझे नापसंद करती है। वह स्वयं इंदिरा गांधी रेसडेंटियल कॉन्वेंट से पढ़ी है और दिल्ली में रहकर यू.पी.एस.सी. की तैयारी की है, इसलिए अपने आपको हरदम सुपीरिअर सिद्ध करने की कोशिश करती है। क्या करूँ, संतोष सर को बताऊँ या पांडेय सर को? वे लोग कमरे में सो रहे होंगे। अब सुबह बात करूँगी। बड़ी देर तक मुझे नींद नहीं आई। भारत फोन करने का मन कर रहा था, पर इंटरनेशनल कॉल बहुत महँगा था और मेरे पास तो नाश्ते तक के पैसे नहीं थे।

सुबह हमारे कई बैचमेट नाश्ता कर रहे थे, पर हम जल्दी नीचे नहीं उतरे, क्योंकि मेरे पास डॉलर नहीं था। भूख से पेट में चूहे दौड़ रहे थे, क्योंकि आखिरी खाना मैंने भारत में खाया था। पर इसका अफसोस करने का समय नहीं था। हमें दुबारा ब्रीफ किया गया। संतोष सर ने मीटिंग में हम सबको डिसिप्लीन से शांत बैठने को कहा। "यही सब तो तुम सबको सीखना है कि फोर्मल मीटिंग में कैसे खुद को कंडक्ट करते हैं। कुछ प्रश्न पूछने पर कैसे रीएक्ट करते हैं और कौन से प्रश्न पूछने चाहिए।" हमें हार्दिक संतोष इस बात का था कि हमें साड़ी नहीं पहनना पड़ रही थी, सलवार-सूट सूटेबल थी, क्योंकि दुपट्टा हम सिर पर रख सकती थीं। लड़कों को बंदगला सूट और लड़कियों को सलवार सूट!

शाम को हमें राजदूत महोदय के यहाँ रिसेप्शन डिनर का आमंत्रण था। भारतीय हाई कमिशन काबुल का बहुत महत्त्वपूर्ण संस्थान है। भारत हमेशा अफगनिस्तान का दोस्त रहा है। प्राचीन काल से ही दोनों देशों के बीच सामरिक और राजनयिक संबंध रहे हैं। भारतीय राजदूत और वहाँ के अधिकारियों का काबुल में बहुत सम्मान है, क्योंकि भारत अफगानिस्तान के इंफ्रास्ट्रक्चर विकास एवं इंस्टिट्यूशन बिल्डिंग में अफगान को सहयोग कर रहा है। इसलिए हाई कमिशनर के यहाँ रिसेप्शन डिनर महत्त्वपूर्ण था।

पहली मीटिंग अफगानी फॉरेन सेक्रेटरी के साथ थी। मीटिंग में सिर्फ हमारे टीम लीडर संतोष सर को ही बोलना था, हमें तो सिर्फ खाना था। अफगानी आवभगत के क्या कहने! सबके लिए कार्पेट मढ़ी गद्देदार कुरसी और इसके सामने सुंदर नक्काशी की हुई चौकोर टेबल। टेबल पर ड्राई फ्रूट्स और मेवे की इफरात! साथ में अफगानी ब्रेड (बहुत कड़ा पर नमकीन खिंचा हुआ बटर ब्रेड), अंडे और लैंब चॉपस! हमारी तो बाँछें (अगर शरीर में कही होती हों तो) खिल गईं! जिन्होंने छह डॉलर सुबह नाश्ते में लुटाए थे, अब लुटे-पीटे नजर आ रहे थे—और हम 'लेसर मोर्टल' छककर खा रहे थे। संतोष सर ऊँची कुरसी पर विदेश सचिव के साथ स्ट्रैटेजिक चर्चा में व्यस्त थे। इसी दौरान किसी ने जोर से अखरोट या पिश्ता तोड़ा!

इस शांत फोर्मल माहौल में अखरोट खटकाने की आवाज 'टक्क' से पूरे कमरे में फैल गई। पता चला कि ए.के. पांडेय सर ने अखरोट फोड़ा था। संतोष सर ने कड़ी नजर से उन्हें देखा। तब पांडेय सर (जो अलमस्त टाइप इनसान थे) ने लापरवाही से उन्हें देखा और कहा, 'यू कंटिन्यू', हम लोग खाना छोड़कर अटेंशन की मुद्रा में बैठ गए, यह सोचकर दिल काँप रहा था कि संतोष सर क्या प्रतिक्रिया देंगे। अभी थोड़ी देर पहले ही उन्होंने हम सबको शांत बैठने के लिए ब्रीफ किया है और यहाँ लोग खटाखट अखरोट तोड़ रहे हैं, जो बिल्कुल भी उन्हें स्वीकार्य नहीं होगा। पर वे बहुत बढ़िया इनसान हैं। उन्होंने उस समय भी कुछ नहीं कहा और बाद में भी नहीं! दूसरी महत्त्वपूर्ण मीटिंग अफगानी पार्लियामेंट में थी। हम सब उत्साहित थे। वहाँ एक बड़े डाइनिंग टेबल पर हम सबको बिठाया गया। फिर से खाना और चाय सर्व किया गया। अब नाश्ते में एक भी डॉलर नहीं खर्च करेंगे, हम सब सोच रहे थे। लेकिन जब हम सब मीठे ब्रेड पर चाकू से बटर पोतने में लगे हुए थे, तभी संतोष सर ने मुझे देखा। दृष्टि मिलने पर इशारा किया। मुझे कुछ समझ में नहीं आया। जैसे डम शेराड में करते हैं—उन्होंने क्वेश्चन मार्क हवा में बनाया। मैं समझ गई कि मुझे स्पीकर महोदय से कोई प्रश्न पूछने हैं। हाय राम कौन सा प्रश्न पूछूँ। तभी याद आया कि क्लास में हम जे.एन.यू. के प्रोफेसर या किसी और संभाषण के दौरान एक ही प्रश्न पूछते थे महिलाओं की स्थिति पर! 'महोदय, अफगानी पार्लियामेंट में महिलाओं की क्या स्थिति है, यहाँ महिलाओं की कितनी प्रतिशत सहभागिता है?' मैंने यह सवाल पूछ लिया। संतोष सर की आँखों में संतोष और गर्व था। उत्तर बेहद सकारात्मक था। 'अफगानी संविधान महिलाओं के तैंतीस प्रतिशत सहभागिता को सुनिश्चित करता है। अभी हमारे यहाँ प्रथम सरकार में ही दस प्रतिशत महिलाओं की भागीदारी है, अगली सरकार में इसे संपूर्णत: हासिल करने की योजना है।'

'बहुत धन्यवाद सर!' और तब हम राष्ट्रपति करजई को कॉल ऑन करने गए। राष्ट्रपति भवन पर अमेरिकी/नाटो सिक्यारिटी बीफ्ड तैनात थी। बहुत कठिन सुरक्षा प्रक्रिया से गुजरकर हम राष्ट्रपति के कक्ष तक पहुँचे। राष्ट्रपति गर्मजोशी से हमारे डीन संतोष सर से मिले।

वे बहुत स्मार्ट और खूबसूरत व्यक्ति लगे। कढ़ा हुआ हरा चोगा करजई साहब को विशिष्ट बना रही थी। वे फ्लुएंट व शुद्ध हिंदी बोलने वाले निकले। पता चला कि राष्ट्रपति करजई शिमला में पढ़ चुके हैं। तब संतोष सर ने हमारे एक बैचमेट विश्वेश को आगे कर दिया और हाथ मिलाने को कहा। विश्वेश शिमला का है। वह भी बेहद स्मार्ट और खूबसूरत नौजवान है।

जब हम फोर्मल मीटिंग करके बाहर निकले तो प्रोटोकॉल ऑफिसर हमें कुछ जगह दिखाने ले गए, क्योंकि काबुल अपने ऐतिहासिक उद्यानों, बाजारों और महलों के लिए जाना जाता है। बाबर गार्डेन और दारुल

अमन पैलेस सुप्रसिद्ध उदाहरण हैं। २०वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यह पर्यटकों को आकर्षित करनेवाले हिप्पी ट्रेल पर काबुल उनका ठिकाना बन गया था। काबुल शहर को मध्य एशिया का पेरिस भी कहा जाता था।

बाग-ए-बाबर या बाबर गार्डन अफगानिस्तान के काबुल में एक ऐतिहासिक पार्क है। बाबर का मकबरा भी यहीं स्थित है। माना जाता है कि उद्यान १५२८ ईस्वी के आसपास विकसित किया गया था, जब बाबर ने काबुल में 'एवेन्यू गार्डन' के निर्माण के आदेश दिए थे। बाद में जहाँगीर और रुकाया बेगम ने १६०७ में अफगानिस्तान यात्रा के दौरान इस उद्यान को दीवारों से घेरने के आदेश दिए थे (बाबरनामा)। रुकैया बेगम का मकबरा भी यहीं स्थित है। अब मुझे बस इतना याद है कि पेड़ों की कतार के बीच से हम लोग मकबरे तक पहुँचे थे, जहाँ पानी के नहर जैसे चैनल थे, जैसा कि ताजमहल में है। बाद में हम काबुल म्यूजीयम और दारूल पैलेस भी गए। पैलेस एकदम जर्जर अवस्था में था, जिसका जीर्णोद्धार किया जा रहा था। यह जगह हम देखकर तुरंत गाड़ी में बैठ जाते। बाहर हमारे अलावा कोई टूरिस्ट नहीं था।

शाम को हमें राजदूत महोदय के यहाँ रिसेप्शन डिनर का आमंत्रण था। भारतीय हाई कमिशन काबुल का बहुत महत्त्वपूर्ण संस्थान है। भारत हमेशा अफगनिस्तान का दोस्त रहा है। प्राचीन काल से ही दोनों देशों के बीच सामरिक और राजनयिक संबंध रहे हैं। भारतीय राजदूत और वहाँ के अधिकारियों का काबुल में बहुत सम्मान है, क्योंकि भारत अफगानिस्तान के इंफ्रास्ट्रक्चर विकास एवं इंस्टिट्यूशन बिल्डिंग में अफगान को सहयोग कर रहा है। इसलिए हाई कमिशनर के यहाँ रिसेप्शन डिनर महत्त्वपूर्ण था।

हम साड़ी पहनकर और सिर पर घूँघट लेकर दुलहन की तरह तैयार हुईं। पर अंदर इंडिया हाउस के गेट में घुसते ही हमने घूँघट उतार लिया और अफगानी औरतों ने बुर्के।

हाई कमिशनर विवेक काटजू सर ने सबका स्वागत किया। डीन साहब के सम्मान में कई गण्यमान्य अफगान व्यक्ति आमंत्रित थे—औरतें भी आमंत्रित थीं। उन्होंने कतर एयर होस्टेस की तरह सिर पर कढ़ी हुई टोपी पहन रखी थी। बिना बुर्के में पहली बार हम अफगानी औरतों को देख रहे थे। बला की सुंदर थीं वे। झलमल सफेद रंग, तीखे नैन-नक्श, काले बाल और सुर्ख होंठ। मैं आँख फाड़कर देखती रह गई। तब उस औरत, जिसका नाम फातिमा था, ने बताया कि वह बसरा से है, जहाँ की औरतें हूर यानी परी कहलाती हैं और वे परियों सी ही सुंदर होती हैं। 'मैं मान गई आपको देखकर।' फातिमा अफगानी विदेश मंत्रालय की इंटर्न थी और उसने अमेरिका के बर्कले यूनिवर्सिटी से अंग्रेजी में पोस्ट ग्रैजुएशन किया था। तालिबानी शासन खत्म होने के बाद वह स्वदेश वापस लौट आई थी और विदेश मंत्रालय जॉइन कर लिया था। वह हमारी लायसो ऑफिसर थी और हमारे साथ हेरात व सलमा डैम प्रोजेक्ट दिखाने साथ चलनेवाली थी।

हाईकमिशनर सर ने हम सबका बहुत खयाल रखा और खासकर हम महिला अधिकारियों का, हमारी अफगानिस्तान की यात्रा उनके रिकमेंडेशन के बिना असंभव थी। सबके चले जाने के बाद भी हम लोग वहीं बैठे रहे और मंत्रालय व दिल्ली के बारे में संतोष सर और काटजू सर बतियाते रहे। अचानक काटजू सर ने हम सबको अंदर बुलाया।

वे हमें इंडिया हाउस दिखाना चाह रहे थे। विदेशों में स्थित राजदूत के घर को 'इंडिया हाउस' कहा जाता है। वहाँ भी ऑफिस की तरह राष्ट्र ध्वज तिरंगा शाम से लहराता है और पूरे नियम के साथ इसे सुबह फहराया तथा शाम को सूर्यास्त के वक्त उतार लिया जाता है। फ्लैग कोड का सख्ती और मुस्तैदी से पालन किया जाता है। इंडिया हाउस पहुँचते ही लगता है कि हम अपने देश में पहुँच गए हैं—कम-से-कम हम विदेश सेवा के लोगों को तो ऐसा ही लगता है। सो इंडिया हाउस को हम सब अंदर से देखनेवाले थे! हमारे उत्साह का ठिकाना न था। आगे-आगे काटजू सर और पीछे-पीछे हम लोग। 'क्या आप सबको पता है कि इंडिया हाउस भी तालिबानियों के कब्जे में चला गया था?' 'नहीं पता सर।' 'हाँ, जब अफगनिस्तान पर तालिबानी कब्जा हो गया तो भारतीय दूतावास भी खाली करवाया गया। सभी कर्मचारियों और सुरक्षाकर्मियों को बड़ी मशक्कत के बाद रातोरात भारत बुला लिया गया था। जरूरी दस्तावेज तो चले गए, कुछ जला दिए गए। परंतु इंडिया हाउस तो नहीं ले जा सकते थे न! सो इसे तालिबान ने हथिया लिया।' 'उन्हें तो इतना सुंदर महल यों ही मिल गया मानो!' 'हाँ, और पता है, यह उनकी रिहायश था। यहाँ वे परिवार के साथ रहते थे। आओ चलो कुछ इंट्रेस्टिंग दिखाऊँ।' हम सब मानो कोई थ्रिलर पढ़ रहे हों, उनके पीछे-पीछे स्वप्नाविष्ट से चल रहे थे। इंडिया हाउस के बिल्कुल अंदरूनी भाग में दो प्रकोष्ठों की खिड़कियों पर दो परतों में जालियाँ लगी थीं। पहले महीन और फिर मोटे लोहे की छड़ें। सबसे बाहर कॉरगेटेड शीट ठोंककर पूरी खिड़कियों को सील कर दिया गया था। अंदर से भी खिड़कियों के महँगे शीशों को काले रंग से बेतरतीबी से पोत दिया गया था। यह सब देखकर हमारे रोएँ खड़े हो गए। 'सर इतनी सुरक्षा क्यों थी, क्या वे इन प्रकोष्ठों में अपने हथियार रखते होंगे।' हमारे बैचमेट प्रकाश ने क्लू समझना चाहा। 'नहीं, यहाँ उनका हरम था। वे यहाँ औरतों को रखते थे। उनके बच्चे और औरतें यहाँ सुरक्षित महसूस करती होंगी।' शरिया कानून के अनुसार औरतों को परदे में रहना अनिवार्य है। एक स्त्री का पति भी अपनी स्त्री को खुले सिर रात के अलावा नहीं देख सकता। उस लोहे के जंगले से जड़े प्रकोष्ठ को देखकर मुझे अब भी सिहरन होती है। महामहिम महोदय ने बताया कि सारे घर में तालिबान ने तोड़-फोड़ और ढाँचागत बदलाव किए थे, ताकि अपने जरूरत के मुताबिक कंफर्ट रह सकें।

दुबारा जब बिल्डिंग भारत सरकार को मिली तो सबकुछ रिपेयर किया गया, पर यह प्रकोष्ठ छोड़ दिए गए, ताकि तालिबान का यह चिह्न हमें याद दिलाता रहे कि हमारे लोग अफगानिस्तान में किन विकट परिस्थितियों में काम करते हैं, जहाँ कभी भी कब्जा हो सकता है। कई अधिकारियों और कर्मचारियों की जानें भी गई हैं।

तीसरे दिन सुबह हम सब भारतीय हाई कमीशन, यानी दूतावास गए। मैं पाठकों को बता दूँ कि हाई कमिशन या उच्चायोग और एमबेसी या दूतावास—सब एक ही ऑफिस है। इनका नामकरण का आधार कॉमनवेल्थ देश हैं। जो कॉमनवेल्थ देश हैं, वहाँ इसे उच्चायोग या हाईकमिशन कहते हैं और नॉन-कॉमनवेल्थ देशों में इसे दूतावास कहते

हैं। सो हाई कमीशन जाना हमारे लिए देव-स्थान जाने के समान है। जो हमारी कर्मभूमि है—देश से बाहर जो हमारे देश की जमीन है, सारे भारतीय लोगों को हाई कमिशन जाकर लगता है कि वे भारत ही आ गए हैं। हाई कमिशन में हमारा बेहद जोरदार स्वागत और ब्रीफिंग किया गया। डी.एच.सी. और बाकी लोगों ने नाश्ते और चाय से पेट भर दिया।

वहाँ आई.टी.बी.पी. के करीब दो सौ जवान तैनात हैं। उन्होंने भी मुसकराकर हमारा स्वागत किया। हाईकमिशन में कैंटीन की भी सुविधा है, जहाँ ब्रेक्फास्ट, लंच और डिनर मिलता है। हाय! हम तीन दिन बिना नाश्ते के क्यों रहे! यहीं आ जाते और खाते। पर एक बात अफगानिस्तान में अजीब थी कि वहाँ सब्जियाँ बहुत कम मिलती थीं। कैंटीन में भी चिकन सैंडविच, चिकन कबाब, चिकन टिक्का आदि मिलते थे। बाहर भी ब्रेक्फास्ट में ब्रेड प्लस चिकन कबाब, लंच में ब्रेड प्लस चिकन टिक्का और डिनर में ब्रेड प्लस चिकन कोरमा ही मेन डिश थे। शाकाहारियों के लिए चावल भी नहीं थे। काबुली पुलाव मैंने वहीं पहली बार देखा और खाया। पर खाने के बाद पता चला कि उसमें मटन कीमा मिला हुआ है। हे भगवान! चावल मेरा वीकनेस है और यहाँ चावल की एकमात्र डिश भी संक्रमित है!

मैंने पति से वादा किया था कि मैं शाकाहारी बनी रहूँगी। आज तीन दिन हो गए थे—मैंने कितनी मुश्किलों का सामना करते हुए यह वादा निभाया। पर कब तक! साथ के लड़के चिकन तंदूरी, टिक्का और स्क्यूअर उड़ा रहे थे और मैं सबसे यह पूछती चल रही थी कि वेजीटेरियन फिश कौन सा है। मुश्किल से कभी दाल मिलती या तो चने की, सूखी सब्जी और अफगानी ब्रेड! गला खींचकर ऊँट जैसा खाना पड़ रहा था। और ऊपर से चावल भी नहीं। क्या करूँ? तभी मेरे मित्र जेपी ने समझाया कि 'रंजन (पति) को फोन करो और अपनी दुविधा बता दो कि उसके आदेश का पालन करना तुम्हारे लिए कितना मुश्किल है। सिर्फ सूखे चने और ब्रेड खाकर तुम दस दिन और कैसे काटोगी?' यह आइडिया अच्छा है। पर फोन कैसे और कहाँ से करूँ। आई.एस.डी. कॉल तो बहुत महँगा है। 'अरे मूर्ख, यहाँ से भारत इंटरकॉम से बात होती है। स्पेशल कनेक्शन मिला हुआ है—हाईकमीशन और दिल्ली के बीच। फिर उसके बाद कॉल जोड़कर सिर्फ एस.टी.डी. लगेगा। वह भी यहाँ डी.एच.सी. के ऑफिस से मुफ्त में हो जाएगा। सारे प्रोबेशनर देखो अपने-अपने घर बातें करने के लिए लाइन में खड़े हैं।'

ओहो! अब समझ में आया कि डी.एच.सी. और चैंसरी ऑफिस के सामने इतनी भीड़ क्यों है!' मैंने तुरंत डी.एच.सी. ऑफिस से अपने पति को फोन किया। तीन दिन से हमारी कोई बात नहीं हुई थी। वे बड़े चिंतित थे। मैंने बताया कि यहाँ खाने-पीने की बड़ी किल्लत है, इसलिए मैं दुबारा नॉन वेज शुरू कर रही हूँ। इसके उत्तर में उन्होंने क्या कहा, मैंने बिना सुने ही फोन काट दिया और अपने दूसरे बैचमेट को फोन दे दिया। कल हम सबको हेरात जाना था।

भारत का प्रधान कोंसलावास,
१ ईटोन रोड, पार्क टाउन, जोहांसबर्ग,
(दक्षिण अफ्रीका)

ज्यादा कुछ भी नहीं

कविता

• नवनीत गांधी

सुपरिचित लेखिका। पत्र-पत्रिकाओं में २५० से अधिक लेख एवं सात पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति इंदिरा गांधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी, कुवैत में अध्यापन में रत।

न ज्यादा दुःख हो
न ज्यादा सुख हो,
हल्का-फुल्का सा ही
जीवन का अगला रुख हो।

एक आज का दिन
और एक कल का भी गिन
बस, केवल इतना ही, ऐ जिंदगी!
कंधों पर ले पाऊँगी, गिरे बिन।

जो है, सो है; जो नहीं, वो होगा कभी नहीं
मान ले, और जो है उसे खो नहीं
सवाल फिजूल हैं बिल्कुल
अपनी गठरी को सहज अपनाना ही सही।

यों तो सब समझते हैं, सब जानते हैं
पढ़ी, सुनी हर बात मानते हैं
उलझन, दुविधा, नाराजगी से
लबालब भरा है मन फिर भी,
जिसे लिए हम बाजारों की खाक छानते हैं।

ध्यान जो रहे सिर्फ अगला एक श्वास
अगला पल, अगले कर्म का एहसास
बहुत सारे आडंबर ढह जाएँगे
लेन-देन, हिसाब-किताब के बोझ तले
हाँफती जिंदगी
में टिम-टिमाएँगे सुकूँ के आभास।

न ज्यादा दुःख हो
न ज्यादा सुख हो,
हल्का-फुल्का सा ही
जीवन का अगला रुख हो।

बी-१०३, प्रणय लीला सी.एच.एस.
परिमल नगर, गोरेगाँव वेस्ट
मुंबई-४०००६२

वर्ग पहेली (१८८)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे अब **श्री ब्रह्मानंद खिच्ची** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० नवंबर, २०२१ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें तीन सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते जनवरी २०२२ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१८६) का शुद्ध हल

१ र	घु	२ ना	य	३ क	■	४ रा	५ ज	६ क
दी	■	ड़	■	७ था	८ ली	ब	ज	ना
९ फ	रा	मो	श	■	१० चि	ड़ी	मा	र
■	■	ड़	■	११ श्री	■	■	न	■
१२ ब	१३ ह	ना	१४ पा	■	१५ स्व	■	■	१६ वा
१७ ह	क	■	व	■	■	■	१८ म	त्य
१९ रा	म	२० झ	रो	२१ खे	बै	२२ ठ	के	■
प	■	२३ क	टी	ला	■	२४ ह	रा	२५ म
२६ न	द	ना	■	२७ र	डा	र	■	ण

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री अमर देव**
अंगिरा अध्ययन संस्थान समीप
उद्यान विभाग, दाड़ला घाट
जिला-सोलन-१७११०२ (हि.प्र.)
दूरभाष : ९४१८१६५५७३

२. **श्री जगदीश चंद्र पुत्र श्री दलीप सिंह**
शहर-डाक-पुंडरी, वार्ड-२, गली नं.३
इंदिरा नगर पुंडरी,
जिला-कैथल-१३६०२६ (हरियाणा)
दूरभाष : ९८९६९१८७४०

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १८७ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री विजयपाल सहलंगिया (महेंद्रगढ़), खुशी खिच्ची (करीना मंडी), मंजू रानी (कैथल), रामकिंकर सिंह (बाराबंकी), भूपसिंह (हरिद्वार), शिव ओम (मेरठ), राजबीर खैरा (जोधपुर), जुगल किशोर (ब्यावर), रमेश मनहर (पटियाला), आनंद शर्मा, अनुराधा (दिल्ली)।

वर्ग पहेली (१८८)

बाएँ से दाएँ—

१. कलिंजर, झाँझर (३)
४. लंबाई की एक माप, युद्ध की तैयारी, कसरत (३)
६. शेर, चीता, कुत्ता (५)
७. बगुला का पर्याय यहाँ उलट गया है (२)
९. चैत्र की एक फसल (२)
१०. प्रभात, प्रकाश, चमकने वाला (३)
१२. छीना गया, चुराया हुआ (४)
१३. वाहनिक, कोचवान (४)
१४. ओढ़ने-पहनने के काम आनेवाली वस्तु (३)
१६. धन-संबंधी, एक छंद (२)
१७. पुत्री, कन्या, बालिका (२)
१९. समान अवस्था का (२, ३)
२१. खेदपूर्वक (३)
२२. मृत पूर्वज (३)

ऊपर से नीचे—

१. तौर-तरीका, ढंग (३)
२. वर्जित, रहित (२)
३. पूर्व दिशा का दिग्गज, इंद्र का हाथी (४)
४. एक संकर जाति, कमीना आदमी, हिरण (२)
५. हलचल होना, बरपा होना (३)
८. साहित्य अमृत का एक स्थायी स्तंभ (२,३)
९. अस्थिभोजी, कुत्ता (५)
१०. सूचक, संज्ञापरक, प्रकाशक (३)
११. एक प्रकार का बाजा, डंका (३)
१५. अति स्पष्ट, प्रकट, भाषित (४)
१६. मन, चित्त (६)
१८. सहायक, मददगार (३)
१९. धृतराष्ट्र का एक पुत्र, तुरंत (२)
२०. सूर्य, एक ऋषि (२)

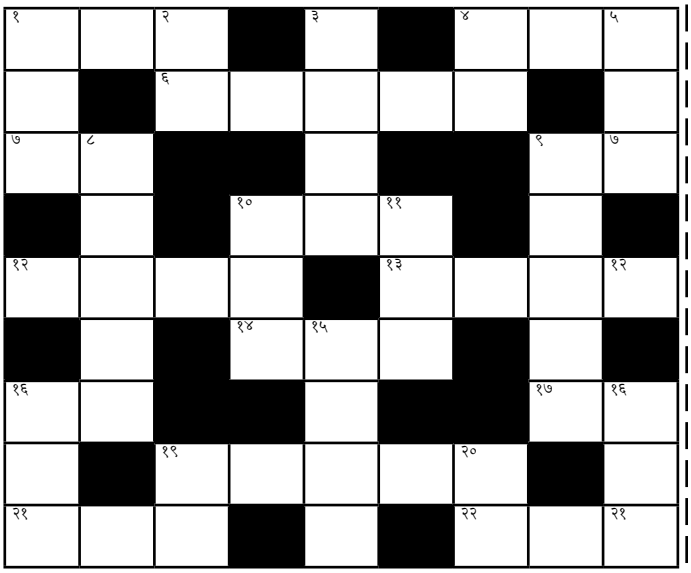

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

वर्ग पहेली (१८७) का हल अगले अंक में।

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का अक्तूबर अंक प्राप्त हुआ। शक्ति का प्रतीक मुख पृष्ठ सादा पर बेहद आकर्षक लगा। स्वर्गीय विवेकी राय की कहानी 'रामलीला' अच्छी लगी। अंक की अन्य कहानियों में रमेश मनोहरा की 'अपनी-अपनी व्यथा', दीपक शर्मा की 'रेडियो वाली मेज' बेहद पसंद आईं। लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला का लेख 'शिक्षा के क्षेत्र में भारत कहाँ है' आँखें खोलनेवाला है। विजय प्रकाश त्रिपाठी तथा दलेल सिंह ठाकुर एवं आशुतोष भटनागर के आलेख भी जानकारीपरक बन पड़े हैं। शोभा माथुर ब्रिजेंद्र की लघुकथा 'गांधी को चीन का उपहार' प्रेरणाप्रद है। श्रीराम परिहार हमेशा ही अच्छा लिखते हैं। निश्चलजी की बाल-कहानी 'पाँच सौ का नोट' मनोरंजक लगी। कुल मिलाकर पूरा अंक ही पठनीय एवं सग्रहणीय बन पड़ा है। एक शानदार अंक के लिए संपादन मंडल को बहुत-बहुत धन्यवाद। अगले अंक की प्रतीक्षा रहेगी।

—आनंद शर्मा, प्रेमनगर (दिल्ली)

'साहित्य अमृत' का सितंबर-२१ अंक रंग-बिरंगे फूलों से सजा मुख पृष्ठ मनमोहक लगा। प्रतिस्मृति में देवेंद्र सत्यार्थी की प्रसिद्ध कहानी 'कुंग पोश' बेहद मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक लगी। अश्विनी कुमार दुबे की कहानी 'आतंकवादी', सुमन लता सक्सेना की 'रिश्ते', अनिल गांधी की 'एक मुट्ठी सपना', आचार्य मायाराम 'पतंग' की 'मजदूर की मजदूरी' बड़ी मनोरंजक हैं, इनसे ज्ञान भी प्राप्त हुआ। भगवान अटलानी का आलेख 'शहीद हेमू कालाणी' वीरता की मिसाल है। दत्तात्रेय होसबोलेजी ने अपने आलेख में भारत की आजादी की लड़ाई का बड़ी अच्छी तरह से विश्लेषण किया है, उन्हें बधाई। चंद्रपाल मिश्र 'गगन' का आलेख 'परिवर्तन की अनिवार्यता' बहुत ही चिंतनपरक, विश्लेषणात्मक एवं अनुकरणीय है। सूर्य प्रसाद दीक्षित का आलेख 'नींद और स्वप्न' भी जानकारीपरक लगा। राजेंद्र सिंह ढैला की कविता 'हिंदी हूँ हिंद की', प्रशांत उपाध्याय की 'इतनी रिश्वत, काम जरा सा', नरेश कुमार 'उदास' की 'देश की खातिर' बेहद अच्छी लगीं। प्रशांतजी की सभी गजलें बेजोड़ हैं। वीरेंद्र जैन का संस्मरण मनोरंजक लगा। प्रेमपाल शर्मा का यात्रा-वृत्तांत 'जय काली कलकत्ते वाली' हमेशा की तरह शानदार है, घर बैठे ही बंगाल के तीर्थों के दर्शन ही नहीं हुए, वहाँ की संस्कृति से भी परिचय हो गया। भैरूँ लाल गर्ग की बाल-कहानी 'मन का बोझ' मनभावन और मनोरंजक है। पूरा अंक ही ज्ञान का खजाना है। साहित्य अमृत अपने नाम के अनुरूप ज्ञान रूपी अमृत बाँट रही है। अच्छी-अच्छी रचनाएँ पढ़वाने के लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद।

—भूपसिंह, हरिद्वार (उ.खं.)

कोरोना महामारी की चपेट में इनसान ही प्रभावित नहीं हुए हैं, बल्कि साहित्य पर भी इसकी गहरी मार पड़ी है। आर्थिक अभाव के चलते अच्छी-भली कई पत्रिकाएँ काल-कलवित हो गई हैं। परंतु इस घोर अंधकार में भी 'साहित्य अमृत' ज्ञान की अलख जगाए हुए है। 'साहित्य अमृत' का सितंबर-२१ अंक मेरे हाथ में है। इस अंक की कई रचनाएँ तो बेहद शानदार हैं, जैसे देवेंद्र सत्यार्थी की कहानी 'कुंग पोश', अश्विनी कुमार की कहानी 'आतंकवादी', चंद्रपाल मिश्र 'गगन' का आलेख 'परिवर्तन की अनिवार्यता', सूर्य प्रसाद दीक्षित का 'नींद और स्वप्न', ओम निश्चल का स्मरण 'डूब जाता है कभी मुझमें समंदर', प्रेमपाल शर्मा का यात्रा-वृत्तांत 'जय काली, कलकत्ते वाली'। इनके अलावा अन्य रचनाएँ भी पठनीय एवं जानकारी देनेवाली है। साहित्यिक गतिविधियों से साहित्य जगत् में क्या-क्या हो रहा है, उन सब बातों का भली प्रकार पता चल जाता है। साहित्य अमृत अच्छा काम कर रही है। बधाई।

—संजय प्रकाश सिंह, गोरखपुर (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' के अंक का हमेशा इंतजार रहता है। अभी-अभी सितंबर अंक मिला। आद्योपांत पढ़ डाला। मालती जोशी अच्छी कहानियाँ लिखती हैं, पर यह कहानी बहुत लंबी बन गई है, लेकिन अच्छी लगी। लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला हमेशा गंभीर विषयों पर लिखते हैं, शिक्षा के क्षेत्र में उठाए गए सवाल गौर करने लायक हैं। आशुतोष भटनागर का आलेख 'निरंतर संघर्ष की महागाथा' के साथ-साथ निरंजन कुमार का आलेख भी पठनीय है। श्रीराम परिहार का ललित-निबंध 'गांधी ने सोचा, कहा और किया' अच्छा लगा। निश्चल की बाल-कहानी 'पाँच सौ का नोट' बड़ी मजेदार है। छोटी-छोटी कविताएँ भी सब अच्छी बन पड़ी हैं। वर्ग-पहेली का हल करना हमें अच्छा लगता है। साहित्य अमृत ही ऐसी पत्रिका है, जो हमेशा समय पर मिल पाती है। भगवान् से प्रार्थना है कि यह उत्तरोत्तर प्रगति करती रही।

—रामप्रकाश राय, गुरुग्राम (हरियाणा)

'साहित्य अमृत' का अक्तूबर अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका का मुख पृष्ठ बेहद आकर्षक लगा। संपादकीय हर बार की तरह इस बार भी विशेष प्रभावी लगी। कम शब्दों में किसी विषय का इतना मार्मिक वर्णन करना एक अद्‌भुत कला है। वर्तमान की परिस्थितियों से स्वयं सामना करना और उन्हीं को टंकित शब्दों द्वारा अनुभव करना सत्य से परिचित कराने एवं उसकी कल्पना करने का एक सरल उपाय है। कुल मिलाकर संपादकीय जानकारीपरक लगा। श्रीराम परिहार द्वारा लिखित 'गांधी ने सोचा, कहा और किया' प्रेरणादायक है। कहानियों में मालती जोशी की 'उत्सव', रमेश मनोहरा की 'अपनी-अपनी व्यथा' एवं दीपक शर्मा की 'रेडियो वाली मेज' अच्छी और मनोरंजक लगी। पत्रिका के सभी आलेख बहुत ज्ञानवर्धक हैं। सभी की अपनी-अपनी महत्ता है, किसी एक आलेख पर विशेष टिप्पणी करना अन्य आलेखों की विशेषता के विरुद्ध होगा। निश्चल की बाल-कहानी 'पाँच सौ का नोट' मनमोहक लगी। कविताओं में रमेश कुमार सोनी की 'पिया के मन' एवं सुमन यादव की 'खिलने लगी कली' शानदार हैं। ऐसी रचनाएँ समय का सदुपयोग करने एवं मस्तिष्क को तरोताजा करने में लाभकारी सिद्ध होती हैं। इस पठनीय, मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धन अंक हेतु 'साहित्य अमृत' की पूरी टीम को बहुत-बहुत धन्यवाद। मेरी मंगलकामनाएँ हैं कि पत्रिका ऐसे ही शानदार रचनाएँ प्रकाशित कर उन्नति की राह पर अग्रसर हो।

—सुधा नाइक, जलगाँव (महा.)

साहित्यिक गतिविधियाँ

सम्मान समारोह संपन्न

२७ सितंबर को दिल्ली में साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत संस्थान 'स्वयं प्रकाश स्मृति न्यास' ने सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्वयं प्रकाश की स्मृति में दिए जानेवाले वार्षिक सम्मान की घोषणा की। न्यास के अध्यक्ष प्रो. मोहन श्रोत्रिय ने बताया कि कहानी विधा के लिए सुपरिचित कथाकार श्री मनोज कुमार पांडेय को उनके कहानी-संग्रह 'बदलता हुआ देश' के लिए सम्मानित किया जाएगा। □

सम्मान समारोह संपन्न

१९ सितंबर को देहरादून में अंतरराष्ट्रीय साहित्यकार सम्मान समारोह के अवसर पर वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश' को हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में उल्लेखनीय योगदान के लिए देश की चर्चित साहित्यिक संस्था निर्मला स्मृति, साहित्यिक समिति हरियाणा की ओर से 'निर्मला स्मृति आजीवन हिंदी साहित्य सम्मान' से सम्मानित करने की घोषणा की गई। □

पुस्तक लोकार्पित

विगत दिनों उज्जैन में क्षितिज साहित्य संस्था द्वारा श्री मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति के सभागार में आयोजित लघुकथा सम्मेलन में वरिष्ठ लघुकथाकार श्रीमती कोमल वाधवानी 'प्रेरणा' के चौथे लघुकथा-संग्रह 'रास्ते और भी हैं' का विमोचन हुआ, जिसमें सर्वश्री शरद पगारे, नहिरि पटेल, विकास दवे, सत्यनारायण व्यास, रामकुमार घोटड़, सतीश राठी एवं कांता राय ने वक्तव्य दिए। कार्यक्रम में विभिन्न विषयों पर केंद्रित चयनित लघुकथाओं का वाचन किया गया। □

गजल-संग्रह 'सीपियाँ' लोकार्पित

३ अक्तूबर को रायपुर में डॉ. आनंद शंकर बहादुर के गजल-संग्रह 'सीपियाँ' का ऑनलाइन विमोचन किया गया, जिसमें मुख्य वक्ता श्री सत्यनारायण थे। सर्वश्री गौहर रजा, जया जादवानी, प्रभुनारायण वर्मा, मयंक चतुर्वेदी, आनंद शंकर बहादुर ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री महेश वर्मा ने तथा धन्यवाद ज्ञापन श्री नीलाभ ने किया। □

कार्यक्रम आयोजित

२४ सितंबर को तमिलनाडु के डिंडिगुल जनपद में 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी विकास परिषद्' की ओर से हिंदी पखवाड़े में आयोजित आंतर्जालिक संगोष्ठी में आचार्य पृथ्वीनाथ पांडेय ने मुख्य अतिथि के रूप में अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री पिलप्पा पिंड्या ने की। श्री राधारत्नम ने आभार व्यक्त किया। □

साहित्य का नोबेल पुरस्कार

ब्रिटेन में रह रहे तंजानिया के लेखक श्री अब्दुल रज्जाक गुरनाह को इस वर्ष का साहित्य का नोबेल पुरस्कार देने की घोषणा की गई है। उन्हें यह पुरस्कार अपने मूल स्थान से विस्थापित लोगों और उस जगह पर पड़नेवाले प्रभाव को अपनी कृतियों के जरिए दरशाने के लिए दिया गया है जहाँ विस्थापित अपना नया घर बसाते हैं। वर्ष १९४८ में जंजीबार में जनमे गुरनाह एक शरणार्थी के रूप में १९६८ में ब्रिटेन पहुँचे थे। वह १० उपन्यास लिख चुके हैं, जिनमें मेमोरी ऑफ डिपार्चर, पिलग्रिम्स वे, पैराडाइज, बाई द सी और डेजर्शन प्रमुख हैं। उनकी मूल भाषा स्वाहिली है, लेकिन वह अंग्रेजी में लिखते हैं। □

लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न

३ अक्तूबर को आभासी कार्यक्रम 'कविता के रंग डॉ. रामदरश मिश्र के संग' में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र के हाथों श्री दिविक रमेश के सद्य: प्रकाशित कविता-संग्रह 'जब घुटती है साँस आदमी की' और श्रीमती सरस्वती मिश्र के हाथों आयु के ७५ वर्ष पूरे होने के अवसर पर श्री दिविक रमेश के व्यक्तित्व और कृतित्व पर केंद्रित 'सृजनलोक' पत्रिका के विशेषांक का लोकार्पण हुआ। संचालन डॉ. वेदमित्र शुक्ल ने किया। सर्वश्री रामदरश मिश्र, दिविक रमेश, अनिल शर्मा और राहुल का कविता-पाठ भी हुआ। श्रीमती स्मिता मिश्र ने आभार व्यक्त किया। □

केंद्रीय हिंदी संस्थान के पुरस्कार घोषित

२१ सितंबर को आगरा में केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा वर्ष २०१८ के लिए १२ श्रेणियों के पुरस्कारों के लिए देश-विदेश के २६ महत्त्वपूर्ण रचनाकारों की घोषणा माननीय शिक्षा मंत्री श्री धर्मेंद्र प्रधान के अनुमोदन व केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल के उपाध्यक्ष श्री अनिल जोशी की गरिमामय उपस्थिति में निदेशक सुश्री बीना शर्मा द्वारा की गई। 'गंगा शरण सिंह पुरस्कार' के लिए सर्वश्री के. श्रीलता (केरल), बलवंत जानी (गुजरात), एल. वी. के. श्रीधरन (तमिलनाडु), श्री राजेंद्र प्रसाद मिश्र (उड़ीसा)। 'गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार' के लिए सर्वश्री हेमंत शर्मा व अनंत विजय। 'आत्माराम पुरस्कार' के लिए सर्वश्री कृष्ण कुमार मिश्र व प्रेमव्रत शर्मा। 'सुब्रह्मण्य भारती पुरस्कार' के लिए सर्वश्री बालस्वरूप राही व माधव कौशिक। 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार' के लिए सर्वश्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय व जयप्रकाश। 'डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार' के लिए सर्वश्री हाइंस वरनर वैसलर (जर्मनी) व शरणगुप्त वीरसिंह (श्रीलंका)। 'पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार' के लिए स्वामी संयुक्तानंद (फीजी) व डॉ. मृदुल कीर्ति (अमेरिका)। 'सरदार वल्लभ भाई पटेल पुरस्कार' के लिए सर्वश्री जीत सिंह जीत व रवींद्र सेठ। 'दीनदयाल उपाध्याय पुरस्कार' के लिए सर्वश्री सच्चिदानंद जोशी व चंद्र प्रकाश द्विवेदी। 'स्वामी विवेकानंद पुरस्कार' के लिए श्री मनोज कुमार श्रीवास्तव व सुश्री सरोज बाला। 'पंडित मदनमोहन मालवीय पुरस्कार' के लिए सर्वश्री अतुल कोठारी व राजकुमार भाटिया। 'राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन पुरस्कार' के लिए सर्वश्री रमेश चंद्र नागपाल व शैलेंद्र कुमार अवस्थी को पुरस्कार स्वरूप पाँच लाख रुपए, प्रशस्ति-पत्र, शॉल प्रदान किए जाएँगे। □

लघुकथा सम्मेलन आयोजित

साहित्यिक संस्था 'क्षितिज' द्वारा आयोजित तृतीय अखिल भारतीय लघुकथा सम्मेलन में श्री नरहरि पटेल ने अपने व्यक्त किए गए। मुख्य अतिथि श्री विकास दवे थे। आयोजन में सर्वश्री कमल चोपड़ा व रामकुमार घोटड को 'क्षितिज लघुकथा शिखर सम्मान'; पुरुषोत्तम दुबे को 'लघुकथा समालोचना सम्मान', श्री योगेंद्र नाथ शुक्ला व सुश्री ज्योति जैन को 'लघुकथा

समग्र सम्मान', सुश्री दिव्या राकेश शर्मा, सुश्री अंजू निगम को; 'लघुकथा नवलेखन सम्मान' प्रदान किया गया। स्वागत भाषण श्री सतीश राठी ने दिया। सर्वश्री नरहरि पटेल को 'क्षितिज मालव गौरव सम्मान', शरद पगारे एवं सत्यनारायण व्यास को 'क्षितिज समग्र जीवन साहित्यिक अवदान सम्मान', विकास दवे को 'साहित्य गौरव सम्मान', अर्पण जैन को 'भाषा सारथी सम्मान' से विभूषित किया गया। सर्वश्री राज नारायण बोहरे, नंदकिशोर बर्वे, चरण सिंह अमी, अंतरा करवड़े, वसुधा गाडगिल को भी विशिष्ट सम्मानों से सम्मानित किया गया। श्री गोविंद मूंदड़ा को 'क्षितिज साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान-२०२१' से सम्मानित किया गया। इसी शृंखला में क्षितिज की अनुवाद उपक्रम संस्था, भाषा सखी द्वारा सर्वश्री सतीश राठी, अश्विनी कुमार दुबे, दीपक गिरकर, राम मूरत राही को भी सम्मान प्रदान किए गए। सम्मान-सत्र का संचालन सुश्री अंतरा करवड़े तथा कृतज्ञता ज्ञापन श्री सतीश राठी ने किया। तृतीय सत्र 'आपदाकालीन साहित्य सृजन का दूरगामी प्रभाव' विषय पर था, जिसकी अध्यक्षता श्री राम कुमार घोटड ने की। सर्वश्री संतोष सुपेकर, नंदकिशोर बर्वे, सीमा व्यास ने विचार व्यक्त किए। संचालन सुश्री अदिति सिंह भदोरिया ने किया। चौथे सत्र में विभिन्न विषयों पर केंद्रित चयनित लघुकथाओं का वाचन किया गया, जिनका संचालन सुश्री विनीता शर्मा ने किया। समूचे आयोजन का आभार श्री दीपक गिरकर ने किया। सम्मेलन में सर्वश्री संतोष सुपेकर, राममूरत राही, उमेश कुमार नीमा, दिलीप जैन व ज्योति जैन का उल्लेखनीय सहयोग रहा। □

हिंदी पखवाड़ा मनाया गया

हिंदी पखवाड़े के अवसर पर ३१ अगस्त से १४ सितंबर तक 'द मैजिक मैन एन चंद्रा' फेसबुक पेज एवं यूट्यूब चैनल, एक अहिंदी भाषी श्री नरेश चंद्र जोशी एवं उनकी पत्नी एवं पटल की सह-निदेशक श्रीमती नीता जोशी द्वारा स्थापित हिंदी भाषा को समर्पित पटल ने आयोजन किया, जिसकी अध्यक्षता डॉ. हरीश नवल ने की। कविता-पाठ भारत, जापान, अमरीका, ओमान, सूरीनाम, ऑस्ट्रेलिया, हॉलैंड, मॉरिशस, अफगानिस्तान, कनाडा, फिलीपींस, इंग्लैंड, सउदी अरब, दुबई, सिंगापुर, जर्मनी आदि देशों के कवियों द्वारा लगातार २४ घंटे व कुल लगभग ३६३ घंटे चला। सर्वश्री दिविक रमेश, प्रताप सहगल, लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, अलका सिन्हा, सुरेंद्र शर्मा, सुरेश दुबे, बुद्धिनाथ मिश्र सहित लगभग ५२० से अधिक कवि एवं १०० से अधिक संचालक इस आयोजन में सम्मिलित हुए। विशिष्ट अतिथियों में सर्वश्री राज हीरामन (मॉरिशस), पुष्पिता अवस्थी (हॉलैंड) एवं इंद्रजीत शर्मा (अमरीका) उपस्थित रहे। □

उ.प्र. हिंदी संस्थान के पुरस्कार घोषित

१ अक्तूबर को उ.प्र. हिंदी संस्थान के सम्मानों/पुरस्कारों हेतु विद्वानों के नामों की घोषणा की गई। श्री पांडेय शशिभूषण शीतांशु को 'भारत-भारती सम्मान' स्वरूप आठ लाख रुपए राशि से सम्मानित किया जाएगा। डॉ. रामकठिन सिंह को 'लोहिया साहित्य सम्मान' स्वरूप पाँच लाख रुपए राशि, श्री भगवान सिंह को 'हिंदी गौरव सम्मान', डॉ. महेंद्र मधुकर, को 'महात्मा गांधी साहित्य सम्मान', डॉ. देवेंद्र दीपक को पं. 'दीनदयाल उपाध्याय साहित्य सम्मान', डॉ. सीतेश आलोक को 'अवंतीबाई साहित्य सम्मान', राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद को 'राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन सम्मान' प्रदान किए जाएँगे; इन सबको पाँच लाख रुपए की राशि प्रदान की जाएगी।

सर्वश्री मो. मूसा खान, शशि गोयल, अरविंद कुमार राम, दयानंद जिडया 'अबोध', मंजु शुक्ल, शिवाकांत मिश्र 'विद्रोही', हरिमोहन, सुधीर विद्यार्थी, सुधाकर मिश्र, धीरेंद्र वर्मा, चंद्रपाल शर्मा, ओम प्रकाश शुक्ल 'अमिय', केशव प्रसाद वाजपेयी, सुशील कुमार पांडेय 'साहित्येंदु', बी.एल. गौड़, त्रिभुवननाथ शुक्ल, सतीश आर्य, रामकरन मिश्र सैलानी, तपेश्वरनाथ, हरीलाल 'मिलन' को सम्मानस्वरूप ढाई लाख रुपए राशि प्रदान की जाएगी।

डॉ. जयप्रकाश मिश्र, को 'लोक भूषण सम्मान'; श्री सुशील कुमार सिंह को 'कलाभूषण सम्मान', गिरीश्वर मिश्र को 'विद्या भूषण सम्मान' डॉ. दुर्गादत्त ओझा को 'विज्ञान भूषण सम्मान', श्री रामबहादुर राय को 'पत्रकारिता भूषण सम्मान'; सुश्री पुष्पिता अवस्थी को 'प्रवासी भारतीय हिंदी भूषण सम्मान'; रेखा राजवंशी (बंसल) को 'हिंदी विदेश प्रसार सम्मान'; 'डॉ. राकेश चक्र तथा घमंडीलाल अग्रवाल को 'बाल साहित्य भारती सम्मान'; डॉ. दिलीप सिंह, को 'मधुलिमये साहित्य सम्मान'; सुभाष चंदर को 'पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी साहित्य सम्मान'; सुश्री संतोष खन्ना को 'विधि भूषण सम्मान' स्वरूप ढाई लाख रुपए राशि प्रदान की जाएगी।

सर्वश्री लक्ष्मीधर दाश (ओडिया); रुनू शर्मा बरुवा (असमिया); अनीस अंसारी (उर्दू); धरणेंद्र कुरकुरी, शिरसी (कन्नड़); महाराज कृष्ण संतोषी (कश्मीरी); जशभाई नारणभाई पटेल (गुजराती); भारत भूषण शर्मा (डोंगरी); पी.आर. वासुदेवन 'शेष' (तमिल); सुमन लता रुद्रावझला (तेलुगु); राकेश प्रेम (राकेश मेहरा) (पंजाबी); केशव सिंह 'प्रथमवीर' (मराठी); डी. तंकप्पन नायर (मलयालम); हरिदत्त शर्मा (संस्कृत); सुंदरदास (सिंधी) को ढाई लाख रुपए राशि समेत 'सौहार्द सम्मान' प्रदान किया जाएगा। सर्वश्री रामकृष्ण तथा गीता सिंह को 'मदन मोहन मालवीय विश्वविद्यालय स्तरीय सम्मान' स्वरूप एक लाख रुपए राशि प्रदान की जाएगी।

वर्ष २०२० में प्रकाशित पुस्तकों पर नामित पुरस्कार के अंतर्गत सर्वश्री विनोद शंकर शुक्ल 'विनोद' की कृति 'कुरुवंशी महान' को 'तुलसी पुरस्कार'; सत्यदेव प्रसाद द्विवेदी 'पथिक' की 'सरयू-शतक' को 'जयशंकर प्रसाद पुरस्कार'; मोनिका की 'गौरैया का ट्वीट' को 'श्रीधर पाठक पुरस्कार'; स्वदेश मल्होत्रा 'रश्मि' की 'पल-पल निखरे रूप' को 'निराला पुरस्कार' राज कुमार सिंह, लखनऊ की 'हर किस्सा अधूरा है' को 'दुष्यंत कुमार पुरस्कार'; ज्योत्स्ना प्रवाह की 'मनवा रे···!' को 'महावीर प्रसाद द्विवेदी पुरस्कार', ललित सिंह पोखरिया की 'क्रांतिपथ और कालापानी' को 'भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार'; दिनेश प्रताप सिंह की 'बल्लव' को 'प्रेमचंद पुरस्कार'; प्रदीप कुमार 'नैमिष' की 'बनारस का एक दिन एवं अन्य कहानियाँ' को 'यशपाल पुरस्कार'; विनोद कुमार द्विवेदी की 'प्रसाद के नाटक : सृजन का द्वंद्व' को 'रामचंद्र शुक्ल पुरस्कार'; अशोक कुमार धमेंनियाँ 'अशोक' की 'मेरे ईश' को 'सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' पुरस्कार'; कृष्ण कुमार पांडेय की 'सरयूपार के युगपुरुष' को 'पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' पुरस्कार'; आलोक पुराणिक की 'व्हाट्सअप के पढ़े-लिखे' को 'हरिशंकर परसाई पुरस्कार'; शिवपूजन शुक्ल की 'चरनवाँ कै धूर' को 'मलिक मुहम्मद जायसी पुरस्कार'; नवीन सी. चतुर्वेदी की 'मोरछल' को 'जगन्नाथदास रत्नाकर पुरस्कार'; प्रकाश उदय की 'अरज निहोरा' को 'राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार'; सुकदेव कुमार व्यास की 'बुंदेली काव्य कुंज'

को 'मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार'; किरण सिंह की 'श्रीराम कथामृतम्' को 'सूर पुरस्कार'; राधेश्याम मौर्य की 'हिंदी कविता का आधुनिक परिदृश्य एवं राष्ट्रीय चेतना' को 'कबीर पुरस्कार'; चंद्रभाल सुकुमार श्रीवास्तव की 'महाकवि कालिदास कृत मेघदूत' को 'सुब्रह्मण्य भारती पुरस्कार'; आदर्श प्रकाश सिंह की 'सही भाषा सरल संपादन' को 'बाबूराव विष्णु पराड़कर पुरस्कार'; सुरेंद्र अग्निहोत्र की 'नूतन कहानियाँ' (मासिक) को 'सरस्वती पुरस्कार'; रघोत्तम शुक्ल एवं शारदा शुक्ला की 'गीता सुधा संगम' को 'भगवानदास पुरस्कार'; श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी की 'मन मानस में राम' को 'हजारी प्रसाद द्विवेदी पुरस्कार'; हीरालाल मिश्र 'मधुकर' को 'कजली साहित्य का इतिहास' के लिए 'पं. रामनरेश त्रिपाठी पुरस्कार'; विधि नागर को 'ठुमरी एवं कथक' के लिए 'गिरिजादेवी पुरस्कार'; राजेश चंद्र गुप्ता को 'बौद्ध दर्शन एवं प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति' के लिए 'बाबू श्याम सुंदरदास पुरस्कार'; दीपक कोहली को 'विज्ञान की नई दिशाएँ' के लिए 'संपूर्णानंद पुरस्कार'; योगेंद्र शर्मा को 'पर्यावरण संरक्षण' के लिए 'बीरबल साहनी पुरस्कार'; अतुल अग्रवाल को 'मिर्गी रोग : दवा एवं दायित्व' के लिए 'पं. सत्यनारायण शास्त्री पुरस्कार'; प्रताप गोपेंद्र यादव को 'इतिहास के आईने में आजमगढ़', के लिए 'आचार्य नरेंद्र देव पुरस्कार'; सत्या सिंह को 'भारतीय कानून में महिलाओं के अधिकार' के लिए 'डॉ. भीमराव अंबेडकर पुरस्कार'; कृष्ण चंद पांडेय को 'नित्य कात्यायनी' के लिए 'बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पुरस्कार'; ममता किरण को 'आँगन का शजर' के लिए 'महादेवी वर्मा पुरस्कार' स्वरूप पचहत्तर हजार रुपए धनराशि प्रदान की जाएगी।

वर्ष २०२० में प्रकाशित पुस्तकों पर सर्जना पुरस्कार के लिए सर्वश्री रवींद्रनाथ श्रीवास्तव 'विमल', को 'कालजयी छत्रासाल' के लिए 'अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पुरस्कार'; चंद्रवीर जैन को 'बाहुबली-वैराग्य' के लिए 'जगदीश गुप्त पुरस्कार'; रामकरण साहू 'सजल' को 'चाँद दागी हो गया' के लिए 'विजयदेव नारायण साही पुरस्कार'; ज्ञानचंद मर्मज्ञ को 'भोर की प्रस्तावना' के लिए 'बलबीर सिंह 'रंग' पुरस्कार'; ओमप्रकाश यती को 'सरोकारों के रंग' के लिए 'अदम गोंडवी पुरस्कार'; बृजभूषण राय 'व्रज' को 'गोरी सोवे सेज पर' के लिए 'बाबू गुलाब राय पुरस्कार'; भोलानाथ कुशवाहा को 'ईशा' के लिए 'मोहन राकेश पुरस्कार'; उषा कनक पाठक को 'लकड़हारा' के लिए 'अमृतलाल नागर पुरस्कार'; मीनू त्रिपाठी को 'आभार तुम्हारा' के लिए 'नरेश मेहता पुरस्कार'; अरुणा दुबलिश को 'रस-सिद्धांत आधुनिक दृष्टि' के लिए रामबिलास शर्मा पुरस्कार; के.डी. सिंह को 'जब जिंदगी मुसकरा दी···' के लिए 'निर्मल वर्मा पुरस्कार'; केवल प्रसाद सत्यम को 'साहित्य के सिपाही' के लिए 'विष्णु प्रभाकर पुरस्कार'; स्नेहलता पाठक को 'एक दीवार सौ अफसाने' के लिए 'शरद जोशी पुरस्कार'; पवन कुमार सिंह को 'मंगल होई बिहान' के लिए 'वंशीधर शुक्ल पुरस्कार'; कर्णपाल सिंह 'निडर' को 'चहकै बगिया महकैं फूल' के लिए 'रामशंकर शुक्ल 'रसाल' पुरस्कार'; गिरिजा शंकर दुबे 'गिरिजेश' को 'जय जवान जय किसान' के लिए 'भिखारी ठाकुर पुरस्कार'; शिवम सिंह 'शिवोहम्' को 'तितलियों के पीछे' के लिए सोहनलाल द्विवेदी पुरस्कार; पद्मिनी श्वेता सिंह को 'नदीश्वरी गंगा' के लिए 'नजीर अकबराबादी पुरस्कार'; ऋचा शर्मा को 'वैश्वीकरण के आईने में हिंदी पत्राकारिता' के लिए 'धर्मवीर भारती पुरस्कार'; रामबहादुर मिश्र को 'अवध ज्योति' (त्रैमासिक) के लिए 'धर्मयुग पुरस्कार'; प्रमोद कुमार अग्रवाल को 'चित्रकूट में राम-भरत मिलाप' के लिए 'नंद किशोर देवराज पुरस्कार'; नरेंद्रनाथ मिश्र को 'कथा पुराण' के लिए 'विद्यानिवास मिश्र पुरस्कार'; 'अवधीलोक में लोक' के लिए राकेश पांडेय को 'बलभद्र प्रसाद दीक्षित 'पढ़ीस' पुरस्कार'; राजीव श्रीवास्तव को 'सात सुरों का मेला' के लिए 'डी.पी. धूलिया सर्जना पुरस्कार'; दयाशंकर त्रिपाठी को 'पर्यावरण दिग्दर्शिका' के लिए 'होमी जहाँगीर भाभा पुरस्कार'; संदीप कुमार तिवारी को 'मानव जीवन में वनस्पतियाँ' के लिए 'आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी पुरस्कार'; शांति चौधरी को 'दर्द सिर से पाँव तक' के लिए 'डॉ. सतीश चंद्र राय पुरस्कार'; अजय सिंह कुशवाहा को 'बुंदेलखंड किलों की भूमि' के लिए 'ईश्वरी प्रसाद पुरस्कार'; हरिशंकर उपाध्याय को 'गांधीवाद के मूल स्वर' के लिए 'के.एम. मुंशी पुरस्कार'; कृष्ण कुमार 'कनक' को 'उलझाता छविजाल तुम्हारा' के लिए 'डॉ. रांगेय राघव पुरस्कार'; दिव्या शुक्ला को 'ठौर' के लिए 'विद्यावती कोकिल पुरस्कार' स्वरूप चालीस हजार रुपए राशि प्रदान की जाएगी।

वर्ष २०२० में प्रकाशित 'मौन भी अपराध है' के लिए श्री राहुल शिवाय को 'हरिवंश रायबच्चन युवा गीतकार सम्मान' प्रदान किया जाएगा। आठ हजार रुपए राशि के अंतर्गत वर्ष २०२० में प्रकाशित महिला रचनाकार की कथाकृति पर 'अपेक्षाओं के बियाबान' के लिए डॉ. निधि अग्रवाल को 'पं. बद्री प्रसाद शिंगलू स्मृति सम्मान' स्वरूप पच्चीस हजार रुपए राशि प्रदान की जाएगी। □

कार्यक्रम आयोजित

विगत दिनों फारबिसगंज में स्थानीय प्रो. कॉलोनी स्थित 'द्विजदेनी प्रांगण' में इंद्रधनुष साहित्य परिषद् द्वारा आशुकवि श्री विजय बंसल की अध्यक्षता में समीक्षा बैठक आयोजित हुई, जिसमें सर्वश्री हेमंत यादव द्वारा लिखित 'दो बहादुर लड़के', सुरेश कंठ द्वारा लिखित 'उपवन के फूल और दो टूक रोटी', दिलीप समदर्शी द्वारा लिखित 'सितम के पत्थर' पर सर्वश्री डी.एल. दास, विजय बंसल, अरविंद ठाकुर, सुनील दास, विनोद कुमार तिवारी, गुंजेश रंजन, सुधीर झा 'सागर', हर्ष नारायण दास, सुरेंद्र प्रसाद मंडल ने कहा कि सभी लेखकों ने साहित्य प्रेमियों के लिए अच्छी-अच्छी पुस्तक लिखकर अपना ही नहीं, परिवार, समाज और संगठन का मान बढ़ाया है। डॉ. डी.एल. दास (दिव्यांशु बाबा) के कर-कमलों द्वारा तीनों लेखकों को माँ शारदा की छवि सम्मानपूर्वक प्रदान कर शुभकामनाएँ दी गईं। □

कवि सम्मेलन संपन्न

हिंदी लेखक संघ, गीत चाँदनी व शिवलाल स्मारक समिति के संयुक्त तत्त्वावधान में कीर्तिशेष नेहपाल सिंह वर्मा के ८५वें जन्मदिवस पर प्रथम कवि सम्मेलन का आयोजन राजस्थानी स्नातक संघ के भवन, आबिड्स, हैदराबाद के सभागृह डॉ. प्रेमलता श्रीवास्तव की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। संचालन गोविंद अक्षय ने किया। सर्वश्री राजनारायण अवस्थी, जनाब सलाहुद्दीन नय्यर और बृहस्पति शर्मा तथा लाल सिंह, मोहन गुप्ता, मुख्य अतिथि अमृत कुमार जैन विशेष अतिथि गेना लाल कुशवाहा ने अपने विचार व्यक्त किए। अध्यक्षीय भाषण श्रीमती प्रेमलता श्रीवास्तव ने दिया। धन्यवाद ज्ञापन सुश्री रत्नला मिश्र ने किया। □